प्रकाशक चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
मुद्रक विद्याविलास प्रेस वाराणसी
संस्करण प्रथम, वि० संवत् [illegible]
मूल्य [illegible]

The Chowkhamba Vidya Bhawan
Chowk Varanasi-1 (INDIA)
1961
Phone 2076

विष्णुप्रिया के वरद पुत्र

तथा

वीणापाणि के श्रद्धालु सेवक

श्री पुरुषोत्तमदास टंडन 'राजाम्नुआ'

को

सविनय

विषय-सूची



आभार-प्रदर्शन

'हिन्दी गाथा सतशती' का प्रकाशन मेरे लिए एक साहसपूर्ण कार्य है, इसे मैं भलीभाँति जानता हूँ। परन्तु यदि उद्देश्य महान् है तो साहस से काम लेना ही चाहिए। लक्ष्य-मार्ग की बाधा अथवा कठिनाई को सोच कर कदम न उठा बैठ रहना न तो उपयोगी है, न वाञ्छनीय। इसे इसी प्रेरणा का परिणाम समझना चाहिए। फिर मेरी अकेली शक्ति एवं सामर्थ्य की यह देन नहीं है। पूर्ववर्ती लेखकों की प्रायः समस्त कृतियों ने किसी न किसी रूप में मुझे यथेष्ट सहायता पहुँचायी है। अतएव मैं उन सभी लेखकों अथवा टीकाकारों से उपकृत हूँ। पाठांश की पाण्डुलिपि तैयार करने में चि० विनोद तथा चि० नित्यानन्द तिवारी ने अपना यत्किंचित् सहयोग दिया है जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

डॉ० देवीप्रसन्न मैत्र तथा उनके परिवार ने समय-समय पर जिस आत्मीयता के साथ मुझे निरापद स्थान में काम करने की सुविधा प्रदान की है उसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। परन्तु स्नेहमयी 'ज्वालामुखी' का सक्रिय सहयोग यदि न मिला करे तो मेरे सभी ऐसे संकल्प मन के मन में ही रह जाया करें। अतएव जो सुख-दुःख का साक्षी एवं भागीदार है उसे कैसे भुलाया जा सकता है।

अन्त में मैं चि० मोहनदास एवं चि० विट्ठलदास के प्रति अपना आभार मानता हूँ जिन्होंने धैर्य तथा उत्साह के साथ इसे प्रकाशित किया है। मुद्रण सम्बंधी भूलों के लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

९८/४ ए पुरुषोत्तमनगर,
इलाहाबाद
१ जनवरी १९६१

—नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

भूमिका

उपक्रम

प्राचीन भारतीय वाङ्मय अपने कलेवर मे जितना ही विशाल एव विविध है, अतरग दृष्टि से वह उतना ही गहन तथा गभीर है। मत्रद्रष्टा अथवा क्रान्तदर्शी ऋषियों की अतर-दृष्टि तथ्य विश्लेषण से अधिक तत्त्व-चिन्तन पर ही केन्द्रित रही है। उनके चिन्तन का विषय चारों पुरुषार्थों मे से अधिकतर 'धर्म एव मोक्ष' ही रहा है। यद्यपि लौकिक जीवन का सम्बध-सूत्र प्राय 'अर्थ तथा काम' द्वारा ही सचालित होता है। फिर भी वहाँ पर धार्मिक अथवा आध्यात्मिक स्वर जितना मुखर है, उतना अन्यान्य नहीं। सामाजिक स्तर पर उसका अधिकाश एकागी तथा एकदेशीय है। यदि कहीं पर दृष्टि-प्रसार लक्षित होता भी है तो वह कीर्त्तिधवल उत्तुग शैल-शिखरों पर ही अधिक टिका है, जन सकुल तमसावृत्त उपत्यकाओं मे कम ही रम सका है जिस कारण, उनके आधार पर सम्पूर्ण सामाजिक जीवन का विशद चित्र नहीं उभड़ पाता है। लौकिक जीवन का स्पष्ट परिचय हमे वहाँ पर नहीं मिल पाता, केवल इतस्तत उसका आभास मात्र मिलता है। उसमें से ऋषि तथा देव वर्ग के अतिरिक्त मनुष्य का जो रूप झलकता है वह अधिकतर व्यक्ति का न होकर विभूति का है जन-साधारण से भिन्न 'कुलीन एव सभ्रान्त' वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। शेष दस्यु, दैत्य तथा म्लेच्छादि कोटि के कहला कर हेय अथवा तिरस्कृत ठहराये जाते है। यही नहीं, सभी युगों मे 'दास-प्रथा' भी किसी न किसी रूप मे प्रचलित रही है।[1]

ऐसे ग्रथ जो लौकिक जीवन के अधिक निकट है बहुत थोड़ी सख्या में सुलभ हैं। उनमे 'गाथा सप्तशती' का स्थान महत्त्वपूर्ण है, जहाँ मूलत लोक जीवन का सहज हास-विलास, आह्लाद-विषाद तथा

---

1 Dev Raj Chanana . Slavery in Ancient India, Peopels Publishing House Private Limited, New Delhi, 1960

रीति-नीति एवं आचार-विचार भी प्रचुर मात्रा में अभिव्यक्ति पा सका है। इसकी शेष बातें आनुषंगिक मात्र हैं जिनका पृथक् महत्त्व है।

ग्रंथपरिचय

'गाथा सप्तशती' एक संग्रह ग्रंथ है, यह इसके प्रथम शतक की तृतीय गाथा से स्पष्ट होते देर नहीं लगती। इसे कविवत्सल हाल ने कोटि गाथाओं से चयन करके प्रस्तुत किया था।[1] इस तृतीय गाथा में प्रयुक्त 'हालेण' शब्द का प्रयोग कतिपय टीकाकारों ने 'शालेन' 'शातवाहनेन' अथवा 'सातवाहनेन' के रूप में किया है। 'हाल' के रूप में 'शातवाहनेन' अथवा 'शातवाहन' शब्द के प्रयोग संभवतः प्राकृत रूपान्तर के कारण है। यह भी संभव है 'शातवाहन' शब्द 'सालाहण' अथवा 'हलाहण' से 'हाल' में परिवर्तित हो गया हो। यद्यपि स्वर्गीय मथुराप्रसाद प्रेमी संस्कृतज्ञ 'सालाहणिम्मि' का अर्थ 'शातवाहन' न करके 'रसायनीय' करते हैं। ऐसा लगता है कि कतिपय टीकाकार इन तीनों ही नामों से परिचित रहे हैं, क्योंकि सन् १८७२ ईस्वी में जनसाधारण निष्णात मतङ्गीक द्वारा 'गाथासप्तशती' की जो प्रति मुद्रित हुई उसका नाम 'शालिवाहन सप्तशती' ही पाया गया" जिसका समर्थन कतिपय अन्य उपलब्ध प्रतियों की अन्तिम गाथा से भी हुआ और जिसमें किसी 'चोरा' का उल्लेख पाया जाता है।"

---

१ सत्त सताइं कइवच्छलेण कोडीअ मज्झआरम्मि।
हालेण विरइआइं सालंकाराणं गाहाणं ॥ १।३ ॥

२ [illegible]।
[illegible] ॥ ([illegible])

३ केवल स्मृति अंक, नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५१ अंक ३-४ संवत्
२ पृ० २५३।

४ जर्नल ऑफ् रायल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई शाखा, खण्ड १
संख्या २६, पृ० २१०–१९ ।

५ हेमो [illegible]।
[illegible] ॥ इत्या—
देखिए Das Saptaçatakam, Verse 409

गाथा कोश

दण्डी ने सर्गबद्ध अथवा महाकाव्य के अगीभूत जिन पद्य ग्रथों का उल्लेख किया है उनमे कोश-ग्रथ अद्वितीय है। उनके परवर्ती विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' के छठें अध्याय मे कोशग्रथ का लक्षण इस प्रकार दिया है "कोश' श्लोक समूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षक" अर्थात् कोश-काव्य के श्लोक परस्पर निरपेक्ष होते हैं।

उपर्युक्त 'कोश' के सन्दर्भ मे हमारा ध्यान सर्वप्रथम कोटि गाथाओं वाले 'गाथाकोश' की ओर आकर्षित हो जाता है जिसका उल्लेख सस्कृत साहित्य तथा प्राकृत सुभाषितों मे यत्र-तत्र पाया जाता है। वहाँ पर कवि एव कोशकार के रूप मे 'हाल' की स्पष्ट चर्चा है। बाणभट्ट[1], उद्योतन सूरि[2], अभिनन्द[3], राजशेखर[4], हेमचन्द्र[5], जिनप्रभ सूरि[6], मेरुतुग[7] सोड्ढल[8] और राजशेखर सूरि[9] ने अपनी-अपनी रचनाओं में विशालकाय ग्रथ 'गाथाकोश' की ओर इगित किया है। इनकी रचनाएँ ईसा की सातवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी के बीच की हैं। इस प्रसग मे यह सोचने का अवसर मिल जाता है कि 'गाथाकोश' अथवा 'गाथा सप्तशती' एक की न होकर दो विभिन्न रचनाओं की सज्ञाएँ है। कारण, 'गाथा सप्तशती' की गाथाओं की सख्या सात सौ निर्धारित है, जबकि विशालकाय 'गाथाकोश' की गाथाएँ करोड की सख्या में हैं। उद्योतन सूरि द्वारा उल्लिखित 'गाथा कोश' और राजशेखर द्वारा वर्णित 'गाथा सग्रह' अभिन्न प्रतीत होते हैं। मेरुतुग ने 'प्रबन्ध चिन्तामणि' मे जिस 'गाथा कोश' की चर्चा की है वह विचारणीय

---

१ अविनाशिनमग्राम्यमकरोत् सातवाहन ।
विशुद्धजातिभिः कोषरत्नैरिव सुभाषितै ॥ (हर्षचरित)

२ कुवलय काव्य मीमासा, सम्पादकीय टिप्पणी, पृ० १२।

३ वही। ४ रामचरित ६।९३ एव २२।१००।

५ कर्पूर मजरी एव सूक्ति मुक्तावली।

६. अभिधान रत्नमाला, देसीनाम माला, वर्ग ८, गाथा ६१।

७ कल्प प्रदीप। ८. उदय सुन्दरी।

९ प्रबन्ध चिन्तामणि, अथ सातवाहन प्रबन्ध, पृ० १०–११।

है।[1] सातवाहन ने चार करोड़ स्वर्ण मुद्राओं द्वारा 'गाथा चतुष्टय' को लेकर जिस 'सप्तशती गाथा प्रमाण' का 'संग्रह गाथा कोश' का हाल तैयार कराया वह निश्चित रूप से चार गाथाओं का संग्रह मात्र न होकर चार भागों वाला 'गाथा कोश' हो सकता है जिसका समर्थन जिन-प्रभ सूरि की इस उक्ति द्वारा हो जाता है कि 'गाथा कोश' चार भागों में बँटा था। परन्तु अभी तक किसी ऐसे संग्रह की प्राप्ति नहीं हो सकी है जिसके अभाव में भ्रमवश 'गाथा सप्तशती' को ही 'गाथा कोश' मान लेने की परम्परा चल पड़ी है। कृति एवं कृतिकार में नाम साम्य होने के कारण यह भ्रान्त धारणा तथ्य रूप में स्वीकार कर ली गई है जिसकी चपेट में बड़े-बड़े टीकाकार तथा इतिहासज्ञ तक आ गए हैं और इसी को परवर्ती लेखकों तक ने पुष्ट किया है।

रचनाकाल

फलस्वरूप 'गाथा सप्तशती' सातवाहन (प्रथम शताब्दी) की रचना मान ली गई है और उसके अंतर्गत उल्लेखों को तत्कालीन बतलाया जाने लगा है। कतिपय विद्वानों ने अन्तःसाक्ष्य के आधार पर शंका प्रकट करते हुए काल-निर्धारण सम्बन्धी भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किए हैं। कीथ[2] ने यदि इसे दूसरी से पाँचवीं शताब्दी के बीच का बतलाया है तो वेबर[3] ने तीसरी तथा सातवीं शताब्दी के मध्य का। इसी प्रकार भाण्डारकर[4] ने यदि इसे छठी शताब्दी का माना है तो मिराशी ने पहली से आठवीं शताब्दी तक का होने का अनुमान किया है और नीलकण्ठ शास्त्री[5] ने दूसरी-तीसरी शताब्दी के पक्ष में अपना

---

१ चतुर्विंशति प्रबन्ध ... ... बम्बई ... खंड १ पृ ११८।

२ कीथ संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ २२३।

३ वेबर Das Saptaçatakam Des Hala (1881) Introduction, p. ii
भाण्डारकर की ... ... भाण्डारकर स्मारक ग्रंथ पृ० १ ९।

४ इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली दिसंबर १९३७ खंड १३, पृ ३ ०१

५ नीलकण्ठ शास्त्री ... ... हिस्ट्री ऑफ साउथ इण्डिया, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, पृ ... ... ११।

मत व्यक्त किया है। परन्तु किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व और अधिक ऊहापोह कर लेना अभीष्ट है।

रचयिता

'गाथा सप्तशती' के रचयिता पर विचार करते समय जब हम कोशकार सातवाहन की विशेषताओं पर ध्यान देते हैं तो कुछ स्पष्ट भेद लक्षित होने लगते हैं। कोशकार हाल का जैनमतावलम्बी होना प्रसिद्ध है, यद्यपि इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है, केवल जैन ग्रथों में उनका उल्लेख मात्र है, जबकि 'गाथा सप्तशती' का रचयिता शैव है और यह बात मगलाचरण वाली गाथा से ही स्पष्ट होते देर नहीं लगती।[1] कोशकार हाल का उल्लेख जैन प्रवन्धों मे तो पाया ही जाता है इसके अतिरिक्त वह कई जैन तीर्थों का उद्धारक तथा प्रतिपालक कहा गया है। सस्कृत एव प्राकृत साहित्य मे ऐसे सन्दर्भ आते हैं जिनसे कोशकार सातवाहन दानी, धर्मात्मा, पराक्रमी, लोकहितैषी एव विद्यानुरागी जान पड़ता है। उसकी तुलना भोज और मुज आदि से की गई है। बाणभट्ट ने तो उसे 'त्रिसमुद्राधिपति' की सज्ञा से विभूषित किया है। हेमचन्द्र और मेरुतुग ने उसे नागार्जुन का शिष्य बतलाया है जो उसका समकालीन था। इसके विपरीत 'गाथा सप्तशती' का रचयिता हाल विलासी रुचिवाला और प्राकृत प्रेमी शृगारी कवियों का आश्रयदाता है। इसके अतिरिक्त 'गाथा सप्तशती' में जो रचनाएँ सकलित हैं उनका रचना-काल भी विचारणीय है।

रचना-काल

ग्रथ-रचना-काल निर्धारित करते समय जब हमारा ध्यान तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति की ओर जाता है तो हमे यह देख कर आश्चर्य होता है कि ग्रथ मे बौद्धधर्म को यथेष्ट महत्त्व नहीं दिया गया है। इसके विपरीत यदि उसका कहीं उल्लेख हुआ भी है तो

---

१ पसुवइणो रोसारुणपडिमासकत गोरिमुहअन्द।
गहिअ अग्घ पङ्कअ विअ सझासलिलेञ्जलिं णमह ॥ १।१ ॥

का सम्मान-सूचक कदापि नहीं है।¹ जबकि बौद्धधर्म के लिए प्रथम शताब्दी उत्कर्ष-काल ठहराया जा सकता है। अशोक का शासन-काल बौद्धधर्म के प्रचार एवं प्रसार का युग रहा है, ऐसे समय की रचना में उक्त धर्म का इस प्रकार का उल्लेख होना स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता है। इसके विपरीत यहाँ पर राधा कृष्ण, हर गौरी, गणेश, वामन, कालिका, सरस्वती और लक्ष्मीनारायण आदि की अधिक चर्चा है। यहाँ पर पौराणिक देवी-देवताओं का ही प्राधान्य है जो उस युग की प्रवृत्ति के अनुरूप नहीं है। ऐसी दशा में यह अनुमान करने का आधार मिल जाता है कि 'गाथा सप्तशती' गुप्तकाल अथवा उसके बाद का संभव है जैसा कि श्री मथुरानाथ शास्त्री ने भी अपनी भूमिका में संकेत किया है।

परिशोध के आधार पर यह विचारणीय है कि प्राचीन लेखकों द्वारा जहाँ-कहीं 'गाथाकोश' का उल्लेख हुआ है वहाँ पर 'गाथा-सप्तशती' का नाम नहीं आया है। इसी प्रकार संकलित गाथाओं की सात सौ संख्या का इनमें कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। दसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक यही स्थिति है। हेमचन्द्र जिनप्रभ सूरि और राजशेखर सूरि आदि ने भी 'गाथाकोश' का ही नाम लिया है। बारहवीं शताब्दी के मेरुतुंग ही सर्वप्रथम लेखक हैं जिन्होंने 'गाथा सप्तशती' का नामोल्लेख किया है। ऐसा लगता है कि 'गाथा सप्तशती' का यहीं से सातवाहन संकलित 'गाथाकोश' कहलाने की सूत्र आरंभ हुई है। मेरुतुंग ने जिस 'गाथा चतुष्क' का उल्लेख किया है उससे 'गाथा सप्तशती' की संगति नहीं बैठती है। 'गाथा सप्तशती' को प्रथम शताब्दी का संभव मानने में एक अन्य बाधा भी है वह यह कि उसके बाद गोवर्धन की 'आर्या सप्तशती' के रचना-काल बारहवीं शताब्दी तक किसी अन्य सप्तशती का पता नहीं चलता है। श्री मथुरानाथ शास्त्री ने अपनी भूमिका में यह दिखलाने का यत्न किया है कि 'आर्या सप्तशती' की कई गाथाओं पर 'गाथा सप्तशती' का स्पष्ट प्रभाव है। इससे इस अनुमान करने का और अधिक अवसर मिल जाता है कि 'गाथासप्तशती' दसवीं बारहवीं शताब्दी के बीच का संकलन है।

---

१ [illegible] पेरंत बहुरा [illegible]।
पुरअ [illegible] [illegible]॥

पाठभेद

उत्तर तथा दक्षिण भारत में 'गाथा सप्तशती' की कई प्रतियाँ उपलब्ध बतलायी जाती है। वेबर ने प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर पाठों को शोधने के लिए नियम (Vorwort, p XXVII) बनाया जिसके अनुसार चार सौ तीस गाथाओं के पाठ परस्पर मिलान के बाद निर्धारित हुए, किन्तु मूल 'गाथा सप्तशती' की सख्या इससे कहीं अधिक है। कविवत्सल हाल ने कोटि गाथाओं मे से सात सौ गाथाओं को चुन कर सकलित किया अथवा करवाया था। अतएव मूलत सात सौ से कम गाथाएँ नहीं होनी चाहिए।

क्रमभेद

'गाथा सप्तशती' की उपलब्ध प्रतियों की गाथाओं के क्रम में एकरूपता नहीं है। प्रतिलिपि करने अथवा कराने वालों ने मनमानी रीति से उन्हें क्रमबद्ध कर दिया है। कहीं-कहीं अन्यान्य प्रचलित गाथाओं तक का उनमे समावेश किया गया मिलता है। वेबर वाले सस्करण की उत्तरार्द्ध वाली गाथाओं मे से कई परवर्तीकालीन है। लोकप्रिय गाथाओं के मूल रूप मे हस्तलिखित न होने के कारण पाठभेद के साथ-साथ क्रमभेद के भी अधिक अवसर उपस्थित हुए हैं।

टीकाएँ

आफ्रेट के अनुसार 'गाथा सप्तशती' की लोकप्रियता का पता उसकी टीकाओं की सख्या से चल जाता है। कुलनाथ, गगाधर, पीताबर, प्रेमराज, भुवनपालन और साधारण देव ऐसे ही टीकाकार है। इनके अतिरिक्त पीताबर की टीका में भट्ट, चैतन्य, कुलपति, भट्टराघव और भोजराज के नामोल्लेख हैं। डॉ० भाण्डारकार ने किसी आजड का टीकाकार रूप में नाम गिनाया है।[1] पजाब विश्वविद्यालय

---

1 Report on the Search for Sanskrit Manuscripts during the Years 1887-91, p 26

के पुस्तकालय में माधवराज मिश्र लिखित 'वाल्लभ दीपिका' नामक हस्तलिखित टीका संगृहीत है। पंडित मथुरानाथ शास्त्री की टीका आधुनिक है। गंगाधर तथा पीतांबर की टीकाएँ पूर्ववर्ती हैं जिनका उल्लेख शास्त्री जी ने किया है। इनमें से भुवनपाल जैन और प्रेमराज सुहागल (सुहागिल) जैनी हैं, अधिक नहीं जैसा कि अनुमान किया गया है। वेबर के अनुसार 'गाथा सप्तशती' की सात प्रतियाँ और तेरह टीकाएँ उपलब्ध हैं। 'व्याख्या सनकपा' एक भिन्न टीका है।

गाथा सप्तशती के कवि

'गाथा सप्तशती' की सभी प्रतियों में संकलित गाथाओं में एकरूपता नहीं है। चार सौ तीस गाथाओं में तो समानता है, शेष में विभिन्नता है।[1] इनके रचयिताओं के भी अलग-अलग नाम मिल जाते हैं। फिर भी कई प्रतियों में कवियों के नाम परस्पर नहीं मिलते। भुवनपाल की टीका में इन रचयिताओं की संख्या ३८४ तक पहुँच जाती है। नेपाल से ताड़पत्र पर लिखित एक खण्डित प्रति प्राप्त हुई है जिसमें चार सौ तीस गाथाएँ संकलित हैं और जो सभी उपलब्ध प्रतियों में एक-सी हैं। इस प्रकार लगभग दो सौ सत्तर अथवा इससे अधिक गाथाओं में ही हेर-फेर है।

कवियों की नामावली पर विचार करते समय यह स्पष्ट होते देर नहीं लगती कि इनमें से अधिकांश का समय प्रथम शताब्दी के बाद का है और यह उन चार सौ तीस मूल गाथाओं के कवियों पर भी लागू होता है। इसलिए यह मानने का सबल कारण है कि मूल में ही इन कवियों की रचनाओं को संकलित कर लिया गया है। इससे काल-निर्णय करने में भी सहायता मिलती है। मूल 'गाथा-सप्तशती'

---

१ [illegible] Gatha Sapta Sati, Introduction, p 15

२. वेबर Das Saptaçatakam Des Hala, XXVIII, Indische Studien XVI, p. 9

३. वेबर Das Saptaçatakam Des Hala (1881) p XXVIII, मिराशी The Date of Gatha Saptasati, Indian Historical Quarterly Dec. 1947

के कतिपय रचयिताओं के कालक्रमादि पर यहाँ विचार कर लेना उपयोगी है जो इस प्रकार है—

(१) प्रवरसेन भुवनपाल की टीका मे इन्हें प्रवर, प्रवरराज अथवा प्रवरसेन कहा गया है। पीतांबर की टीका मे भी इनका उल्लेख है। यही बात निर्णयसागर प्रेस वाले संस्करण मे पायी जाती है। इन्हें प्राकृत काव्य 'सेतुबन्ध' और 'रावण वहो' का रचयिता बतलाया जाता है। बाण, दण्डी तथा आनन्दवर्द्धन के उल्लेखों के आधार पर इनका समय सातवीं शताब्दी से पूर्व होना चाहिए। यदि इन्हें हम वाकाटक वंशीय द्वितीय प्रवरसेन मान लें तो यह समय पाँचवीं शताब्दी का हो सकता है जो कश्मीर नरेश प्रवरसेन का समसामयिक भी कहला सकता है।

(२) सर्वसेन भुवनपाल और पीतांबर की टीकाओं में इनका नाम मिलता है। दण्डी ने 'अवन्ति सुन्दरी' में प्राकृत काव्य 'हरि विजय' के रचयिता को राजा बतलाया है। यह वाकाटक वंशीय वत्सगुल्म शाखा का संस्थापक हो सकता है जो प्रथम प्रवरसेन के पुत्रों में से एक था। इसका उल्लेख इसके पुत्र द्वितीय विन्ध्यशक्ति के बसीम ताम्रपत्र तथा अजन्ता की १६ संख्यक गुफा मे पाया जाता है। सर्वसेन का समय चौथी शताब्दी का द्वितीय चरण है।

(३) मान मिराशी इन्हें राष्ट्रकूट वंश का संस्थापक मानाङ्क मानते हैं जिनका समय चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध का मध्य है। सतारा जिला का मान अथवा मानपुर इस घराने का मुख्य स्थान है। कर्नल टॉड को मोरी राजा मान का एक शिलालेख मानसरोवर झील (चित्तौड़) से भी प्राप्त हुआ था।

(४) देव अथवा देवराज इसे मिराशी राष्ट्रकूट वंशीय मानाङ्क का पुत्र बतलाते हैं जिसके दरबार मे कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय ने दौत्य कार्य करने के लिए भेजा था। इस राजा का उल्लेख राष्ट्रकूट वंश की दो ताम्रलिपियों में हुआ है। ये दोनों पिता-पुत्र मुक्तक-काव्य के रचयिता तथा प्राकृत कविता के प्रेमी थे। 'देसीनाममाला' में देसी नामों के किसी कोश की चर्चा है जो देवराज कृत बतलाया जाता है। नवीं-दसवीं शताब्दी के शिलालेखों मे भी इस नाम के अन्यान्य राजाओं के उल्लेख पाये जाते हैं।

(५) वाक्पतिराज — यह महाराष्ट्रीय प्राकृत काव्य 'गउडवहो' तथा 'मधुमथन विजय' का रचयिता समझा जाता है। इसकी चर्चा आनन्दवर्धन अभिनवगुप्त और हेमचन्द्र ने भी की है। कन्नौज के प्रतिहार राजा यशोवर्मन का यह राजकवि था और 'वाक्पतिराज' परमार राजा मुंज का एक विरुद भी था। भवभूति का यह समसामयिक है। यह आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का ठहरता है।

(६) कर्ण अथवा कर्णराज — अकोला जिले के वराड़ा ग्राम से इस नाम के कई सिक्के मिले हैं। मिराशी के अनुसार यह सातवाहन वंशीय एक राजा है जिसका समय तीसरी शताब्दी का द्वितीय चरण है।

(७) अवन्तिवर्म्मन — यह नवीं शताब्दी का प्रसिद्ध काश्मीर नरेश है जिसके दरबार में 'ध्वन्यालोक' के प्रणेता आनन्दवर्धन रहते थे।

(८) ईशान — यह बाणभट्ट का मित्र तथा समसामयिक प्राकृत का प्रसिद्ध कवि था जिसका नामोल्लेख 'कादम्बरी' में पाया जाता है। इसका समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

(९) दामोदर — यह आठवीं शताब्दी के काश्मीर नरेश जयापीड का प्रधान मंत्री हो सकता है जो 'कुट्टनीमतम्' का रचयिता बतलाया जाता है। इसमें 'रत्नावली' की कथा और एक पद्य पाया जाता है।

(१) मयूर — बाणभट्ट ने इसे प्राकृत भाषा का कवि और अपना श्वसुर बतलाया है। इसलिए इसका समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध होना चाहिए।

(११) बप्प स्वामी — यह प्रसिद्ध कवि तथा जैन आचार्य समझा जाता है जो प्रतिहार राजा नाग का पौत्र अथवा द्वितीय नागभट्ट का मित्र एवं समसामयिक था। प्रभाचन्द्र सूरि की रचना 'बप्पभट्टि चरित' (प्रभावक चरित) में इसका उल्लेख मिलता है। इसका समय नवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध होना चाहिए।

(१२) वल्लभ अथवा भट्ट वल्लभ — आनन्दवर्धन कृत 'देवीशतक' की टीका में कैय्यट ने अपने को वल्लभदेव का पौत्र कहा है जिसका समय दसवीं शताब्दी का चतुर्थ चरण है। अपनी रचना 'विषमदलन' काव्य में कवि ने पूर्ववर्ती कवि कालिदास तथा बाणभट्ट की चर्चा की है। इस प्रकार इसका समय आठवीं-नवीं शताब्दी हो सकता है।

(१३) नरसिंह शार्ङ्गधर पद्धति एव 'ध्वन्यालोक' की टीका मे इस कवि के कई श्लोकों का पता चलता है। यह सोलकी राजा भी हो सकता है जो धारवार जिले का निवासी था। दसवीं शताब्दी के कवि पप रचित 'विक्रमार्जुन विजय' मे इस वश के दस राजाओं का उल्लेख मिलता है। इस नामावलि मे नरसिंह नामक दो राजा हैं। कवि पप द्वितीय नरसिंह का समसामयिक था। कन्नौज नरेश यशोवर्म्मन का उपनाम 'नरसिंह' कहा गया है।

(१४) अरिकेसरी यह नरसिंह का पुत्र समझा जाता है। द्वितीय अरिकेसरी कवि पप का समसामयिक है।

(१५) वत्स, वत्सराज अथवा वत्स भट्टी नवीं शताब्दी मे कन्नौज के गुर्जरप्रतिहार वशीय वत्सराज नामक राजा रहा है। पाँचवीं शताब्दी का 'मदसोर प्रशस्ति' का रचयिता वत्सभट्टी इन गाथाओ का रचयिता हो सकता है। इस अवधि के भीतर इस नाम के कई व्यक्ति अथवा राजा हुए है जो हर हालत मे परवर्ती कालीन है।

(१६) आदि वराह नवीं शताब्दी की ग्वालियर प्रशस्ति मे प्रतिहार राजा भोजदेव का उपनाम 'आदि वराह' दिया गया है। बहुत सभव है कि यही वह कवि है।

(१७) माउरदेव स्वयभू प्राकृत साहित्य का प्रख्यात जैन लेखक है जो अपने को भाषा-कवि माउरदेव का पुत्र बतलाता है। 'पउम चरिउ', 'पचमी चरिउ' तथा 'रिट्ठनेमि चरिउ' इसकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इसके एक व्याकरण की चर्चा मिलती है जो न तो प्रसिद्ध है, न उपलब्ध। प्राकृत भाषा के छद पर इसकी किसी रचना का पता नहीं चलता है। इसका समय सातवीं-आठवीं शताब्दी सभव जान पड़ता है।

(१८) विअड्ढ (विअड्ढइन्द्र) स्वयभू के ग्रथों मे प्राकृत तथा अपभ्रश के कवि रूप मे इनका उल्लेख मिलता है। इनका समय छठीं-सातवीं शताब्दी हो सकता है।

(१९) धनञ्जय इस नाम के दो कवि विख्यात है। एक मालवा नरेश मुज परमार का दरबारी कवि था जो भोज तथा सिन्धुल का समसामायिक था। एक अन्य धनञ्जय नामक लेखक का सस्कृत श्लोक 'धवला' टीका मे उद्धृत है जो धनञ्जय 'नाममाला' का ही है। यह सस्कृत का महाकवि है जिसका 'द्विसधान' महाकाव्य 'काव्यमाला' से

प्रकाशित है। 'नाममाला' कोश प्राकृत का नहीं संस्कृत का कोश है। इसकी टीका आठवीं शताब्दी की है। इस प्रकार ये दोनों कवि छठी से दसवीं शताब्दी के बीच के हैं।

(२०) कविराज कन्नौज के विख्यात कवि राजशेखर का विरुद है। राजशेखर प्राकृत का कवि तथा विद्वान था। 'कर्पूर मञ्जरी' 'काव्य मीमांसा' तथा 'सूक्तिमुक्तावली' आदि इसकी प्रसिद्ध रचनायें हैं। इसका समय नवीं-दसवीं शताब्दी है।

(२१) सिंह नवीं शताब्दी के प्रथम चरण में गुहिलोत वंशीय इस नाम का राजा था। दसवीं शताब्दी के शक्ति कुमार के आहाड़ से उपलब्ध एक शिलालेख[3] में इसकी प्रथम नरपति के पुत्र रूप में चर्चा है। 'चाटसू प्रशस्ति'[4] में इसे ईशान का आत्मज कहा गया है।

(२२) अमित (गति) यह संस्कृत भाषा का कवि और माथुर संघ का जैन मुनि है।[5] इसके संस्कृत ग्रंथ प्राकृत के संस्कृत रूपान्तर मात्र हैं। मालवा के मुंज परमार के दरबार में इसे सम्मान प्राप्त था। इसका समय दसवीं शताब्दी है।

(२३) माधवसेन यह अमित गति का गुरु है। परन्तु इसका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। संभव है स्फुट रचनायें करता रहा हो।

(२४) शशि प्रभा परमार राजा मुंज तथा उसके उत्तराधिकारियों के दरबारी पद्मगुप्त ने अपनी रचना 'नवसाहसांक चरित' में राजा सिन्धुराज की रानी शशिप्रभा का उल्लेख किया है। संभव है यही यह कवयित्री हो।

(२५) भरतहन मेवाड़ के गुहिलोत वंशीय राजा सिंह के उत्तराधिकारियों में यह नाम पाया जाता है। इसका दसवीं शताब्दी का एक

---

१ स्वर्गीय नाथूराम प्रेमी द्वारा श्री [illegible] को लिखा गया पत्र की नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५० अंक १–२, संवत् २००२ में पृ० १३–७४ छपा है।
२ दलाल काव्यमीमांसा की भूमिका, पृ० ११।
३ इण्डियन ऐन्टिक्वेरी, जिल्द ३९ पृ० १९१।
एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द ११ पृ० १२–३ ।
५ नाथूराम प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास पृ० १ १५०

शिलालेख उदयपुर के पास एकलिंग स्थान से मिला है।[1] आहाड के शिलालेख में इसे शालिवाहन का पिता सूचित किया गया है।

उपर्युक्त विवरण द्वारा 'गाथा सप्तशती' का रचना-काल निर्धारित करने में यथेष्ट सहायता मिलती है और यह स्पष्ट होते देर नहीं लगती कि वर्तमान रूप में 'गाथा सप्तशती' वस्तुत 'गाथा कोश' से भिन्न कृति है। इस प्रकार इसका परवर्ती कालीन होना भी निश्चित हो जाता है। फिर भी यह जानना शेष रह जाता है कि यह सातवाहन वंशीय कोशकार हाल से भिन्न हाल कौन और कहाँ का है जो शैव राजा भी है।

निष्कर्ष

'गाथा सप्तशती' का संकलनकर्त्ता निश्चय ही कुशल कवि अथवा काव्य मर्मज्ञ रहा होगा। ध्वन्यालोक, तल्लोचन, काव्य प्रकाश तथा सरस्वती कण्ठाभरण आदि ग्रंथों में 'गाथा कोश' की कई गाथाओं को उद्धृत किया गया मिलता है। इससे पता चलता है कि यह काव्य-प्रेमियों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय रहा है। ऐसा लगता है कि उसके अधिकतर शृंगारी गाथाओं का चयन करके यह संग्रह ग्रंथ तैयार किया गया है जिसकी पुष्टि तीसरी गाथा द्वारा हो जाती है।[2] परवर्ती टीकाकारों ने गाथा कोशकार 'हाल' (सातवाहन, शालवाहन) और 'गाथा सप्तशती' के संकलनकर्त्ता को अभिन्न मानकर दोनों की ही गाथाओं को हाल नाम से सम्बद्ध कर दिया है। यद्यपि अपवाद स्वरूप 'शाल' अथवा 'शालिवाहन' पाठ भी मिल जाते हैं।

पीताम्बर की टीका में कई स्थलों पर हाल के स्थान पर शालवाहन कर दिया गया है जो गाथाएँ गाथा कोशाकार हाल सातवाहन

१ जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई शाखा, खण्ड २२, पृ० १६६–६७।

२ सत्त सताइं कइवच्छलेण कोडीअ मज्झआरम्मि।
हालेण विरइआइं सालङ्कारार्णं गाहाण ॥ १।३ ॥
संस्कृत रूपान्तर—
सप्तशतानि कविवत्सलेन कोटेर्मध्ये।
हालेन विरचितानि सालङ्काराणां गाथानाम् ॥

भी न होकर 'गाथा सप्तशती' के संकलनकर्ता शालिवाहन भी हो सकते हैं। इस टीका में जिन कई गाथाओं का रचयिता 'शालिवाहन' है वह निर्णय सागर प्रेस वाले संस्करण में 'हाल' द्वारा रचित नहीं बतलाया गया है। इससे यह अनुमान करने का आधार मिल जाता है कि गाथाओं के रचयिताओं का नाम देने में टीकाकारों से भूलें हुई हैं। कवियों की नामावली में भी पाठभेद है और उनकी गाथाओं में भी क्रमभेद हुआ है तथा कई गाथाओं में कविता के नाम तक नहीं हैं। फिर भी 'गाथा कोश' की कई गाथायें 'गाथा सप्तशती' में समाविष्ट हैं। प्रथम शतक की प्रारंभिक तीन गाथायें और अन्य शतकों के आदि एवं अन्त की अथवा कुछ अन्य गाथायें 'गाथा सप्तशती' के 'शालिवाहन' की हैं जिनका 'शातवाहन' पाठान्तर उपलब्ध है। शेष गाथायें जो हाल नाम के साथ अंकित हैं वे शालिवाहन सातवाहन 'हाल' की रचनायें हैं जो 'गाथा कोश' से ले ली गई जान पड़ती हैं। 'गाथा सप्तशती' में सातवाहन 'हाल' के राजकवि 'पालित' तथा 'गुणाढ्य' की भी कुछ गाथायें शामिल हैं। यह उल्लेखनीय है कि 'गाथा सप्तशती' में कहीं भी 'हाल' का 'सातवाहन' रूप में उल्लेख नहीं मिलता।

गाथाओं में वर्णित विषय एवं शब्दादि से उनके रचयिता का दाक्षिणात्य अथवा महाराष्ट्री होने का अनुमान होता है। परन्तु इसके विपरीत अन्य गाथाओं में यमुना तथा मानसरोवर का भी नामोल्लेख हुआ है। यही नहीं अन्य कई ऐसे वर्णन मिलते हैं जिनका उत्तरी भारत की रीति-नीति से भी साम्य है। इसलिए यह भी ध्यान देने योग्य है।

परन्तु दूसरी शताब्दी का गोपवंशावलम्बी शालिवाहन नामक राजा जिसके संरक्षण में 'गाथा सप्तशती' का संकलन हुआ है वह मेवाड़ का गुहिलोत वंशीय राजा नरवाहन का पुत्र शालिवाहन हो सकता है। उसका शासन-काल ९७१—७७ ईसवी के आस-पास है जिसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी शक्तिकुमार था। मेवाड़ का राजवंश

१. मिराशी The Date of Gathasaptasati, Indian Historical Quarterly 1947

२. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : राजपूताने का इतिहास खण्ड १ पृ ४१०—११।

परम्परा से ही पाशुपत शैवमत का अनुयायी है। राजा शालिवाहन विलासी प्रकृति का था और उसका अंत भी दुश्चरित्रता के ही कारण हुआ। इस प्रकार राजकुल में इसका स्थान गौण बन गया और उसका उल्लेख केवल ९७७ ईसवी की आहाड अथवा ऐतपुर प्रशस्ति में ही हो सका। आबू, चित्तौड तथा रणपुर की प्रशस्तियों की वंशावली में उसका नाम तक नहीं मिलता।

गाथा कोशकार सातवाहन हाल के नौ शताब्दियों बाद मेवाड़ नरेश शालिवाहन का ही नाम आता है जिसकी राजधानी आहाड अथवा आड़ (प्राकृत में आढ्य) रही है। इसका ध्वंशावशेष अब भी उदयपुर के पास देखा जा सकता है। इसी समय के आस-पास मालवा नरेश परमार राजा मुंज ने आक्रमण द्वारा आहाड को ध्वस्त कर चित्तौड़ को हस्तगत कर लिया था।[1] इसी आहाड़ के आधार पर इन नरेशों को आहाड़िया कहने की परम्परा थी। यह स्थान तीर्थ-स्थान भी रहा है। बहुत दिनों तक दोनों शालिवाहन (गुहिल तथा सातवाहन) भ्रमवश एक ही समझे जाते रहे जिसका निराकरण स्वर्गीय ओझा जी ने किया था। इस भ्रान्ति को पुष्ट करने में जिनप्रभ सूरि तथा राजशेखर सूरि ने भी योगदान दिया था। परन्तु जिनप्रभ सूरि यह लिखना भी नहीं भूले कि यदि कहीं कोई असंभाव्य बात आ गई हो तो उसका दायित्व उन पर नहीं, 'पर-समय' पर है क्योंकि जैन कभी असंगत बात नहीं कहते।[2]

फिर भी शंका हो सकती है कि मेवाड में प्राकृत भाषा का प्रचलन था भी अथवा नहीं। तथ्य यह है कि गुप्त साम्राज्य के अवसान के बाद सातवीं से दसवीं शताब्दी तक उत्तरी भारत में प्राकृत का प्रचार अपने उत्कर्ष पर था। ग्यारहवीं शताब्दी के राजा भोज ने अपनी रचना 'सरस्वती कण्ठाभरण' में लिखा है कि "आढ्यराज के राज्य

---

१ एपिग्राफिआ इण्डिका, खण्ड १० श्लोक १०, पृ० २०।

२ अत्र च यदसम्भाव्य तत्र परसमय एव।
मन्तव्यो ह्रेतुर्यथासङ्गतवाग्जनो जैन ॥

में कौन प्राकृतभाषी तथा साहसांक के समय में कौन संस्कृतभाषी नहीं हुआ ?"[1]

आढ्यराज को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद रहा है और बाण का एक श्लोक टीकाकार शंकर के कारण विवादास्पद बना रहा। किन्तु डा॰ हाजरा ने अपने एक लेख द्वारा इसका निराकरण कर दिया।[2] उनके अनुसार बाण ने सम्राट् हर्ष के लिए आढ्यराज का प्रयोग किया है। अतएव प्राकृत-प्रेमी आढ्यराज शालिवाहन ही हो सकता है जिसका उल्लेख 'सरस्वती कण्ठाभरण' में हुआ है। इस प्रकार यह आढ्यराज मेवाड़ नरेश गुहिल शालिवाहन का ही विरुद होना चाहिए। सातवाहन हाल के लिए आढ्यराज कहा गया कहीं नहीं मिलता। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से प्राकृत एवं अपभ्रंश के प्रभाव तथा प्रयत्न के कारण 'श' का 'ह' उच्चारण हो जाना सम्भव है। अतएव शाल का हाल हो जाना असंभाव्य नहीं है। श्री सिद्धगोपाल माथुर ने अपने एक निबन्ध में इन प्रश्नों पर विस्तार *पूर्वक विचार किया है। आप लिखते हैं कि "दसवीं शताब्दी के* उत्तरार्द्ध में किसी प्राकृत-प्रेमी शैव राजा ने बहु अन्य दरबारी कवियों की सहायता से अपनी शृंगारी मनोवृत्तियों के अनुकूल प्राचीन एवं समकालीन प्राकृत कवियों की रचनाओं में से ७०० मुक्तक गाथाएँ चुनकर 'गाथा सप्तशती' या 'शालिवाहन सप्तशती' नाम से पहली बार संगृहीत की।"[3]

प्रथम प्रकाशन

'गाथा सप्तशती' को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय वेबर को है। सन् १८७० ईसवी में उन्होंने लिपजिग से Uber Das Saptaçatakam Des Hala नामक ग्रंथ प्रकाशित कराया था जिसमें तीन

---

1. केऽभूवन्नाढ्यराजस्य राज्ये प्राकृतभाषिणः।
   काले श्री साहसाङ्कस्य के न संस्कृतवादिनः॥
2. डॉ॰ आर॰ सी॰ हाजरा इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली वर्ष १९०६ पृ॰ १११–२।
3. नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६ अङ्क ३–४ संवत् २००४, पृ॰ २०।

सौ सत्तर गाथाएँ सगृहीत थीं। सन् १८७२–७४ ईसवी मे और अधिक गाथाएँ उपलब्ध हुई जिन्हें उन्होंने Zeitschrifter Deutschen Morgen Landischen Gasellschaft (26 pp 735 foll) मे प्रकाशित कराया। परन्तु 'गाथा सप्तशती' की सम्पूर्ण प्रति सन् १८८१ ईसवी में लिप्जग से ही प्रकाशित हुई जिसका नाम Das Saptacatakam Des Hala था। उन्होंने पुस्तक को शुद्ध बनाने के लिए अनेक हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया था और साधारणदेव की 'मुक्तावली' नामक टीका की 'व्रज्या पद्धति' से काम लिया था तथा कुलनाथ, गगाधर एव पीताबर की टीकाओं से भी सहायता ली थी। 'व्रज्या पद्धति' उत्तरकालीन है। 'वज्जालग्ग' मे कहा गया है कि—

एकत्थे पत्थावे जत्थ पढिजन्ति पउर गाहाओ।
त खलु वज्जालग्ग वज्ज त्ति य पद्धई भणिया॥

'व्रज्या' अर्थात विषय क्रम से सग्रह करने की पद्धति। डॉ० थामस ने 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' की प्रस्तावना मे वज्जा, व्रज्या और वर्ग को समानार्थी शब्द माना है।[1]

भारतीय संस्करण

परन्तु भारतवर्ष मे 'गाथा सप्तशती' को सर्वप्रथम सन् १८८६ ईसवी में निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित कराने का श्रेय 'काव्यमाला' सम्पादक पण्डित दुर्गा प्रसाद शर्मा तथा पणशीकर शास्त्री को है। यह सस्करण निर्णय सागर प्रेस, बम्बई द्वारा प्रकाशित 'काव्यमाला' (क्रमाक २१) में मुद्रित हुआ था जिसमें गगाधर भट्ट की 'भावलेश प्रकाशिका' टीका भी सम्मिलित है। इसे तैयार करने में चार हस्तलिखित प्रतियों की सहायता ली गई थी जिनके आधार पर पाठभेद भी दे दिया गया है। सम्पादक द्वारा सस्कृत प्रस्तावना के अतिरिक्त अकारादि क्रम से गाथाओं की अनुक्रमणिका भी दी गई है। सन् १९११ ईसवी में इसकी द्वितीयावृत्ति हुई थी। पडित मथुरानाथ शास्त्री ने इसका प्रकाशन सस्कृत छाया, विस्तृत प्रस्तावना तथा टीका सहित निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से कराया था जिसकी तृतीयावृत्ति

---

1 Ed. P W Thomas Bibliotheca Indica, No 1309

सन् १८८१ ईसवी में हुई थी। इस संस्करण के बाद पञ्जाब विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में संगृहीत हस्तलिखित प्रति की सहायता लेकर जगदीशलाल शास्त्री ने पहले ओरियंटल कालेज मेगज़ीन में और तदनन्तर सन् १९४२ ईसवी में लाहोर से हरिताम्र पीताम्बर की टीका सहित पुस्तक रूप में प्रकाशित कराया था जिसके आरम्भ में विवेचनात्मक प्रस्तावना तथा अन्त में अकारादि क्रम से गाथासूची सम्मिलित है।

यह संयोग की बात है कि सन् १९५६ ईसवी में लगभग एक साथ ही कलकत्ता से भी राधागोविन्द बसाक द्वारा बंगला संस्करण और पूने से भी सदाशिव आत्माराम जोगळेकर द्वारा मराठी संस्करण सुसंपादित होकर प्रकाशित हुए हैं। निस्सन्देह आज तक हिन्दी पाठकों के लिए ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का कोई हिन्दी संस्करण सुलभ न होना विस्मय रहा है।

भाषा

महाराष्ट्रीय प्राकृत में 'गाथा सप्तशती' की रचना हुई है। प्राकृत भाषा के कई रूप हैं जो देशकालादि के अनुसार परिवर्तित होते रहे हैं। 'काव्यालंकार' के टीकाकार नमि साधु (११ वीं ईसवी) ने "प्रकृतेति। सकलजगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहित संस्कारः सहजो वचन व्यापारः प्रकृतिः। तत्र भवं सैव वा प्राकृतम्।" द्वारा प्राकृत का परिचय दिया है। इस प्रकार प्राकृत संस्कृत के संस्कार से शून्य तथा व्याकरण के नियन्त्रण से मुक्त सामान्य जनता की स्वभाव सिद्ध बोलचाल की भाषा है। परन्तु संस्कृत तथा प्राकृत का परस्पर असम्बद्ध रहना स्वाभाविक नहीं है। 'प्राकृत संजीवनी' में कहा गया है कि "प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः।" फिर भी डॉ. गुणे इससे सहमत नहीं जान पड़ते वे दोनों को पृथक्-पृथक् मानते हैं। वररुचि प्राकृत भाषा का आदि व्याकरणकार है जो पाणिनि का परवर्ती अथवा समसामयिक है।[2] उसने महाराष्ट्री पैशाची शौरसेनी एवं मागधी इन चार भाषाओं पर विचार किया है। महाराष्ट्री प्राकृत के

1. An Introduction to Comparative Philology p. 161.

२ डॉ. केतकर प्राचीन महाराष्ट्र, पृ. ३१।

मूल स्थान को लेकर विद्वानो में मतैक्य नहीं है। दण्डी के अनुसार "महाराष्ट्राश्रया भापा प्रकृष्ट प्राकृत विदु ।" इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण सकेत है।[1] प्राकृत भापा में भी तत्सम, तद्भव एव देशी शब्दों का मिश्रण मिलता है।

प्राकृत भापा के माधुर्य की बड़ी प्रशसा की गई मिलती है। 'वज्जालग्ग' में जयवल्लभ ने निम्नलिखित गाथा उद्धृत की है—

देसियसद्दपलोट्ट महुरक्खरछन्दसठिय ललिय ।
फुडवियडपायडत्थ पाइअकव्व पढेयव्व ॥ २८ ॥[2]

इसी प्रकार राजशेखर ने सस्कृत एव प्राकृत भापा की तुलना करते हुए 'कर्पूरमजरी' (निर्णयसागर प्रेस सस्करण १।८) मे लिखा है कि—

परुसा सक्कअवधा पाउअबधो वि होइ सउमारो।
पुरिसमहिलाणॅ जेत्तिआमहतर तेत्तिअमिमाण ॥[3]

वाक्पति राजा के निम्नलिखित उद्गार भी ध्यान देने योग्य हैं—

णवमत्थ दसण सनिवेश सिसिराओ वन्ध रिद्धीओ।
अविरलमिणमो आ भुवन वन्धमिह णवर पययम्मी ॥
सयलाओं इम वाया विसन्ति एत्तो य णेन्ति वायाओ।
एन्ति समुद्दचिय णेन्ति सायराओच्चिय जलाइ ॥
हरिस विसेसो वियसावओ य मउलावओ य अच्छीण।
इह वहि हुजो अन्तो मुहो य हिययस्स विप्फुरइ ॥

इतने पर भी प्राकृत भापा की श्रेष्ठता मे भला किसे सन्देह रह सकता है? किसी अज्ञात कवि की उक्ति है कि—

---

१ घाटगे Maharastri Language and Literature Journal of the University of Bombay, Vol IV, Part VI, p 31

२ सस्कृत रूपान्तर—

देशीशब्दपर्यस्त मधुराक्षरच्छन्दः सस्थित ललित।
स्फुटविकटप्रकटार्थं प्राकृतकाव्य पठनीय ॥

३ सस्कृत रूपान्तर—

पुरुषा सस्कृतगुम्फा प्राकृतगुम्फोऽपि भवति सुकुमार।
पुरुषमहिलानां यावदिहान्तर तेषु तावत् ॥

अमिअं पाउअ कव्वं पढिउं सोउं अ जे ण आणन्ति।
कामस्स तत्त तत्तिं कुणन्ति ते कहं ण लज्जन्ति॥

अर्थात् 'जिसने अमृत सदृश प्राकृत काव्य का पठन अथवा श्रवण करना नहीं जाना वह कामशास्त्र की तत्त्व-चिन्ता में प्रवृत्त होते लज्जा का अनुभव क्यों नहीं करता ?'

फिर भी यह लक्ष्य करने की बात है कि नानाघाट एवं नासिक के शिलालेखों में प्रयुक्त प्राकृत 'गाथा सप्तशती' के प्राकृत जैसी नहीं है। कदाचित् यह भेद शैलीभेद के कारण है। इसका एक अन्य कारण कालभेद और स्थानभेद भी हो सकता है। सोलहवीं शताब्दी के संत कवि रज्जब जी ने प्राकृत और संस्कृत के विषय में कहा है—

बीज रूप प्राकृत और वा वृक्ष रूप भया और।
त्यों प्राकृतो संस्कृत रज्जब समझा भौर॥ ७१॥

छन्द

'गाथा सप्तशती' का 'गाथा' शब्द छन्द के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यों 'गाथा' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य से लेकर बौद्धादि साहित्य तक में विभिन्न अर्थों में किया गया मिलता है। पिंगलाचार्य ने 'अत्रा-नुक्तं गाथा' कहा है। हलायुध "अत्रप्रस्थे नामोद्देशेन यन्नोक्तं छन्दः प्रयोगे च दृश्यते तद्गाथेति मंतव्यम्" कहते हैं। रत्नशेखर सूरि ने गाथा का लक्षण इस प्रकार बतलाया है।

सामण्णे बारस अट्ठारस चार पन्नरसमत्ताओ।
कमसो पायचउक्के गाहाए हुंति नियमेणं॥
गाहाइ दले चउचउमत्तंसा सत्त; अंतेगुरुओ।
एवं बीअदले विहु नवरं छट्ठोइ एगलहू॥

कोलब्रुक गाथा को प्राकृत में संस्कृत के आर्या बतलाते हैं। डॉ गोरे ने 'गाथासप्तशती की प्रस्तावना के सातवें पृष्ठ पर गाथा का विवरण दिया है। अन्यत्र प्राकृत गाथा का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

---

१ परशुराम चतुर्वेदी संतकाव्य प्रथम संस्करण किताब महल, इलाहाबाद, पृ १२१।

2. Sanskrit and Prakrit Poetry Asiatic Researches x, p 400.

पठम बारह मत्ता, बीए अट्ठारएहि सजुत्ता।
जह पठम तह तीअ, दह पञ्चविहूसिआ गाहा॥[1]

सस्कृत छन्दशास्त्र में आर्या के लिए जो नियम निर्धारित है वह भी इसी प्रकार का है—

यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थ के पञ्चदशसार्य्या॥

अर्थात् जिस छन्द का प्रथम चरण बारह मात्रा का (स्वर की लघुता एवं गुरुता के परिमाण से) द्वितीय अठारह का, तृतीय बारह और चतुर्थ पन्द्रह का होता है उसका नाम आर्या है। इस प्रकार सस्कृत की आर्या ही प्राकृत का गाथा छन्द है।

'वज्जालग्ग' में जयवल्लभ ने 'गाथा' की सराहना करते हुए कहा है—

अद्धक्खरभणियाण नूण सविलासमुद्धहसियाइ।
अद्धच्छिपेच्छियाइ गाहाहि विणा ण णाज्जति॥ ६॥

यही नहीं, आगे कहा है—

गाथा रुवइ वराई सिक्खिजन्ती गवारलोएहिं।
कीरइ लुञ्चपलुञ्चा जह गाई मन्ददोहेहिं॥ १५॥

कवि उमग में यहाँ तक कह गया है कि—

ललित महुरक्खरए जुवईजणवल्लहे ससिंगारे।
सते पाइअकव्वे को सक्कइ सक्कय पढिऊ॥

अर्थात् ललित एव मधुर, शृगारिक तथा युवती जन प्रिय गाथा सस्कृत काव्य मे कहाँ मिलेगा ?

उपसंहार

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'गाथा सप्तशती' वही रचना नहीं है जिसे 'गाथा कोश' नाम द्वारा अभिहित किया जाता है। 'शालिवाहन

---

१ सस्कृत रूपान्तर—

प्रथम द्वादश मात्रा द्वितीये अष्टादशभि सयुक्ता।
यथा प्रथम तथा तृतीय दशपञ्चविभूषिता गाथा॥

सप्तशती' नामक प्रति से उन छह सहयोगी कवियों के नाम तक का पता चल जाता है जो शालिवाहन के सहायक रहे हैं।[1] अधिकांश प्रतियों की प्रारंभिक सात गाथायें इन्हीं द्वारा रचित बतलायी जाती हैं।

आन्ध्रभृत्य अथवा सातवाहन हाल प्रथम शताब्दी का दाक्षिणात्य राजा था जिसने 'गाथा कोश' का संकलन कराया था। वह स्वयं प्राकृत का कवि भी था। राजशेखर ने 'कर्पूर मंजरी' के विदूषक द्वारा इसकी तुलना कोटीश हरिचन्द्र और नन्दिचन्द्र आदि प्राकृत कवियों से करायी है। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में सातवाहन राजा द्वारा निर्मल जाति के रत्नों के सदृश सुभाषितों से समन्वित अग्राम्य एवं अविनाशी कोश बनाये जाने की चर्चा की है।[2]

राजशेखर ने 'काव्य मीमांसा' में लिखा है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के अन्तःपुर में संस्कृत का और कुंतल सातवाहन के अन्तःपुर में प्राकृत भाषा का प्रचलन था। कुंतल शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में भी किया है। डॉ० पीटर्सन के अनुसार सातवाहन कुंतल जनपद का अधिपति था जिसकी राजधानी पैठण (प्रतिष्ठानपुर) थी। उसका उपनाम 'हाल' अथवा शालवाहन था। मलयवती उसकी रानी थी और दीपकर्ण उसका पिता था। वह शिववर्मा का मित्र तथा गुणाढ्य का आश्रयदाता था। 'गाथाकोश' नामक एक अभिधान भाण्डारकर इंस्टिट्यूट पूना के संग्रह में क्रमांक (६८१) सन् १८८४-८७ और ३८२ सन् १८८७-९१ ईसवी का सुरक्षित है।

विषय वस्तु की दृष्टि से 'गाथा सप्तशती' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है। इस ग्रंथ में कृषिजीवी भारतीय जीवन का चित्र अंकित है। इसमें मानवी प्रवृत्तियों एवं चरित्रों का निदर्शन है। यह एक प्रकार से तत्कालीन रीति-नीति तथा आचार-विचार का कोश-ग्रंथ है, जहाँ अधिकतर जन-साधारण का ही जीवन मुखर है। पामर-पामरी

---

१ पोट्टिस (पोदिस), चुल्लह, अमरराज, कुमारिल, मकरन्दसेन और श्रीराज।

२ अविनाशिनमग्राम्यमकरोत् सातवाहनः।
विशुद्धजातिभिः कोशं रत्नैरिव सुभाषितैः॥

हालिक-हालिक पत्नी, नन्दन-दुहिता, गृहिणी-गृहपति और प्रेमी-प्रेमिका के बीच की ग्रामीण उक्तियाँ चित्ताकर्षक होने के साथ-साथ तत्कालीन समाज की कसौटी भी हैं। इसमें प्राचीन भारतीय ग्रामों उनके निवासियों, उनके पारिवारिक जीवन की विशेषताओं—यथा, सभ्यता एवं संस्कृति का चित्रमय परिचय मिलता है। ऐसा लगता है कि इन्हीं को लक्ष्य कर इन गाथाओं की रचना हुई थी। कदाचित् इसी कारण, इसमें स्वभावोक्ति का स्पष्ट प्रमाण मिलता है जो 'शिष्ट समाज' द्वारा लाञ्छित होकर 'अश्लील उक्ति' तक कहलाकर प्रसिद्ध है। यह ग्रंथ शृंगार-रस प्रधान है। इसमें विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। इसी प्रकार संयोग-वियोग के मनोहारी उद्गार भी प्रचुर मात्रा में सुलभ हैं। ये ग्रामीण मनोभाव परिमार्जित न होकर अपने प्रकृत रूप में हैं। इनका भीतर-बाहर एक समान है। इसी कारण यह ग्रंथ 'लोक-साहित्य' की तालिका में महत्त्वपूर्ण स्थान पाने का अधिकारी है। परवर्ती काल के कई कवि और लेखक इस ग्रंथ के भाव तथा शैली के ऋणी हैं।

'गाथा सप्तशती' के सांस्कृतिक अध्ययन के लिए एक स्वतंत्र ग्रंथ अपेक्षित है। इस सन्दर्भ में प्रथम शतक की ४८वीं गाथा—

अण्णमहिलापसङ्गं दे देव करेसु अम्ह दइअस्स।
पुरिसा एक्कन्तरसा ण हु दोष गुणे विआणन्ति॥

अर्थात् हे देव, हमारे प्रियतम के निमित्त दूसरी महिला की आसक्ति का विधान करो, नहीं तो पुरुष एकरस स्वादी हो जायेंगे एवं किसी के गुण-दोष को विशेष भाव से नहीं समझ पायेंगे।

इसकी सामाजिक व्याख्या करना नृतत्त्व विशारदों अथवा समाज-शास्त्रियों का विषय है। जहाँ तक अपना सम्बंध है इस सन्दर्भ में पाठकों का ध्यान मैं राजगृह के बुद्ध भक्त पूर्ण श्रेष्ठि की कन्या उत्तरा-वाली बौद्ध कथा[1] की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ जिसका विवाह अबौद्ध परिवार में हुआ था। फलस्वरूप चातुर्मास में वह न तो धर्म श्रवण कर सकती थी और न भिक्षु-भोजन करा पाती थी। एक

१ धम्मपद, कोधवग्गो—३ तथा अट्ठसालिनी नाम धम्मसंगणिप्पकरणट्ठकथा—३।१

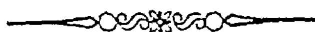
दिन वसन अपने पिता के निकट अपनी मनोव्यथा व्यक्त की जिसके उत्तर में उनके पिता ने पन्द्रह हजार कार्षापण उसे इस हेतु दिया कि वह इसे देकर अपने स्वामी की देखभाल के लिए सिरिमा अथवा श्रीमती गणिका को नियुक्त कर दे।

इस प्रकार उत्तरा ने पन्द्रह दिन के लिए श्रीमती को स्थानापन्न कर दिया। वह राजवैद्य तथा प्रधान अमात्य जीवक कौमारभृत्य की कनिष्ठ भगिनी एवं वैशाली की नगर-वधू अम्बपाली की कन्या थी।

यदि उपर्युक्त घटना सच है तो पिता द्वारा अपनी कन्या को एक सुझाव देकर उसकी सहायता करना और पत्नी का अपने पति के लिए गणिका नियुक्त करना गया था समझने में सहायक हो सकता है। यद्यपि मनोवैज्ञानिक अथवा प्रचलित सामाजिक प्रथा से उक्त आचरण विरोधित नहीं जान पड़ता फिर भी यह कथा एक परोक्ष समाधान प्रस्तुत करती है।



हिन्दी-गाथासप्तशती



प्रथम शतक

पसुवइणो रोसारुणपडिमासंकंतगोरिमुहअन्दं ।
गहिअग्घपंकअं विअ संझासलिलञ्जलिं णमह ॥ १ ॥

[पशुपते रोपारुणप्रतिमासक्रान्तगौरीमुखचन्द्रम् ।
गृहीतार्घपङ्कजमिव सन्ध्यासलिलाञ्जलिं नमत ॥]

पशुपतिकी सन्ध्या-सलिलाञ्जलिको नमस्कार करें—जिसमें गौरीका (किसके ध्यानमें मग्न हो अञ्जलि प्रदानकर रहे हैं—इससे उत्पन्न) रोषारुण मुखचन्द्र सक्रान्त हुआ है, एवं इस कारण ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो अर्घपद्म ही ले लिया गया है ॥ १ ॥

अमिअं पाउअकव्वं पढिउं सोउं अ जे ण आणन्ति ।
कामस्स तत्ततन्तिं कुणन्ति ते कहँ ण लज्जन्ति ॥ २ ॥

[अमृतं प्राकृतकाव्यं पठितुं श्रोतुं च ये न जानन्ति ।
कामस्य तत्त्वचिन्तां कुर्वन्तस्ते कथं न लज्जन्ते ॥]

जो अमृत सरीखे प्राकृतकाव्यका पाठ एवं श्रवण करना नहीं जानते वे कामकी तत्त्वचिन्तामें प्रवृत्त हो लज्जित क्यों नहीं होते ? ॥ २ ॥

सत्त सताइं कइवच्छलेण कोडीअ मज्झआरम्मि ।
हालेण विरइआइं सालङ्काराणँ गाहाणम् ॥ ३ ॥

[सप्तशतानि कविवत्सलेन कोटेर्मध्ये ।
हालेन विरचितानि सालङ्काराणां गाथानाम् ॥]

अलङ्कारविभूषित गाथाओंकी कोटिमें से केवल सात सौ गाथाएँ जिन्हें कविवत्सल हाल ने प्रणीत किया था सगृहीत की गई हैं ॥ ३ ॥

उअ णिच्चलणिप्पन्दा भिसिणीपत्तम्मि रेहइ बलाआ।
णिम्मलमरगअभाअणपरिट्ठिआ संखसुत्ति व्व ॥ ४ ॥
[पश्य निश्चलनिष्पन्दा बिसिनीपत्रे राजते बलाका।
निर्मलमरकतभाजनपरिस्थिता शङ्खशुक्तिरिव ॥]

देखो पद्मपत्र ऊपर बगुला निश्चल एवं निस्पन्द होकर अवस्थित हो वैसे ही शोभा पा रही है जैसे कि निर्मल (शुभ्र) मरकतमणिपात्रके ऊपर शङ्ख-शुक्ति अवस्थित हो ॥ ४ ॥

ताव च्चिअ रइसमए महिलाणं विब्भमा विराअन्ति।
जाव ण कुवलअदलसच्छहाइँ मउलेन्ति णअणाइं ॥ ५ ॥
[तावदेव रतिसमये महिलानां विभ्रमा विराजन्ते।
यावन्न कुवलयदलसच्छायानि मुकुलीभवन्ति नयनानि ॥]

रतिकेलिमें कामिनियोंके विलास तभी तक शोभा पाते हैं जब तक कि उनके कुवलय-दलकी-सी सुन्दर कान्तिवाले नयन मुकुलित नहीं हो जाते ॥५॥

बाउलिसमप्पणो किं ण मण्णसे मग्गसे कुरवअस्स।
एअं तुह सुहअ हसइ वलिआणणपंकअं जाआ ॥ ६ ॥
[दोहदमर्पयतः किं न मन्यसे मार्गयसे कुरवकस्य।
एवं तव सुभग हसति वलिताननपङ्कजं जाया ॥]

हे सुभग, तुम अपने कुरवकवृक्षके निमित्त प्रदीप्त अशोकवृक्षका दोहदकी याचना कर रहे हो—अपने निमित्त कुछ नहीं। इसी कारण तुम्हारी भार्या अपना मुखकमल फिराकर हँस रही है ॥ ६ ॥

ताम्मन्ति असोएहिँ णअरविणिमाणेहिँ दइअविरहम्मि।
किं वहइ कोवि कस्स वि पाअपहारं पहुप्पन्तो ॥ ७ ॥
[ताम्यन्ते अशोकैर्विरहजनिता दयितविरहे।
किं वहति कोऽपि कस्यापि पादप्रहारं प्रभवन् ॥]

कामिनियोंके विरहमें विरहव्यथित अशोकवृक्ष द्वारा भी ताड़ित होती है—प्रभावशाली होनेपर क्या कोई किसीका पादप्रहार सहन करता है ? ॥७॥

अत्ता तह रमणिज्जं अम्हं गामस्स मण्डणीहूअं।
लुअतिलवाडिसरिच्छं सिसिरेण कअं भिसिणिसंडं ॥ ८ ॥
[श्वश्रु तथा रमणीयमस्माकं ग्रामस्य मण्डनीभूतम्।
लूनतिलवाटिसदृशं शिशिरेण कृतं बिसिनीषण्डम् ॥]

हे मधु, शिशिर ऋतुने हमलोगोंके ग्रामके शोभास्वरूप उस पद्मखण्डको छिन्नतिलशेषके समान बना दिया है [कहीं ऐसा न हो कि सकेतस्थान तिलशेषवर जार उपस्थित हो] ॥ ८ ॥

किं रुअसि ओणअमुही धवलाअन्तेसु सालिछित्तेसु ।
हरिआलमण्डिअमुही णडि व्व सणवाडिआ जाआ ॥ ९ ॥
[किं रोदिष्यवनतमुखी धवलायमानेषु शालिक्षेत्रेषु ।
हरितालमण्डितमुखी नटीव शणवाटिका जाता ॥]

पके हुए शालिक्षेत्रोंके सफेद दिखायी पड़नेपर तुम मुखड़ेको नीचे कर रो क्यों रही हो ? पीतपुष्पमण्डित शणवाटिका (तो) हरिताल द्वारा मण्डित-वदना नटीकी नाईं दिखायी दो पड़ रही है ॥ ९ ॥

सहि ईरिसिच्चिअ गई मा रुव्वसु तंसवलिअमुहअन्दं ।
एआणँ वालवालुङ्कितन्तुकुडिलाणँ पेम्माण ॥ १० ॥
[सखि ईदृश्येव गतिर्मा रोदीस्तिर्यग्वलितमुखचन्द्रम् ।
एतेषां बालकर्कटीतन्तुकुटिलानां प्रेम्णाम् ॥]
हे सखि, शिशुकर्कटिका-तन्तुकी ही भाँति प्रणयकी गति कुटिल होती है (अतः) अपने मुखचन्द्रको तिरछा कर रोदन मत करो ॥ १० ॥

पाअपडिअस्स पइणो पुट्ठिं पुत्ते समारुहन्तम्मि ।
दढमण्णुदूणिआएँ वि हासो घरिणीएँ णिक्कन्तो ॥
[पादपतितस्य पत्युः पृष्ठं पुत्रे समारोहति ।
दृढमन्युदूनाया अपि हासो गृहिण्या निष्क्रान्तः ॥]

पैरोंपर गिरे हुए पतिकी पीठपर पुत्रको चढ़ते हुए देखकर, कोपके कारण अत्यन्त दुःखित गृहिणी (के मुँह) से भी हँसी फूट पड़ी ॥ ११ ॥

सच्चं जाणइ दट्ठुं सरिसम्मि जणम्मि जुज्जए राओ ।
मरउ ण तुमं भणिस्सं मरणं वि सलाहणिज्जं से ॥

[सत्यं जानाति द्रष्टुं सदृशे जने युज्यते रागः ।
म्रियतां न त्वां भणिष्यामि मरणमपि श्लाघनीयं तस्याः ॥]

हमारी सखी सत्य ही देखना जानती है कि सदृश जनोंमें ही अनुराग उपयुक्त होता है । उसे मरने दो, मैं तुमसे उस (के जीवन) के विषयमें कुछ नहीं कहूँगी, उसकी मृत्यु भी श्लाघनीय है ॥ १२ ॥

घरिणीएँ महाणसकम्मलग्गमसिमइलिएण हत्थेण।
छित्तं मुहं हसिज्जइ चन्दावत्थं गअं पइणा॥
[गृहिण्या महानसकर्मलग्नमषीमलिनितेन हस्तेन।
स्पृष्टं मुखं हस्यते चन्द्रावस्थां गतं पत्या॥]

रसोईघरके काम में लगी कालिमा द्वारा मलिन हाथके स्पर्श, गृहिणीके मुखको चन्द्रमाकी दशाको प्राप्त होते देखकर पति हँसता है ॥ १३ ॥

रन्धणकम्मणिउणिए मा जूरसु रत्तपाडलसुअन्धं।
मुहमारुअं पिअन्तो धूमाइ सिही ण पज्जलइ॥ १४॥
[रन्धनकर्मनिपुणिके मा क्रुध्यस्व रक्तपाटलसुगन्धम्।
मुखमारुतं पिबन् धूमायते शिखी न प्रज्वलति॥]

हे रन्धनकर्मनिपुणिके, खिन्न मत हो। रक्त पाटलपुष्पके सुगन्धित तुम्हारे मुख मारुत-पानके करनेसे ही अग्नि केवल धूमायमान अवस्थामें रह रहा है प्रज्वलित नहीं हो रहा है ॥ १४ ॥

किं किं दे पडिहासइ सहीहिँ इअ पुच्छिआएँ मुद्धाए।
पढमुग्गअदोहलिणीएँ णवर दइअं गआ दिट्ठी॥ १५॥
[किं किं ते प्रतिभासते सखीभिरिति पृष्टाया मुग्धायाः।
प्रथमोद्गतदोहदिन्याः केवलं दयितं गता दृष्टिः॥]

'कौन-कौन सी वस्तु तुम्हें रुचिकर रूपमें अभिलाषित होती है'—सखियों द्वारा ऐसा पूछा जानेपर प्रथम बार उत्पन्न गर्भाभिलाषवालीकी मुग्धा रमणी की दृष्टि केवल प्रियतमकी ओर ही गई ॥ १५ ॥

अमअमअ गअणसेहर रअणीमुहतिलअ चन्द दे छिवसु।
छित्तो जेहिँ पिअअमो ममं पि तेहिँ चिअ करेहिँ॥ १६॥
[अमृतमय गगनशेखर रजनीमुखतिलक चन्द्र हे स्पृश।
स्पृष्टो यैः प्रियतमो मामपि तैरेव करैः॥]

हे चन्द्र, तुम अमृतमय हो, गगन के शेखर हो एवं रजनी (रूपी नायिका) के मुखतिलक हो—जिन किरणों द्वारा तुमने मेरे प्रियतम स्पर्श किया है उन्हीं के द्वारा मेरा भी स्पर्श करो ॥ १६ ॥

एहिइ सो पि पउत्थो अहं अ कुप्पेज्ज सो पि अणुणेज्ज।
इअ कस्स वि फलइ मणोरहाणँ माला पिअअमम्मि॥ १७॥

[एष्यति सोऽपि प्रोषितोऽहं च कुपिष्यामि सोऽप्यनुनेष्यति ।
इति कस्या अपि फलति मनोरथानां माला प्रियतमे ॥]

प्रोषित वे भी लौट आयेंगे, मैं भी कोप-प्रदर्शन करूँगी एवं वे भी अनुनय करेंगे। प्रियतमके सम्बन्धमें इस प्रकारके मनोरथ समूहोंकी माला किसी भाग्यवतीको ही फलवती होती है ॥ १७ ॥

दुग्गअकुडुम्बअट्ठी कहँ णु मए धोइएण सोढव्या ।
दसिओसरन्तसलिलेण उअह रुण्ण व पडएण ॥ १८ ॥

[दुर्गतकुटुम्बाकृष्टि कथं नु मया धौतेन सोढव्या ।
दशापसरत्सलिलेन पश्यत रुदितमिव पटकेन ॥

'धोए जाने पर मैं दुर्गतकुटुम्बगण द्वारा किये हुए आकर्षणको किस प्रकार सहूँगी—मानो ऐसा ही कहकर वस्त्रखण्ड प्रान्तभाग से विगलित जलके छलसे रोदनकर रही है ॥ १८ ॥

कोसम्बकिसलअवण्णअ तण्णअ उण्णामिएहिँ कण्णेहिँ ।
हिअअट्ठिअं घरं वच्चमाण धवलत्तणं पाव ॥ १९ ॥

[कोशाम्रकिसलयवर्णक तर्णक उन्नामिताभ्यां कर्णाभ्याम् ।
हृदयस्थित गृहं व्रजन्धवलत्वं प्राप्नुहि ॥]

हे उन्नमित-कर्ण वत्स, कोष विनिर्गत-आम्रकिसलयका वर्ण तुम धारणकर रहे हो—तुम अपने हृदयाभिलषित गृहमें प्रविष्ट हो धवलता प्राप्त करो ॥ १८ ॥

अलिअपसुत्तअ विणिमीलिअच्छ दे सुहअ मज्झ ओआस ।
गण्डपरिउम्बणापुलइअङ्ग ण पुणो चिराइस्सं ॥ २० ॥

[अलीकप्रसुप्तक विनिमीलिताक्ष हे सुभग ममावकाशम् ।
गण्डपरिचुम्बनापुलकिताङ्ग न पुनश्चिरयिष्यामि ॥]

हे सुभग, अलीकनिद्रामें नयनोंको निमीलित करनेपर भी तुम अपने गण्डचुम्बनपर पुलकितांग होते हो, शय्यापर मुझे स्थान दो, मैं अब ऐसी देर नहीं करूँगी ॥ २० ॥

असमत्तमण्डणा चिअ वच्च घरं से सकोउहल्लस्स ।
वोलाविअहलहलअस्स पुत्ति चित्ते ण लग्गिहिसि ॥ २१ ॥

[असमाप्तमण्डनैव व्रज गृहं तस्य सकौतूहलस्य ।
व्यतिक्रान्तौत्सुक्यस्य पुत्रि चित्ते न लगिष्यसि ॥]

इस औपपत्तिकताके या समाचारके पूरे हुए बिना ही क्रोध करो— हे सुभि, यदि इसकी प्रसन्नता दूर हो जाय तो हो सकता है कि तुम्हें इसके चित्तमें स्थान न मिले ॥ २१ ॥

मामरपत्ताभिमग्गं मग्गहिअमणाणं मरंदमभिलासं।
अप्पपिअतुज्झमुहिए लीए परिउम्बण महिमा ॥ २२ ॥
[आदरमानभिनीतमग्नहितनामग्मर्दमकरन्दम् ।
मर्दनाभिमुखकृतानाम परिचुम्बनं रमतां ॥]

वर्षाविरम पुष्पहता शिशुमती इस रमनका स्थलीके परिचुम्बनका स्मरण करता हूँ जिसके लिए इसने आग्रहपूर्वक अनेक प्रयत्न किया था। परन्तु वर्षाविरहके कारण नासिकाको संयोजित नहीं किया एवं रमणका स्पर्श भी नहीं किया ॥ २२ ॥

अब्भासआरं देन्ती तह सुरए हरिसविसप्पन्तसोआ।
गामे वि जोअणमुही जह सेवि पिओ ण सद्दहिमो ॥ २३ ॥
[आश्वासनमपि ददती यथा सुरते हर्षविकसितकपोला।
ग्रामस्यलोचनमुखी एवं सैव प्रियो न जानाति ॥]

सुरतके समय हर्षसे पुलकितकपोला होकर प्रियतमके अंगमें बैठकी आनन्दित प्रियतमकी नायिका भी उसका होनेपर लोचनमुखी हो गयी है—यह प्रियतम नहीं कर पा रहा है ॥ २३ ॥

पिअविरहो अप्पिअदंसणं च गरुआइँ दो वि दुक्खाइँ।
जीएँ तुमं कारिज्जसि तीएँ णमो आहिजाईएँ ॥ २४ ॥
[प्रियविरहोऽप्रियदर्शनं च गुरुके द्वे अपि दुःखे।
यया त्वं कार्यसे तस्यै नम आभिजात्यै ॥]

प्रियजनका विरह एवं अप्रियजनका दर्शन—ये दोनों ही महान् दुःखके कारण हैं—तब भी तुम जिस भाव की प्रेरणा से कार्य करते हो उसी आभिजात्यको नमस्कार करती हूँ ॥ २४ ॥

एक्को वि कण्हसारो ण देइ गन्तुं पआहिणवलन्तो।
किं उण बाहाउलिअं लोअणजुअलं पिअअमाए ॥ २५ ॥
[एकोऽपि कृष्णसारो न ददाति गन्तुं प्रदक्षिणं वलमानः।
किं पुनर्बाष्पाकुलितं लोचनयुगलं प्रियतमायाः ॥]

एक कृष्णसार मृग ही प्रदक्षिणभावसे चलनेपर लोगोंको जाने नहीं देता— प्रियतमाके बाष्पाकुलित दो लोचन किस प्रकार जाने देंगे ? ॥ २५ ॥

ण कुणन्तो च्चिअ माणं णिसासु सुहसुत्तदरविबुद्धाणं ।
सुण्णइअपासपरिमूसणवेअणँ जइ सि जाणन्तो ॥ २६ ॥

[नाकरिष्य एव मानं निशासु सुखसुप्तदरविबुद्धानाम् ।
शून्यीकृतपार्श्वपरिमोषणवेदनां यद्यज्ञास्य ॥]

रात्रिमें सुखसे सोनेवाले व्यक्तियोंमें से कुछ कुछ जागे हुए की शून्यीकृत पार्श्वजनित वेदना यदि तुम जानते तो अपने अपराधको छिपानेके लिए मान न करते ॥ २६ ॥

पणअकुविआणँ दोह्न वि अलिअपसुत्ताणँ माणइल्लाणं ।
णिच्चलणिरुद्धणीसासदिण्णकण्णाणँ को मल्लो ॥ २७ ॥

[प्रणयकुपितयोर्द्वयोरप्यलीकप्रसुप्तयोर्मानवतो ।
निश्चलनिरुद्धनिःश्वासदत्तकर्णयोः को मल्ल ॥]

प्रणयकुपित, मिथ्यानिद्रित, मानयुक्त दम्पति जब निःश्वासका निरोधकर निश्चलभावसे एक दूसरेके निःश्वास शब्दपर कान लगाये रहते हैं, तब इन दो के बीच कौन अधिक समर्थ होता है ? ॥ २७ ॥

णवलअपहरं अङ्गे जेहिँ जेहिँ महइ देअरो दाउं ।
रोमञ्चदण्डराई तहिं तहिं दीसइ बहूए ॥ २८ ॥

[नवलताप्रहारमङ्गे यत्र यत्रेच्छति देवरो दातुम् ।
रोमाञ्चदण्डराजिस्तत्र तत्र दृश्यते वध्वा ॥]

नायिकाके अङ्गके जिन जिन स्थानोंपर देवर लता द्वारा प्रहार करनेका इच्छुक है, बधूके उन उन स्थानोंपर रोमाञ्चकण्टकराजि दिखायी पड़ती है ॥२८॥

अज्ज मए तेण विणा अणुहूअसुहाइँ संभरन्तीए ।
अहिणवमेहाणँ रवो णिसामिओ वज्झपडहो व्व ॥ २९ ॥

[अद्य मया तेन विना अनुभूतसुखानि संस्मरन्त्या ।
अभिनवमेघानां रवो निशामितो वध्यपटह इव ॥]

उसके विरहमें आज मैं पूर्वानुभूत सुखराशिकी बातें यादकर नव मेघवृन्द की ध्वनिको वध्यपटह-शब्दके रूपमें सुनती हूँ ॥ २९ ॥

णिक्किव जाआभीरुअ दुद्दंसण णिम्बईडसारिच्छ ।
गामो गामणिणन्दण तुज्झ कए तह वि तणुआइ ॥ १० ॥

[निष्कृप जायाभीरुक दुर्दर्शन निम्बकीटसदृक्ष ।
ग्रामो ग्रामणीनन्दन तव कृते तथापि तनूयते ॥]

हे ग्रामणीनन्दन, तुम निर्दय एवं जायाभीरु हो, तुम्हारा दर्शन पाना दुर्लभ है, तुम निम्बकीट-सदृश कुरूप रमणीका आलम्ब हो, तुम्हारे लिए सारा गाँव दुर्बल होता चला जा रहा है ॥ १० ॥

पहरवणमग्गविसमे जाआ किच्छेण लहइ से णिद्दं ।
गामणिउत्तस्स उरे पल्ली उण सा सुहं सुवइ ॥ ११ ॥

[प्रहारव्रणमार्गविषमे जाया कृच्छ्रेण लभते अस्य निद्राम् ।
ग्रामणीपुत्रस्योरसि पल्ली पुनः सा सुखं स्वपिति ॥]

ग्रामणीपुत्रके वक्षःस्थल प्रहारव्रण-चिह्नसे विषम वक्षस्थलके ऊपर उसकी जाया कष्टसे निद्रालाभ करती है किन्तु, ग्रामणीपुत्र उस वक्षस्थल विषम पुरमें वही पल्ली सुखसे सोती है ॥ ११ ॥

अह संभाविअमग्गो सुहअ तुए जेव्व णवरं णिव्वूढो ।
एह्णिं हिअए अण्णं अण्णं वाआइ लोअस्स ॥ १२ ॥

[अयं संभावितमार्गः सुभग त्वयैव केवलं निर्व्यूढः ।
इदानीं हृदयेऽन्यदन्यद्वाचि लोकस्य ॥]

हे सुभग केवल तुमने सम्भावित ओर सबोंके मन का अवलम्बन किया है—आजकल लोगोंके हृदयमें एक भाव दिखाई पड़ता है और वाणीमें अन्य भाव ॥

बहुंर बीससन्ता किंपि मह परम्मुहीएँ समअन्ते ।
हिअअं पलीविअं पि अणुसअन्तं पुणिँ पलीवेसि ॥ १३ ॥

[कथमपि किमपि मम पराङ्मुख्याः शयनार्धे ।
हृदयं प्रदीप्तमप्यनुशयानं पुनः प्रदीपयसि ॥]

तुम्हारे अपराधोंसे मैं पराङ्मुख हो सोता हूँ तब भी तुम पश्चात्ताप करते हुए अनुशयसे मेरे हृदयको प्रदीप्त करती हुई होकर भी मेरे हृदयको प्रदीप्त करती हो ? ॥ १३ ॥

तुह विरहे चिरआरअ तिस्सा विअलन्तवाहमइलेण ।
पाअपडिअस्स व मुहेण जाइ दिअहा व पत्ता ॥ १४ ॥

[तव विरहे चिरकारक तस्या निपतद्बाष्पमलिनेन ।
रविरथशिखरध्वजेनेव मुखेन च्छायैव न प्राप्ता ॥]

हे विलम्बकारक, तुम्हारे विरहमें निपतित बाष्पद्वारा मलिन उसका मुख छायाको अवलम्बन नहीं करता, उसी प्रकार जिस प्रकार सूर्यके रथके शिखरपर स्थित ध्वजा छायाको नहीं प्राप्त होती ॥ ३४ ॥

दिअरस्स असुद्धमणस्स कुलवहू णिअअकुड्डलिहिआइं ।
दिअहं कहेइ रामाणुलग्गसोमित्तिचरिआइं ॥ ३५ ॥
[देवरस्याशुद्धमनसः कुलवधूर्निजकुड्यलिखितानि ।
दिवसं कथयति रामानुलग्नसौमित्रिचरितानि ॥]

दूषित चित्त देवरके निकट कुलवधू अपनी भित्ति पर चित्रित या लिखित रामानुरक्त सुमित्रानन्दनके चरितको दिनभर वर्णन करती है ॥ ३५ ॥

चच्चरघरिणी पिअदंसणा अ तरुणी पउत्थपइआ अ ।
असई सअज्झिआ दुग्गआ अ ण हु खण्डिअं सीलं ॥ ३६ ॥
[चत्वरगृहिणी प्रियदर्शना च तरुणी प्रोषितपतिका च ।
असतीप्रतिवेशिनी दुर्गता च न खलु खण्डितं शीलम् ॥]

चौराहेपर जिसका घर हो, फिर भी जो स्त्री प्रियदर्शना हो, जो स्त्री स्वयं तरुणी हो, फिर भी जिसका पति प्रवासी हो, एवं असती कामिनी की सहवासिनी होकर भी जो दरिद्रा हो—इस प्रकारकी नारियों का चरित्र भी खण्डित नहीं होता (अर्थात् दृढ़ होता है) ॥ ३६ ॥

तालूरभमाउलखुडिअकेसरो गिरिणईएँ पूरेण ।
दरबुड्डउव्वुड्डणिवुड्डमहुअरो हीरइ कलम्बो ॥ ३७ ॥
[जलावर्तभ्रमाकुलखण्डितकेसरो गिरिनद्याः पूरेण ।
दरमग्नोन्मग्ननिमग्नमधुकरो ह्रियते कदम्बः ॥]

गिरि-नदी के जल प्रवाह में कदम्ब वृक्ष बह रहा है, उसका केसर-समूह जलावर्त के भ्रम से आकुल हो खण्डित हो रहा है एवं इसमें भौंरे कभी ईषन्मग्न, कभी उन्मग्न एवं कभी निमग्न हो रहे हैं ॥ ३७ ॥

अहिआअमाणिणो दुग्गअस्स छाहिं पिअस्स रक्खन्ती ।
णिअबन्धवाणँ जूरइ घरिणी विहवेण एन्ताणं ॥ ३८ ॥

[अविभावितमनोरथो दुर्गतस्य जाया पत्यू रक्षन्ती।
निजकावस्थानुरूपं कथयति पृष्टा विशेषदोहदम् ॥]

अपने दुःखपीड़ित दरिद्र पतिकी व्यथा रक्षा करनेके लिए पूछी जाने पर समुचित लेकर सामान्य वस्तुओंके प्रति भी दोहद प्रकाशित करती है ॥ १८ ॥

साहीणे वि पिअअमे पत्ते वि छणे ण मण्डिओ अप्पा।
दुग्गअपउत्थपइअं सअज्झिअं सण्ठवन्तीए ॥ १९ ॥
[स्वाधीनेऽपि प्रियतमे प्राप्तेऽपि क्षणे न मण्डित आत्मा।
दुर्गतप्रोषितपतिकां प्रतिवेशिनीं संस्थापयन्त्या ॥]

पतिके दुर्गत एवं प्रवासी होने पर भी अपनेको सम्हाले रखने वाली वह नायिका अपने प्रियतमके स्वाधीन होने पर भी एवं उत्सवके उपस्थित होने पर भी अपने शरीरको मण्डित नहीं कर रही है ॥ १९ ॥

तुज्झ वसइ त्ति हिअअं इमेहि दिट्ठो तुमं ति अच्छीहिं।
तुह विरहे किसिआइँ ति तीएँ अङ्गाइँ वि पिआइँ ॥ २० ॥
[तव वसतीति हृदयमाभ्यां दृष्टस्त्वमित्यक्षिभ्याम्।
तव विरहे कृशितानीति तस्या अङ्गान्यपि प्रियाणि ॥]

उसका हृदय तुम्हारा वास स्थान है उसके नेत्रद्वारा तुम देखे जाते हो एवं उसके अंग तुम्हारे विरह में कृश हैं। इस कारण से सभी उसे प्रिय प्रतीत होते हैं ॥ ॥

सब्भावणेहभरिए रत्ते रज्जिज्जइ त्ति जुत्तमिणं।
अणहिअए उण हिअअं जं दिज्जइ तं जणो हसइ ॥ २१ ॥
[सद्भावस्नेहभरिते रक्ते रज्यते इति युक्तमिदम्।
अनहृदये पुनर्हृदयं यद्दीयते जनो हसति ॥]

सच्चे सद्भाव एवं स्नेह से पूर्ण व्यक्ति का अनुराग होता है यह तो ठीक है किन्तु तुम तो हृदयहीन व्यक्ति को अपना हृदय दे रही हो, इसपर तो लोग हँसेंगे ॥ ॥

आरम्भन्तस्स धुअं लच्छी मरणं वि होइ पुरिसस्स।
तं मरणमणारम्भे वि होइ लच्छी उण ण होइ ॥ २२ ॥
[आरभमाणस्य ध्रुवं लक्ष्मीर्मरणं वा भवति पुरुषस्य।
तन्मरणमनारम्भेऽपि भवति लक्ष्मीः पुनर्न भवति ॥]

यह तो निश्चय है कि कार्यारम्भकारीको लक्ष्मीलाभ हो सकता है, मृत्यु भी हो सकती है, किन्तु यह मृत्यु तो कार्यारम्भ हुए बिना भी हो जाती है तथापि लक्ष्मी बिना आरम्भ हुए उपस्थित नहीं होती ॥ ४२ ॥

विरहाणलो सहिज्जइ आसावन्धेण वल्लहजणस्स ।
एक्कग्गामपवासो माए मरणं विसेसेइ ॥ ४३ ॥

[विरहानलः सह्यते आशाबन्धेन वल्लभजनस्य ।
एकग्रामप्रवासो मातर्मरणं विशेषयति ॥]

प्रियजनों का विरहानल आशाके कारण सहन किया जाता है, किन्तु, हे मात, एक ही ग्राममें वास करनेके कारण यदि प्रवास हो जाय तो वह मृत्युसे भी बढ़कर है ॥ ४३ ॥

अक्खण्डइ पिआ हिअए अण्णं महिलाअणं रमन्तस्स ।
दिट्ठे सरिसम्मि गुणे असरिसम्मि गुणे अईमन्ते ॥ ४४ ॥

[आस्खलति प्रिया हृदये अन्यं महिलाजनं रममाणस्य ।
दृष्टे सदृशे गुणे असदृशे गुणे अतिक्रामति ॥]

अन्य महिलाओं के साथ रमण करनेवाले हृदयके सदृश गुण दिखायी पड़नेपर भी असदृश गुण दिखनेपर प्रिया जाग उठती है ॥ ४४ ॥

णइऊरसच्छहे जोव्वणम्मि अपवसिएसु दिअसेसु ।
अणिअत्तासु अ राईसु पुत्ति किं दड्ढमाणेण ॥ ४५ ॥

[नदीपूरसदृशे यौवने अनिप्रोषितेषु दिवसेषु ।
अनिवृत्तासु च रात्रिषु पुत्रि किं दग्धमानेन ॥]

नदीकी बाढ़की भाँति यौवन अल्पस्थायी है, दिन बीतते जाते हैं एवं रात भी अब लौटकर नहीं आयेंगी। हे पुत्रि, दग्धमान द्वारा क्या मिलेगा? ॥४५॥

कल्लं किल खरहिअओ पवसिहिइ पिओत्ति सुणइ जणम्मि ।
तह वड्ढ भअवइ णिसे जह से कल्लं विअ ण होइ ॥ ४६ ॥

[कल्यं किल खरहृदयः प्रवत्स्यति प्रिय इति श्रूयते जने ।
तथा वर्धस्व भगवति निशे यथा तस्य कल्यमेव न भवति ॥]

ऐसा सुना जाता है कि मेरा क्रूरहृदय प्रियतम प्रातः ही प्रवासार्थ जायेगा, हे निशादेवि, तुम इस प्रकार बढ़ जाओ कि प्रातः ही न हो ॥ ४६ ॥

होन्तपहिअस्स जाआ आउच्छणजीअधारणरहस्सं।
पुच्छन्ती भमइ घरं घरेण पिअविरहसहिरीओ ॥ ४७ ॥

[भविष्यत्पथिकस्य जाया आप्रच्छनजीवधारणरहस्यम्।
पृच्छन्ती भ्रमति गृहं गृहेण प्रियविरहसहनशीलाः ॥]

भविष्यमें प्रवासगमनोद्यत व्यक्तिकी पत्नी, घर-घर घूमकर वियोगके समय प्राण-धारण करनेका रहस्य उनसे पूछ रही है जिन्होंने वियोग सहन किया है ॥ ४७ ॥

अण्णमहिलापसङ्गं दे देव करेसु अम्ह दइअस्स।
पुरिसा एक्कन्तरसा ण हु दोसगुणे विआणन्ति ॥ ४८ ॥

[अन्यमहिलाप्रसङ्गं हे दैव कुरुष्वास्माकं दयितस्य।
पुरुषा एकान्तरसा न खलु दोषगुणौ विजानन्ति ॥]

हे दैव, हमारे प्रियतमके निमित्त दूसरी महिलाओंसे प्रसङ्ग विधान करो, नहीं तो पुरुष एक-रसवाले हो जानेसे एवं स्त्रीके दोष तथा गुणको विशेष जानते नहीं समझ सकेंगे ॥ ४८ ॥

थोअं पि ण णीसरई मज्झण्हे उअ सरीरतलल्लुक्का।
आअवभएण छाही वि पहिअ ता किं ण वीसमसि ॥ ४९ ॥

[स्तोकमपि न निःसरति मध्याह्ने पश्य शरीरतलनिलीना।
आतपभयेन छायापि पथिक तत्किं न विश्राम्यसि ॥]

हे पथिक, मध्याह्नमें धूपके भयसे छाया भी शरीरमें छिप जाती है बाहर नहीं निकलती, अतः हमारे यहाँ तुम भी विश्राम क्यों नहीं करते ॥ ४९ ॥

सुहउच्छअं जणं दुल्लहं पि दूराहि अम्ह आणन्त।
उअआरअ जर जीअं पि णेन्त ण कआवराहो सि ॥ ५० ॥

[सुखपृच्छकं जनं दुर्लभमपि दूरादस्माकमानयत्।
उपकारक ज्वर जीवमपि नयन्न कृतापराधोऽसि ॥]

हे ज्वर तुमने मेरे बड़ा उपकार किया। दूरसे हमारे सुखचिन्तक दुर्लभ जनको हमारे निकट लाकर तुम यदि हमारे प्राणको भी ले जाओ तो भी तुम्हें अपराधी नहीं कहूँगी ॥ ५० ॥

णामक्खरो मे मन्दो माइए ण मन्दो जणस्स वा तत्ती।
सुहउच्छअ सुहअ सुअन्ध गन्ध मा गन्धिअं छिवसु ॥ ५१ ॥

[आमोज्वरो मे मन्दोऽथवा न मन्दो जनस्य का चिन्ता ।
सुखपृच्छक सुभग सुगन्धगन्ध मा गन्धितां स्पृश ॥]

हे सुखजिज्ञासाकारिन्, हे सुभग, हे सुगन्ध गन्ध युक्त, मेरा आम ज्वर मन्द है अथवा अमन्द इस विषयमें संसारको चिन्ता क्यों है? तुम ज्वर की गन्धसे युक्ताको मत छूना ॥ ५१ ॥

सिहिपिच्छलुलिअकेसे वेवन्तोरु विणिमीलिअद्धच्छि ।
दरपुरिसाइरि विसुमरि जाणसु पुरिसाणँ जं दुःखं ॥ ५२ ॥
[शिखिपिच्छलुलितकेशे वेपमानोरु विनिमीलितार्धाक्षि ।
ईषत्पुरुषायिते विश्रामशीले जानीहि पुरुषाणां यद्दुःखम् ॥]

हे ईषत्पुरुषायित कार्यमें विराम करनेवाली, तुम्हारे केश मयूरपुच्छके समान लुलित हैं, तुम्हारे ऊरुद्वय कम्पमान हैं एवं तुम्हारी आधी आँख विशेष भावसे मुँदी हुई दिखती है। समझ लो पुरुषों को कितनी पीड़ा है ॥ ५२ ॥

पेम्मस्स विरोहिअसंधिअस्स पच्चक्खदिट्ठविलिअस्स ।
उअअस्स व ताविअसीअलस्स विरसो रसो होइ ॥ ५३ ॥
[प्रेम्णो विरोधितसंधितस्य प्रत्यक्षदृष्टव्यलीकस्य ।
उदकस्येव तापितशीतलस्य विरसो रसो भवति ॥]

जो प्रेम पहले विच्छिन्न होकर बाद में सन्धानयुक्त होता है, एवं जिस प्रेम में अपराध प्रत्यक्षतः दिखायी पड़ रहा है, उस प्रेमका रस पहले गरम किये और बाद में ठण्डे किये हुए जलकी भाँति विरस हो जाता है ॥ ५३ ॥

वज्जवडणाइरिक्कं पइणो सोऊण सिञ्जिणीघोसं ।
पुसिआइं करिमरिएँ सरिसवन्दीणं पि णअणाइं ॥ ५४ ॥
[वज्रपतनातिरिक्तं पत्युः श्रुत्वा शिञ्जिनीघोषम् ।
प्रोञ्छितानि बन्द्या सदृशबन्दीनामपि नयनानि ॥]

वज्रपातके शब्द की अपेक्षा अधिक गम्भीर स्वामीके धनुष टंकार शब्द को सुनकर बन्दी अपने जैसे अन्य बन्दियोंके नयनोंको पोंछ रही है ॥ ५४ ॥

सहइ सहइ त्ति तह तेण रामिआ सुरअदुव्विअड्ढेण ।
पम्माअसिरीसाइँ व जह से जाआइँ अंगाइं ॥ ५५ ॥
[सहते सहत इति तथा तेन रमिता सुरतदुर्विदग्धेन ।
प्रम्लानशिरीषाणीव यथास्या जातान्यङ्गानि ॥]

सहन कर रही है, वहन कर रही है इस प्रकार सुरतसमयमें कुण्ठित वह स्वप्नातिशय गुणों द्वारा इस प्रकार रमित होती है कि उसके सब प्रकार विशेषगुणकी आदि हो गये हैं ॥ ५५ ॥

अमविमसेसगुणमा वालअ वीसीपडीम्मममाआ ।
मइ सा भमइ दिसामुहपसारिअच्छी तुह कएण ॥ ५६ ॥
[अनविशेषगुणा बालक ल्पतिक्रान्तलोकमर्यादा ।
अथ सा भ्रमति दिशामुखप्रसारिताक्षी तव कृतेन ॥]

हे बालक, वह अन्यान्य गुणोंकी गणना नहीं करती केवल तुम्हारे कर्मेत्वमें लोकमर्यादा भी त्यागकर दिशाओंकी ओर नेत्र प्रसारित कर घूम रही है ॥ ५६ ॥

करिमरि अम्मलगज्जिअजलहरभअसभिअपण्डुरकवोले पत्ता ।
पडमो महुरअरङ्कुरि रोमञ्चं किं मुहा वहसि ॥ ५७ ॥
[बन्दि अकालगर्जितजलधरभयत्रस्तपाण्डुरकपोले ।
मधुरसकम्बुकर्णे रोमाञ्च किं मुधा वहसि ॥]

हे बन्दि, जो तुम रही हो वह तो अकाल वर्षाजीव मेघके गर्जनिश्चय की प्रतिध्वनिमात्र है । हे बन्दिके मधुरध्वनि रूपो तुम्हारी अभिलाषिणि, व्यर्थ ही रोमाञ्चको क्यों वहन करती हो ॥ ५७ ॥

अज्ज च्चेअ पउत्थो उज्जागरओ जणस्स अज्जे अ ।
अज्जे अ हलिद्दापिञ्जराइँ गोलाणइतडाइं ॥ ५८ ॥
[अद्यैव प्रोषित उज्जागरको जनस्याद्यैव ।
अद्यैव हरिद्रापिञ्जराणि गोदावरीतटानि ॥]

आज ही (मेरा पति) प्रवासमें गया है आज ही जनविशेषोंका जागना आरंभ हुआ है एवं आज ही गोदावरीके तट अनेक हरिद्रा से पिञ्जरवर्ण हुआ है ॥ ५८ ॥

असरिसचित्त दिअरे सुहअमणा पिअअमे विसमसीले ।
ण कहइ कुडुम्बविहडणभएण तणुआअए सोण्हा ॥ ५९ ॥
[असदृशचित्ते देवरे सुखमनाः प्रियतमे विषमशीले ।
न कथयति कुटुम्बविघटनभयेन तनूभवति स्नुषा ॥]

देवरके दूषित चित्त होनेपर भी वधूमें कुटुम्ब-विघटन होनेके भयसे दुह-

मेरा। वधूने अत्यन्त विषम स्वभाव वाले पतिसे कुछ कहा नहीं, फिर भी वह कृश होती जा रही है ॥ ५९ ॥

चिन्ताणिअदइअसमागमम्मि कअमण्णुआइँ भरिऊण ।
सुण्णं कलहाअन्ती सहीहिँ रुण्णा ण ओहसिआ ॥ ६० ॥

[चिन्तानीतदयितसमागमे कृतमन्युकानि स्मृत्वा ।
शून्यं कलहायमाना सखीभी रुदिता नोपहसिता ॥]

चित्तमें आनीत प्रियतमका समागम होनेपर उसके अपने क्रोधके कारणोंको याद कर वृथा कलहकारिणी होनेपर अन्य सखियाँ उसके लिए रोती ही हैं, उसका उपहास नहीं करतीं ॥ ६० ॥

हिअअण्णएहिँ समअ असमत्ताइं पि जह सुहावन्ति ।
कज्जाइँ मणे ण तहा इअरेहिँ समाविआइं पि ॥ ६१ ॥

[हृदयज्ञैः सममसमाप्तान्यपि यथा सुखयन्ति ।
कार्याणि मन्ये न तथा इतरैः समापितान्यपि ॥]

मुझे प्रतीत होता है कि हृदयज्ञ पुरुषोंके साथ अचरितार्थ कार्यकलाप जितना सुखदायक होता है, अहृदयज्ञ पुरुषोंके साथ चरितार्थ कार्यकलाप भी उतना सुखदायक नहीं होता ॥ ६१ ॥

दरफुडिअसिप्पिसपुडणिलुक्कहालाहलग्गपुच्छणिहं ।
पक्कम्बट्ठिविणिग्गअकोमलमम्बुङ्कुरं उअह ॥ ६२ ॥

[ईषत्स्फुटितशुक्तिसम्पुटनिलीनहालाहलाग्रपुच्छनिभम् ।
पक्वाम्रास्थिविनिर्गतकोमलमाम्राङ्कुरं पश्यत ॥]

पके हुए आमसे निकले हुए इस अंकुरको देखो। यह जैसे ईषत् स्फुटित शुक्तिसम्पुटमें निलीन हलाहलके अग्रपुच्छ सी दिखायी पड़ती है ॥ ६२ ॥

उअह पडलन्तरोइण्णणिअअतन्तुद्धपाअपडिलग्गं ।
दुल्लक्खसुत्तगुत्थेक्कबउलकुसुमं व मक्कडअं ॥ ६३ ॥

[पश्यत पटलान्तरावतीर्णनिजकतन्तूर्ध्वपादप्रतिलग्नम् ।
दुर्लक्ष्यसूत्रग्रथितैकबकुलकुसुममिव मर्कटकम् ॥]

पटलके अन्तरमें विलम्बित अपने तन्तुके ऊर्ध्वपादमें प्रतिलग्न मर्कटकको देखो। यह दुर्लक्ष्य सूत्रमें ग्रथित एक बकुलकुसुम सा लक्षित हो रहा है ॥

उअरि दरदिट्ठथण्णुअणिलुक्कपारावआणँ विरुएहिं ।
णित्थणइ जाअवेअणँ सूलाहिण्णं व देअउलं ॥ ६४ ॥

[वनीपकदर्शितकुसुमितकीलाटकतारकाणां निकुंजे ।
मिलयति वातोद्धतं कुसुमनिवहमिव दैवकृतम् ॥]

मन्दिरके समस्त ओर कुसुम-कुसुम दिखानी ... परिकोष्ठी विशेष समागत मन कुसुम इता जैसे देवकृत एकत्रता मिल हो मेघमाले एक कर रहा है ॥ ५४ ॥

जइ होसि ण तस्स पिआ अणुदिअहं णीसहेहिँ अङ्गेहिँ ।
णवसूअपीअपेऊसमत्तपाडि व्व किं सुवसि ॥ ५५ ॥
[यदि भवसि न तस्य प्रियानुदिवसं निःसहैरङ्गैः ।
नवसूतपीतपीयूषमत्तपाडीव किं स्वपिषि ॥]

यदि तुम उसकी प्रिय नहीं हो तो प्रतिदिन शिथिल अंग लेकर नवप्रसूत पीयूष पानेमें मत्त महिषीवत्सा की भाँति क्यों सोती हो ? ॥ ५५ ॥

हेमन्तिआसु अइदीहरासु राईसु तं सि अविणिद्दा ।
चिरअरपउत्थवइए ण सुन्दरं जं दिआ सुवसि ॥ ५६ ॥
[हैमन्तिकास्वतिदीर्घासु रात्रिषु त्वमस्यविनिद्रा ।
चिरतरप्रोषितपतिके न सुन्दरं यद्दिवा स्वपिषि ॥]

हे रमणी, तुम्हारा प्रिय बहुत समयके लिए प्रवासमें गया है तुम हेमन्त ऋतुकी इन अतिदीर्घ रात्रिमें विनिद्रावस्था अनुभव न करके भी दिनके समय सोई रहती हो, यह सुन्दर कार्य नहीं है ॥ ५६ ॥

जइ चिक्खल्लुब्भडप्पअमिणमणिच्छमाणेण तुह एण छिक्कं ।
ता सुहअ कण्टइज्जन्तमंगमेमि किंणो वहसि ॥ ५७ ॥
[यदि कर्दमोद्भटपदमिदमनिच्छता तव एतेन स्पृष्टम् ।
तत्सुभग कण्टकितमङ्गमिदानीं किमिति वहसि ॥]

यदि यह कर्दमाक्त पहले अपने अनिच्छा मानकर तुम्हारे पैरमें यह पैर निक्षेप कर रही है ऐसा होने पर है सुभग अब तुम अपने रोमांचित अङ्ग क्यों वहन कर रहे हो ? ॥ ५७ ॥

पत्तो छणो ण सोहइ माअण्हदा पअम पुण्णिमाअन्दो ।
अन्तविरसो व्व कामो असंपआवो व परिओसो ॥ ५८ ॥
[प्राप्तः क्षणो न शोभते मध्याह्न इव पूर्णिमाचन्द्रः ।
अन्तविरस इव कामोऽसम्प्रयत्न इव परितोषः ॥]

अत्यन्त सवेरे पूर्णिमाका चन्द्र, अवसानपर रसशून्य कामना एवं सम्प्रदान-रहित परितोष, जिस प्रकार शोभा नहीं पाते, उसी प्रकार उत्सव उपस्थित हो जानेपर ही शोभा नहीं रह जाती ॥ ६८ ॥

पाणिग्गहणे व्विअ पव्वईएँ णाअं सहीहिं सोहग्गं ।
पसुवइणा वासुइकङ्कणम्मि ओसारिए दूरं ॥ ६९ ॥
[पाणिग्रहण एव पार्वत्या ज्ञातं सखीभिः सौभाग्यम् ।
पशुपतिना वासुकिकङ्कणेऽपसारिते दूरम् ॥]

पाणिग्रहणके ही समय पशुपतिको वासुकिरूप कङ्कण दूर करते देख सखियोंने पार्वतीका सौभाग्य जान लिया ॥ ६९ ॥

गिह्मे दवग्गिमसिमइलिआइँ दीसन्ति विज्झसिहराइं ।
आससु पउत्थवइए ण होन्ति णवपाउसब्भाइं ॥ ७० ॥
[ग्रीष्मे दवाग्निमषीमलिनितानि दृश्यन्ते विन्ध्यशिखराणि ।
आश्वसिहि प्रोषितपतिके न भवन्ति नवप्रावृडभ्राणि ॥]

हे प्रोषितपतिके, आश्वस्त हो जाओ, ग्रीष्मकालमें दावानलकी मसिद्वारा मलिनित ये विन्ध्यशिखर समूह दिखायी पड़ते हैं, ये नववर्षाकी मेघमाला नहीं हैं ॥

जेत्तिअमेत्तं तीरइ णिव्वोढुं देसु तेत्तिअं पणअं ।
ण अणो विणिअत्तपसाअदुक्खसहणक्खमो सव्वो ॥ ७१ ॥
[यावन्मात्रं शक्यते निर्वोढुं देहि तावन्तं प्रणयम् ।
न जनो विनिवृत्तप्रसाददुःखसहनक्षमः सर्वः ॥]

जितना प्रणय निःशेष भावसे वहन किया जा सकता है, उतना ही प्रणय दो । कारण, प्रसादविनिवृत्त होनेपर तज्जनित दुःख सहनेमें सभी समर्थ नहीं होते ॥ ७१ ॥

बहुवल्लहस्स जा होइ वल्लहा कह वि पञ्च दिअहाइं ।
सा किं छट्ठं मग्गइ कत्तो मिट्ठं व बहुअं अ ॥ ७२ ॥
[बहुवल्लभस्य या भवति वल्लभा कथमपि पञ्च दिवसानि ।
सा किं षष्ठं मृगयते कुतो मृष्टं च बहुकं च ॥]

जो नायक अनेक प्रियाओंको अनुगृहीत करता है, उसकी जो कोई प्रिया हो वह पाँच दिन तक ही उसकी परीक्षा करती है । वह क्या छठे दिन तक

प्रतीत होती है कारण कि अनुरक्त या मधुर होता है उसे कवित वाचा सुरम्यमेव है ॥ ७२ ॥

जं जं सो णिज्झाअइ अङ्गोआसं महं अणिमिसच्छो ।
पच्छाएमि अ तं तं इच्छामि अ तेण दीसन्तं ॥ ७३ ॥

[यद्यत् स निर्ध्यायत्यङ्गावकाशं ममानिमिषाक्षः ।
प्रच्छादयामि च तं इच्छामि च तेन दृश्यमानम् ॥]

मेरे जिस जिस अङ्गावकाशकी ओर वह एकटक देखता है उन अङ्गावकाशों को मैं प्रच्छादित भी करती हूँ और फिर यह भी इच्छा करती हूँ कि वह उन्हें देखे ॥ ७३ ॥

णिक्कण्डुरुण्णिअरं पि गहिओ हिअअम्मि पेम्मराएण ।
ओसरइ वाउम्मुइ व्व रण्णो मण्णो सुरसुरन्तो ॥ ७४ ॥

[दशनकुट्टनमपि गृहीतो हृदये प्रणयमानः ।
अपसरति धातुममृतिरिव मत्या सुरसुरायमाणः ॥]

देखो, ओसरता अत्यन्त व्यथित हो हृदयसे प्रियतम से मान किया है, किन्तु वह मान धातुमञ्जरी की भाँति सुर्-सुर् कर अपगत हो जाता है ॥ ७४

उअ पोम्मराअमरगअसंवलिआ णहअलाओ ओअरइ ।
णहसिरिकण्ठब्भट्ठ व्व कण्ठिआ कीररिञ्छोली ॥ ७५ ॥

[पश्य पद्मरागमरकतसंवलिता नभस्तलादवतरति ।
नभःश्रीकण्ठभ्रष्टेव कण्ठिका कीरपङ्क्तिः ॥]

देखो आकाशश्रीके कण्ठदेशसे अवपतित, पद्मराग एवं मरकतमाला संवलित कण्ठिकाकी तरह तोतोंके समान पंक्तियाँ उतर रही हैं ॥ ७५ ॥

ण वि तह विएसवासो दोमाणं मह अवेइ संतावं ।
अप्पसंठिअसप्पणिमण्णे जह पणइअणो णिम्मतण्णो ॥ ७६ ॥

[नापि तथा विदेशवासो दौर्मत्यं मम जनयति संतापम् ।
आर्थिकार्थसंभिन्ना यथा प्रणयिनो निर्धनाः ॥]

मेरा विदेशमें वास एवं अपनी दुर्गति उतना सन्ताप नहीं उत्पन्न करती जितना हमारी धन आर्थिक स्थितिसे विमुख या विपन्न होनेसे प्रणयिजन का संताप उत्पन्न करते हैं ॥ ७६ ॥

वाअन्धिअस्स वहेउं तवेंति पामम्मि रविअरो पहिए ।
वासरसहिमो पडिअइ वाउहपत्र व्व सीएण ॥ ७७ ॥

[स्कन्धाग्निना वनेषु तृणैर्ग्रामे रक्षित पथिक ।
नगरोषित खेद्यते सानुशयेनेव शीतेन ॥]

जो पथिक वनोंमें स्थूल काष्ठाग्नि द्वारा एव ग्रामोंमें तृण द्वारा शीतसे अपनी रक्षा करता है वह नगरमें वास करने जाकर अनुशययुक्त शीत द्वारा जैसे खिन्न हो रहा है ॥ ७७ ॥

भरिमो से गहिआहरधुअसीसपहोलिरालआउलिअं ।
वअणं परिमलतरलिअभमरालिपइण्णकमलं व ॥ ७८ ॥

[स्मरामस्तस्या गृहीताधरधुतशीर्षप्रघूर्णनशीलालकाकुलितम् ।
वदन परिमलतरलितभ्रमरालिप्रकीर्णकमलमिव ॥]

चुम्बनार्थ अधर गृहीत हो जानेपर, शीर्षकम्पनके साथ एव कुण्डलघूर्णनसे आकुलित उसका मुख स्मरण करता हूँ, मानो वह परिमलके लोभसे तरलित भ्रमरकुलद्वारा प्रकीर्ण एक कमलके समान दिखायी पड़ा था ॥ ७८ ॥

हल्लफलण्हाणपसाहिआणँ छणवासरे सवत्तीणं ।
अज्जाएँ मज्जणाणाअरेण कहिअं व सोहग्गं ॥ ७९ ॥

[उत्साहतरलत्वस्नानप्रसाधितानां क्षणवासरे सपत्नीनाम् ।
आर्यया मज्जनानादरेण कथितमिव सौभाग्यम् ॥]

उत्सवके दिन उत्साहचाञ्चल्यमें स्नानद्वारा प्रसाधित सपत्नियोंके निकट केवल उस आर्याने ही मज्जनमें अनादर दिखाकर अपना सौभाग्य सूचित किया है ॥ ७९ ॥

ण्हाणहलिद्दाभरिअन्तराइँ जालाइँ जालवलअस्स ।
सोहन्ति किलिञ्चिअकण्टएण कं काहिसी कअत्थं ॥ ८० ॥

[स्नानहरिद्राभरितान्तराणि जालानि जालवलयस्य ।
शोधयन्ती क्षुद्रकण्टकेन क करिष्यसि कृतार्थम् ॥]

स्नान हरिद्रासे भरितान्तर तुम्हारा केशसम्मार्जनीके जालोंको क्षुद्र वशकण्टक द्वारा शोधित कर तुम किस सौभाग्यवान्को कृतार्थ करोगी ॥ ८० ॥

अदंसणेण पेम्मं अवेइ अइदंसणेण वि अवेइ ।
पिसुणजणजम्पिएण वि अवेइ एमेअ वि अवेइ ॥ ८१ ॥

[अदर्शनेन प्रेमापैत्यतिदर्शनेनाप्यपैति ।
पिशुनजनजल्पितेनाप्यपैत्येवमेवाप्यपैति ॥]

प्रेम बिना देखे दूर हो जाता है, अत्यन्त देखनेसे भी दूर हो जाता है [illegible] भी दूर ही जाता है और [illegible] भी दूर हो जाता है ॥ १॥

अइदंसणेण महिलाअणस्स अइदंसणेण णीअस्स ।
मुक्खस्स पिसुणजणजम्पिएण एमेअ वि खलस्स ॥ ८२ ॥
[अदर्शनेन महिलाजनस्यातिदर्शनेन नीचस्य ।
मूर्खस्य पिशुनजनजल्पितेनैवमेवापि खलस्य ॥]

[illegible] प्रेम बिना देखे, [illegible] प्रेम अधिक देखे [illegible] दूर हो जाता है ॥ २ ॥

पाइपडिएहिँ तुम्हं [illegible] ।
इअ चिन्तआणँ मण्णे पआणँ [illegible] ॥ ८३ ॥
[[illegible] ।
इति चिन्तयतो [illegible] ॥]

[illegible] हो गया है ॥ ३ ॥

सो तुज्झ कए सुन्दरि तह झीणो सुमहिला हलिअउत्तो ।
जह से मच्छरिणीएँ वि दोच्चं जाआएँ पडिवण्णं ॥ ८४ ॥
[स तव कृते सुन्दरि तथा क्षीणः सुमहिलो हालिकपुत्रः ।
यथा तस्य मत्सरिण्यापि दौत्यं जायया प्रतिपन्नम् ॥]

हे सुन्दरि तुम्हारे लिए वह [illegible] हालिकपुत्र इतना क्षीण हो गया है कि उसकी जायाने [illegible] होनेपर भी उसके लिए स्वयं दूतीका कार्य करना स्वीकार किया है ॥ ४ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ८५ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

हे सुभग, [illegible] के [illegible] हो और जिनके [illegible] ॥ ५ ॥

एक्कं पहरुव्विण्णं हत्थं मुहमारुएण वीअन्तो ।
सो वि हसन्तीऍ मए गहिओ बीएण कण्ठम्मि ॥ ८६ ॥
[एक प्रहारोद्विग्न हस्त मुखमारुतेन वीजयन् ।
सोऽपि हसन्त्या मया गृहीतो द्वितीयेन कण्ठे ॥]

प्रहारकार्यमें उद्विग्न मेरे एक हाथको मुखमारुतद्वारा वीजन किये जानेपर मैंने हँसते हँसते दूसरे हाथ द्वारा उसका कण्ठग्रहण कर लिया ॥ ८६ ॥

अवलम्बिअमाणपरम्मुहीऍ एन्तस्स माणिणि पिअस्स ।
पुट्ठपुलउग्गमो तुह कहेइ संमुहट्ठिअं हिअअं ॥ ८७ ॥
[अवलम्बितमानपराङ्मुख्या आगच्छतो मानिनि प्रियस्य ।
पृष्ठपुलकोद्गमस्तव कथयति सम्मुखस्थित हृदयम् ॥]

हे मानिनि, मान अवलंबन कर पराङ्मुखी होनेपर भी तुम अपने पीठपर रोमांचके उद्गमद्वारा आगमनकारी प्रियतमके निकट अपना हृदय सम्मुखस्थित रूपसे ही सूचित करती हो ॥ ८७ ॥

जाणइ जाणावेउं अणुणअविद्दविअमाणपरिसेसं ।
अइरिक्कम्मि वि विणआवलम्बणं स च्चिअ कुणन्ती ॥ ८८ ॥
[जानाति ज्ञापयितुमनुनयविद्रावितमानपरिशेषम् ।
विजनेऽपि विनयावलम्बन सैव कुर्वती ॥]

एकान्तमें सुरतके समय विनयका अवलंबनकर प्रियतमके अनुनयसे दूरीकृत मानके परिशिष्टको स्थापित करना केवल वही जानती है ॥ ८८ ॥

मुहमारुएण तं कह्ण गोरअं राहिआऍ अवणेन्तो ।
एताणँ वल्लवीणं अण्णाण वि गोरअं हरसि ॥ ८९ ॥
[मुखमारुतेन त्व कृष्ण गोरजो राधिकाया अपनयन् ।
एतासा वल्लवीनामन्यासामपि गौरव हरसि ॥]

हे कृष्ण, तुम अपने मुखमारुतद्वारा राधिकाके चक्षुसे धूलि अथवा गोधूलि हटाकर, पुरोवर्तिनी अन्यान्य गोपीगणोंका गौरव वा गौरता हरण करते हो ॥८९॥

किं दाव कआ अहवा करेसि कारिस्सि सुहअ एत्ता हे ।
अवराहाणँ अलज्जिर साहसु कअए खमिज्जन्तु ॥ ९० ॥
[किं तावत्कृता अथवा करोषि करिष्यसि सुभगेदानीम् ।
अपराधानामलज्जाशील कथय कतरे क्षम्यन्ताम् ॥]

हे सुभग, जिन अपराधोंको तुमने किया है अभी कर रहे हो एवं आगे करोगे, हे निर्लज्ज, उनमेंसे किन अपराधोंको मैं क्षमा कर सकती हूँ, यह बताओ तो ॥

चोरेंति जे पहुत्तं कुविअं दासव्व जे पसाअन्ति ।
ते च्चिअ महिलाणँ पिआ सेसा सामि च्चिअ वराआ ॥ ९१ ॥

[चोरयन्ति ये प्रभुत्वं कुपितां दासवद् ये प्रसादयन्ति ।
ते एव महिलानां प्रियाः शेषाः स्वामिन एव वराकाः ॥]

जो पुरुष कान्ता स्त्रियोंके अथवा प्रभुत्व चोरण कर रखते हैं एवं जो दासकी भाँति कुपित कान्ताको अनुनय द्वारा प्रसन्न रखते हैं वे ही महिलाओंके प्रिय होते हैं और इतर पुरुष निरर्थक स्वामी नाम द्वारा पुकारे जाते हैं ॥ ९१ ॥

तइआ कअग्घ महुअर ण रमसि अण्णासु पुप्फजाईसु ।
बद्धफलभारगरुइं मालइं एह्णि परिच्चअसि ॥ ९२ ॥

[तदा कृतार्घ मधुकर न रमसेऽन्यासु पुष्पजातिषु ।
बद्धफलभारगुर्वीं मालतीमिदानीं परित्यजसि ॥]

हे मधुकर, तब उन्नत कृतार्थ होकर अथवा मालतीके प्रति आदरवश तुम अन्यान्य पुष्पोंमें अनुरक्त नहीं हुए। अब फलभारसे विनत मालतीका परित्याग कर रहे हो ॥ ९२ ॥

अविअण्हपेच्छणिज्जेण तक्खणं मामि तेण दिट्ठेण ।
सिविणअपीएण व पाणिएण तण्ह च्चिअ ण फिट्टा ॥ ९३ ॥

[अवितृष्णप्रेक्षणीयेन तत्क्षणं मातुलानि तेन दृष्टेन ।
स्वप्नपीतेनेव पानीयेन तृष्णैव न नष्टा ॥]

हे मामी स्वप्नमें पीये हुए जल द्वारा प्यासके मिटनेकी भाँति अतृप्तदृष्टिसे उसे देखनेकी मेरी प्यास दूर नहीं हुई है ॥ ९३ ॥

सुअणो जं देसमलंकरेइ तं चिअ करेइ पवसन्तो ।
गामासण्णुम्मूलिअमहावडट्ठाणसारिच्छं ॥ ९४ ॥

[सुजनो यं देशमलंकरोति तमेव करोति प्रवसन् ।
ग्रामासन्नोन्मूलितमहावटस्थानसदृशम् ॥]

सज्जन व्यक्ति जिस देशको अपने निवास द्वारा अलंकृत करते हैं वही देशको

प्रवासार्थ जाकर वे ही ग्रामासन्न उन्मूलित महावटवृक्षस्थानकी भाँति उसे दुखदायक कर डालते हैं ॥ ९४ ॥

सो णाम संभरिज्जइ पब्भसिओ जो खणं पि हिअआहि ।
संभरिअव्वं च कअं गअं च पेम्मं णिरालम्बं ॥ ९५ ॥
[स नाम सस्मर्यते प्रभ्रष्टो य क्षणमपि हृदयात् ।
स्मर्तव्य च कृत गत च प्रेम निरालम्बम् ॥]

स्मरण रखनेकी बात उसके ही विषयमें जँचती है, क्षणभरके लिए भी हृदयमे जिसके निकल जानेकी संभावना है। जिस क्षण प्रेम स्मरणयोग्य हो जाता है, उसी क्षण वह आलम्बनशून्य हो जाता है ॥ ९५ ॥

णासं व सा कवोले अज्ज वि तुह दन्तमण्डलं बाला ।
उब्भिण्णपुलअवइवेढपरिगअं रक्खइ वराई ॥ ९६ ॥
[न्यासमिव सा कपोलेऽद्यापि तव दन्तमण्डल बाला ।
उद्भिन्नपुलकवृतिवेष्टपरिगत रक्षति वराकी ॥]

वह दीना बाला आजतक अपने कपोलपर तुम्हारे द्वारा दिये हुए मण्डलाकृति दन्तक्षतको न्यासके रूपमें सम्हालकर रखे हुए है, जैसेकि वह क्षतस्थान चतुर्दिग् में विकसित रोमांचवृति वेढा द्वारा वेष्टित है ॥ ९६ ॥

दिट्ठा चूआ अग्घाइआ सुरा दक्खिणाणिलो सहिओ ।
कज्जाइं व्विअ गरुआइँ मामि को वल्लहो कस्स ॥ ९७ ॥
[दृष्टाश्चूता आघ्राता सुरा दक्षिणानिल सोढ । ,
कार्याण्येव गुरुकाणि मातुलानि को वल्लभ कस्य ॥]

आम्रांकुर देखा गया है, सुरा पीयी गयी है एव दक्षिणपवनको भी सहन किया गया है। उसका अर्थात् नायकका कार्यसमूह ही गुरुतर प्रतीत होता है, अत हे मामी, कौन किसका प्रिय है ॥ ९७ ॥

रमिऊण पअं पि गओ जाहे उवऊहिउं पडिणिउत्तो ।
अहअ पउत्थपइआ व्व तक्खणं सो पवासि व्व ॥ ९८ ॥
[रन्त्वा पदमपि गतो यदोपगूहितु प्रतिनिवृत्त ।
अह प्रोषितपतिकेव तत्क्षण स प्रवासीव ॥]

रमणके उपरान्त वह एक पग भी चलकर जब आलिंगनके लिए प्रतिनिवृत्त होता है, तब मैं अपनेको प्रोषितपतिका एव उसको प्रवासी समझती हूँ ॥९८॥

अविअण्हपेच्छणिज्जं समसुहदुक्खं विइण्णसब्भावं ।
अण्णोण्णहिअअलग्गं पुण्णेहिँ जणो जणं लहइ ॥ ९९ ॥
[अवितृष्णप्रेक्षणीयं समसुखदुःखं वितीर्णसद्भावम् ।
अन्योन्यहृदयलग्नं पुण्यैर्जनो जनं लभते ॥]

जो पुरुष प्यासे नयनोंसे दर्शनीय सुखदुःखमें समान सद्भावविस्तारमें समर्थ एवं परस्पर हृदयोंमें लग्न होनेवाला है ऐसे पुरुषको कोई भी बड़े पुण्यसे ही पाती है ॥ ९९ ॥

दुक्खं देन्तो वि सुहं जणेइ जो जस्स वल्लहो होइ ।
दइअणहदूमिआणं वि वड्ढइ थणाणँ रोमञ्चो ॥ १०० ॥
[दुःखं ददत्यपि सुखं जनयति यो यस्य वल्लभो भवति ।
दयितनखदूनयोरपि वर्धते स्तनयो रोमाञ्चः ॥]

जो जिसका प्रिय है वह दुःख देते भी उसको सुख उत्पन्न करता है। प्रियके नखद्वारा खिन्न स्तनोंमें भी रोमाञ्च बढ़ जाते हैं ॥ १०० ॥

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए ।
सत्तसअम्मि समत्तं पढमं गाहासअं एअं ॥ १०१ ॥
[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।
सप्तशतके समाप्तं प्रथमं गाथाशतमेतत् ॥]

कविवत्सलप्रमुखसुकविनिर्मित रसिकोंके हृदयहार सप्तशतीमें यह प्रथम गाथाशतक समाप्त हुआ ॥ १०१ ॥

द्वितीय शतक

धरिओ धरिओ विअलइ उअएसो पिअसहीहिँ दिज्जन्तो ।
मअरद्धअबाणपहारजज्जरे तीएँ हिअअम्मि ॥ १ ॥
[धृतो धृतो विगलत्युपदेशः प्रियसखीभिर्दीयमानः ।
मकरध्वजबाणप्रहारजर्जरे तस्या हृदये ॥]

कामदेवके बाण प्रहारसे जर्जरित उसके हृदयमें प्रियसखियोंद्वारा दीयमान मान करनेका उपदेश बारबार ग्रहण करने पर भी विगलित हो जाता है ॥ १ ॥

तडसंठिअणीडेक्कन्तपीलुआरक्खणेक्कदिण्णमणा ।
अगणिअविणिवाअभआ पूरेण समं वहइ काई ॥ २ ॥
[तटसंस्थितनीडैकान्तशावकरक्षणैकदत्तमना ।
अगणितविनिपातभया पूरेण समं वहति काकी ॥]

तटसंस्थित नीडमें वर्तमान शावककुलके रक्षणमें एकान्त मनोनिवेशकारिणी काकी तट तरुके मज्जनान्तर अपने गिरनेके भयको न गिनकर जलप्रवाहके साथ बहती जा रही है ॥ २ ॥

बहुपुप्फभरोणामिअभूमीगअसाह सुणसु विण्णत्तिं ।
गोलातडविअडकुडङ्ग महुअ सणिअं गलिज्जासु ॥ ३ ॥
[बहुपुष्पभरावनामितभूमीगतशाख शृणु विज्ञप्तिम् ।
गोदातटविकटनिकुञ्ज मधूक शनैर्गलिष्यसि ॥]

हे गोदावरीके तटस्थ विकटनिकुञ्जस्थित मधूकवृक्ष, तुम्हारी शाखाएँ अनेक पुष्पोंके भारसे पृथ्वीपर्यन्त झुक गयी हैं, तुम मेरी विज्ञप्ति सुन लो— तुमको धीरे-धीरे विगलितपुष्प होना पड़ेगा ॥ ३ ॥

णिप्पच्छिमाइँ असई दुःखालोआइँ महुअपुप्फाइं ।
चीए बन्धुस्स व अट्ठिआइँ रुअई समुच्चिणइ ॥ ४ ॥
[निष्पश्चिमान्यसती दुःखालोकानि मधूकपुष्पाणि ।
चितायां बन्धोरिवास्थीनि रोदनशीला समुच्चिनोति ॥]

जिसकी चितामें अवस्थित पंडुरीके सर्वलीलित अतिसहजकी गर्व दु-अवलोकित सर्वपरिचित मधुर गुलम्मुर रोदन करते-करते जान कर रही है ॥ ४ ॥

मो हिअअ मअहरसरिच्छअहरच्छाहीरन्तविहाव ब्व ।
ठाणे ठाणे च्चिअ कमम्माण कत्थवि वक्खिहसि ॥ ५ ॥
[हे हृदय स्वरस्थीअजनद्विगमानीर्णतामय ।
स्थाने स्थाने एव क्रमलोनापि मरणे ॥]

हे हृदय स्वरस्तोषा नदीके जलके देखी छिपते हुए दीर्घ कालकी धाँसि जगह-जगह लेकर जनेक की किसीके द्वारा तुम नष्ट होओगे ॥ ५ ॥

जो तीर्थे महरपमो रसिअवासिआ पिममणेण ।
सो च्चिअ दीसइ गोसे सवत्तिणअणेसु संकन्तो ॥ ६ ॥
[यस्तस्या अधरातो रात्रयुषित प्रियतमेन ।
स एव दृश्यते प्रातः सपत्नीनयनेषु संक्रान्तः ॥]

अपकार को अधरराग रातमें प्रियतमद्वारा निरन्तर अधरपानवश सीख समाप्त क्या है वही प्रतिबिम्ब प्रातःकाल होनेपर सपत्नियोंकी नेत्रोंमें संक्रान्त देखी जाती है ॥ ६ ॥

पोसहमउत्तिमं पेच्छिअण पइचाहुवं दहिसीसोणहा ।
जाअता वसरिं दुम्मुहआएं पमवीम ॥ ७ ॥
[गौपालीमिश्रित प्रेक्ष्य पूरलितुरं हस्तिस्नुषा ।
जाता वधरी दुर्मोचरा पत्न्या ॥]

हस्तिकी दुलहने पारलौतुक आदि जनके अलगसे गोपालीविशेष बना हुआ देखकर अपना सासे स्वर्णिमासकी अवलम्ब करना आरम्भ किया ॥

बहुपोमासविसप्पस्स तस्स मरिमो भआसअन्तस्स ।
पामहुड्डपेडुमलेसविराअहुबहुवेमि ॥ ८ ॥
[बहुमासपनिपन्नस्य तस्य स्मराम्योतामन्तस्य ।
नाशहुदमीहितोत्तरराजत्वमनुरूपम् ॥]

मेरे चारोंओर गुलमल बैठे हुए एवं अपने विशेष समान अलौ मेरी पासीपुत्रका अतीन उसके केशजूपके रस आकर्षणके की पुनः समस्त हुआ था, वही मुझे याद आ रहा है ॥ ॥

फालेइ अच्छभल्लं व उअह कुग्गामदेउलद्दारे।
हेमन्तआलपहिओ विज्झाअन्तं पलालग्गिं ॥ ९ ॥
[पाटयत्यच्छभल्लमिव पश्यत कुग्रामदेवकुलद्वारे ।
हेमन्तकालपथिको विध्मायमानं पलालाग्निम् ॥]

तुम लोग देखो, बुरे ग्रामके मन्दिर द्वारपर हेमन्तकालीन पथिक निर्वाण-प्राय पलालाग्निको भालूकी भाँति पाट रहा है ॥ ९ ॥

कमलाअरा ण मलिआ हंसा उड्डाविआ ण अ पिउच्छा ।
केणॉवि गामतडाए अब्भं उत्ताणअं व्हूढं ॥ १० ॥
[कमलाकरा न मृदिता हंसा उड्डायिता न च पितृष्वसः ।
केनापि ग्रामतडागे अभ्रमुत्तानितं क्षिप्तम् ॥]

हे बुआ, नहीं जानता गाँवकी तलैयामें आकाशको तानकर किसने गिरा दिया है, तथापि वहाँपर कमलकुल उपमर्दित नहीं हुआ है, हंस भी वहाँसे उड़ नहीं गये हैं ॥ १० ॥

केण मणे भग्गमणोरहेण संलाविअं पवासो त्ति ।
सविसाइँ व अलसाअन्ति जेण वहुआएँ अङ्गाइं ॥ ११ ॥
[केन मन्ये भग्नमनोरथेन संलापितं प्रवास इति ।
सविषाणीवालसायन्ते येन वध्वा अङ्गानि ॥]

ऐसा प्रतीत होता है, जैसे किसीने भग्नमनोरथ होकर प्रवासगमनके सम्बन्धमें बात किया है । इसी कारण, वधूके अंग प्रत्यंगोंने जैसे विषदग्ध होनेसे कार्यपटुताको छोड़ दिया है ॥ ११ ॥

अज्जवि वालो दामोअरो त्ति इअ जम्पिए जसोआए ।
कण्हमुहपेसिअच्छं णिहुअं हसिअं वअवहूहिं ॥ १२ ॥
[अद्यापि बालो दामोदर इति इति जल्पिते यशोदया ।
कृष्णमुखप्रेषिताक्षं निभृतं हसितं व्रजवधूभिः ॥]

आजतक दामोदरका मेरे निकट बचपन ही रह गया है, यशोदाके ऐसा कहनेपर व्रजवधूटियाँ कृष्णके मुखकी ओर आँख फिराकर गोपनभावसे हँसीं ॥ १२ ॥

ते विरला सप्पुरिसा जाण सिणेहो अहिण्णमुहराओ ।
अणुदिअह वड्ढमाणो रिणं व पुत्तेसु संकमइ ॥ १३ ॥

[ते विरलाः सत्पुरुषा येषां स्नेहोऽभिन्नमुखरागः ।
अनुदिवसवर्धमान ऋणमिव पुत्रेषु संक्रामति ॥]

वे सत्पुरुष विरले ही हैं जिनका अपरिवर्तित मुखरागयुक्त स्नेह प्रतिदिन संवर्धित होकर पितृ ऋणकी भाँति पुत्रोंमें भी संक्रान्त होता है ॥ १३ ॥

णच्चणसलाहणणिहेण पासपरिसंठिआ णिउणगोवी ।
सरिसगोविआण चुम्बइ कवोलपडिमागअं कण्हं ॥ १४ ॥

[नर्तनश्लाघननिभेन पार्श्वपरिसंस्थिता निपुणगोपी ।
सदृशगोपीनां चुम्बति कपोलप्रतिमागतं कृष्णम् ॥]

नाचमें लगी हुई निपुण गोपी नृत्यकलाकी सराहनेके बहाने अनुराग सहित अपनी जैसी गोपियोंके कपोलपर प्रतिबिम्बित कृष्णकी प्रतिमाको अवसर पाकर चूम रही है ॥ १४ ॥

सव्वत्थ दिसामुहपसरिएहिं अण्णोण्णकडअलग्गेहिं ।
छल्लिं व्व मुअइ विञ्झो मेहेहिं विसंघडन्तेहिं ॥ १५ ॥

[सर्वत्र दिशामुखप्रसृतैरन्योन्यकटकलग्नैः ।
त्वचमिव मुञ्चति विन्ध्यो मेघैर्विसंघटमानैः ॥]

पर्वतके मध्यभागमें बद्ध, पहले विघटमान होकर सारी दिशाओंमें फैले हुए मेघखण्डोंसे ऐसा प्रतीत होता है मानो विन्ध्यपर्वत अपने शरीरसे छिलका छोड़ रहा है ॥ १५ ॥

आलोअन्ति पुलिन्दा पव्वअसिहरट्ठिआ धणुणिसण्णा ।
हत्थिउलेहिं व विञ्झं पूरिज्जन्तं णवम्बुवाहेहिं ॥ १६ ॥

[आलोकयन्ति पुलिन्दाः पर्वतशिखरस्थिता धनुर्निषण्णाः ।
हस्तिकुलैरिव विन्ध्यं पूर्यमाणं नवाम्बुवाहैः ॥]

पर्वतके शिखर पर धनुष टेककर बैठे हुए पुलिन्दगण विन्ध्य पर्वतको हस्तिकुल जैसे नव मेघसमूह द्वारा परिपूर्यमाण देखते हैं ॥ १६ ॥

वणदवमसिमइलङ्गो रेहइ विञ्झो घणेहिं धवलेहिं ।
खीरोअमन्थणुच्छलिअदुद्धसित्तो व्व महुमहणो ॥ १७ ॥

[वनदवमषीमलिनाङ्गो राजते विन्ध्यो घनैर्धवलैः ।
क्षीरोदमन्थनोच्छलितदुग्धसिक्त इव मधुमथनः ॥]

दावाग्निकी मसि द्वारा मलिनित देह वाला विन्ध्याचल धवल मेघखण्ड

द्वारा आवृत होकर, क्षीरसागरके मथनमें उछाले हुए दुग्ध द्वारा सिक्त मधु मथनविष्णुकी भाँति शोभा पा रहा है ॥ १७ ॥

बन्दीअ णिहअबन्धववमिणाइ वि पक्कलो त्ति चोरजुआ।
अणुराएण पलोइओं, गुणेसु को मच्छरं वहइ ॥ १८ ॥
[बन्द्या निहितबान्धवविमनरकयापि प्रवीर इति चोरयुवा।
अनुरागेण प्रलोकितो गुणेषु को मत्सर वहति ॥]

बान्धवोंके मारे जाने पर विमनस्का बन्दिनी युवती चोर युवकको शौर्यादि-गुण सम्पन्न प्रवीर समझकर अनुरागमे देख रही थी—गुणवैभव देखने पर मात्सर्य प्रदर्शन कौन करता है ॥

अज्ज कइमो वि दिअहो वाहवहू रुवजोव्वणुम्मत्ता।
सोहग्गं धणुरुम्पच्छलेण रच्छासु विकिरइ ॥ १९ ॥
[अद्य कतमोऽपि दिवसो व्याधवधू रूपयौवनोन्मत्ता।
सौभाग्य धनुस्तत्छलेन रथ्यासु विकिरति ॥]

आज कितने दिन हो गए, रूप एव यौवनमें उन्मत्त व्याधवधू धनुके सूक्ष्म-त्वकूके निक्षेपके बहाने अपने सौभाग्यको रथ्यापर निक्षेप कर रही है ॥ १९ ॥

उक्खिप्पइ मण्डलिमारुएण गेहङ्गणाहि वाहीए।
सोहग्गधअवडाअ व्व उअह धणुरुम्परिञ्छोली ॥ २० ॥
[उत्क्षिप्यते मण्डलीमारुतेन गेहाङ्गणाद्व्याधस्त्रियाः।
सौभाग्यध्वजपताकेव पश्यत धनुः सूक्ष्मत्वक्पङ्क्ति ॥]

व्याधवधूके गृहाङ्गणसे अपने सौभाग्यके ध्वजपताकारूपिणी धनुकी सूक्ष्म-त्वक्पंक्ति मण्डलवायुद्वारा उड़ायी जा रही है—देखो ॥ २० ॥

गअगण्डत्थलणिहसणमअमइलीकअकरञ्जसाहाहिं।
पत्तीअ कुलहराओ णाणं वाहीअ पइमरणं ॥ २१ ॥
[गजगण्डस्थलनिघर्षणमदमलिनीकृतकरञ्जशाखाभिः।
आगच्छन्त्या कुलगृहाज्ज्ञात व्याधस्त्रिया पतिमरणम् ॥]

पिताके घरसे लौटकर व्याधवधूने हाथीके गण्डस्थलकेघर्षणसे उत्पन्न मदद्वारा मलिनीकृत करञ्ज शाखासमूहको देखकर अपने पतिके मृत्युको समझा था ॥

णववहुपेम्मतणुइओ पणअं पढमघरणीअ रक्खन्तो।
आलिहिअदुप्परिल्लं पि णेइ रण्णं धणुं वाहो ॥ २२ ॥

[अनवरतप्रेमसमागमः प्रथमं नवमधुरिम्णा रसम् ।
तनुकटुगुणापर्णमपि अवश्यानं मधुर्यमिव ॥]

अनवरत प्रेममें आसक्त दम्पती होनेपर भी प्रथम नवमधुरिमाके समयकी रसमयताके विविध तदुपरान्त एवं गुणापर्ण मधुरताको अपनेमें वहन कर लेता है ॥ २१ ॥

हासाविआ जणो सामलीअ पढमं पसूअमाणाए ।
वल्लहवाएण अलं मम त्ति बहुसो भणन्तीए ॥ २२ ॥
[हासितो जनः श्यामया प्रथमं प्रसूयमानया ।
वल्लभवादेनालं ममेति बहुशो भणन्त्या ॥]

प्रियतमकी बातोंसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं, बारंबार ऐसा कहकर प्रथमप्रसवकालीन श्यामाने लोगोंको हँसाया है ॥ २२ ॥

कइअवरहिअं पेम्मं ण त्थि व्विअ मामि माणुसे लोए ।
अह होइ कस्स विरहो विरहे होन्तम्मि को जिअइ ॥ २४ ॥
[कैतवरहितं प्रेम नास्त्येव मातुलानि मानुषे लोके ।
अथ भवति कस्य विरहो विरहे भवति को जीवति ॥]

हे सखी! मानवजगतमें कपटशून्य प्रेम कैसे दृष्टिगत नहीं है—यदि ऐसा होता तो क्या किसीसे विरह होता? विरह होनेपर भी क्या कोई जीवित रहता ॥ २४ ॥

अच्छोडेइ व पिट्ठिं विमससमो रज्झ व माममपाणं व ।
जाणि मह तं महुत्तं विचिन्तिअसअलसिअं तीए ॥ २५ ॥
[वाल्मीकिमिव लिखितमिव रश्मीं रागलिप्तमुखमानमिव ।
जानीहि तन्मुहूर्तं विचिन्तितसकलं तया ॥]

चित्रकलाकी बालिका दर्शन मुझे सभी जन अनुरागभ्य, विधिमलिनचित्त रसमोहग्रस्तमनहर, यहाँतक कि अनुरागमग्न अतिचिन्तित हुआ था ॥ २५ ॥

जइ तुज्झ वल्लहा ण सि मज्झ वेसो सि तीअ तुज्झ गई ।
बालअ फुडं भणामो पेम्मं किर बहुविआरं त्ति ॥ २६ ॥
[या तव वल्लभा जानासि मम द्वेष्योऽसि तस्यास्तव गतिः ।
बालक स्फुटं भणामः प्रेम किल बहुविकारमिति ॥]

यह अन्य रमणी तुम्हारी प्रिया है, तुम हमारे प्रिय हो, तुम उसके द्वेष्य हो

एव मैं तुम्हारा द्वेष्य हूँ—हे बालक, स्पष्टतः कहती हूँ कि प्रेम अनेक प्रकारोंसे विकार युक्त होता है ॥ २६ ॥

अह अं लज्जालुइणी तस्स अ उम्मच्छराइँ पेम्माइं ।
सहिआअणो वि णिउणो अलाहि किं पाअराएण ॥ २७ ॥
[अहं लज्जालुस्तस्य चोन्मत्सराणि प्रेमाणि ।
सखीजनोऽपि निपुणोऽपगच्छ किं पादरागेण ॥]

मैं स्वय लज्जाशीला हूँ, उसका प्रेम भी अत्यत उत्कट है एव सखियाँ भी प्रेमाविष्कारमें अत्यन्त निपुण हैं। अतः निपेध करती हूँ, पादरागप्रयोगकी आवश्यकता नहीं है ॥ २७ ॥

महुमासमारुआहअमहुअरझंकारणिब्भरे रण्णे ।
गाअइ विरहक्खरॉवद्धपहिअमणमोहण गोवी ॥ २८ ॥
[मधुमासमारुताहतमधुकरझंकारनिर्भरेऽरण्ये ।
गायति विरहाक्षराबद्धपथिकमनोमोहन गोपी ॥]

वसन्त-वायुसे आहत हो भौंरे अरण्यको झंकारसे परिपूर्णकररहे हैं। वहाँ उनके साथ साथ गोपी भी विरहाक्षरयुक्तपदद्वारा आकृष्ट पथिकोंके मन मुग्धकर गान गा रही हैं ॥ २८ ॥

तह माणो माणघणाएँ तीअ एमेअ दूरमणुवद्धो ।
जह से अणुणीअ पिओ एक्कग्गाम व्विअ पउत्थो ॥ २९ ॥
[तथा मानो मानधनया तया एवमेव दूरमनुबद्ध ।
यथा तस्या अनुनीय प्रिय एकग्राम एव प्रोषितः ॥]

मानधना उस प्रियाका मान इतनी दूरतक अनुवद्ध हुआ है कि उसका प्रिय उसका अनुनय करनेके उपरान्त एक ही गाँव में प्रवासीकी भाँति होगया है ॥ २९ ॥

सालोएँ व्विअ सूरे घरिणी घरसामिअस्स घेत्तूण ।
णेच्छन्तस्स वि पाए धुअइ हसन्ती हसन्तस्स ॥ ३० ॥
[सालोक एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वामिनो गृहीत्वा ।
अनिच्छतोऽपि पादौ धावति हसन्ती हसतः ॥]

सूर्यका आलोक रहते ही गृहिणी हँसमुख होकर हँसते हँसते अनिच्छुक गृहस्वामीके दोनों चरणोंको धो डाल रही है ॥ ३० ॥

पाइरइ मं छहीओ तिस्सा गाढम्म कि म्म मणिप्पल ।
पिरपेम्मा दाउ जहि तहि पि म्ह कि पि णं मणइ ॥ ११ ॥
[प्रावृड् मां [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

अरी सखियो, [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] मुझे पुकारता है तो पुकारे पी, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ? [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ११ ॥

[illegible] [illegible] हिमं परिसा [illegible] [illegible] [illegible] ।
हिमर्म हिमए [illegible] [illegible] कि [illegible] [illegible] ॥ १२ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

[illegible] [illegible] हमारे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होगा ? ॥

समय [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १३ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रही है ॥ १३ ॥

परिहूएण वि [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १४ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो [illegible] है ॥ १४ ॥

[illegible] जहि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १५ ॥

[वसति यत्रैव खलु पोष्यमाण स्नेहदानै ।
तमेवालय दीपक इवाचिरेण मलिनयति ॥]

जिस घरमें स्नेहदानद्वारा खलजन सवर्द्धित होते हैं, स्नेहदानद्वारा पोषित दीपककी भाँति वे उसी घरको शीघ्र ही मलिन बनादेते हैं ॥ ३५ ॥

होन्ती वि णिप्फलच्चिअ धणरिद्धी होइ किविणपुरिसस्स ।
गिह्माअवसतत्तस्स णिअअछाहि व्व पहिअस्स ॥ ३६ ॥

[भवन्त्यपि निष्फलैव धनऋद्धिर्भवति कृपणपुरुषस्य ।
ग्रीष्मातपसतप्तस्य निजकच्छायेव पथिकस्य ॥]

कृपणकी प्रभूत धनवृद्धि होनेपर भी वह ग्रीष्मके आतप से सतप्त पथिकके लिए अपनी छायाकेसमान निष्फल सिद्ध होती है ॥ ३६ ॥

फुरिए वामच्छि तुए जइ एहिइ सो पिओ ज्ज ता सुइरं ।
संमीलिअ दाहिणअं तुइ अवि एहं पलोइस्सं ॥ ३७ ॥

[स्फुरिते वामाक्षि त्वयि यद्येष्यति स प्रियोऽद्य तत्सुचिरम् ।
समील्य दक्षिण त्वयैवैत प्रेक्षिष्ये ॥]

हे बायें नेत्र, तुम्हारे स्फुरित होनेसे यदि वह प्रिय आजही आजाय तो मै अपनी दायें नेत्रको मूँदेरहकर केवल तुमसे बहुतदेरतक उसे देखूँगी ॥३७॥

सुणअपउरम्मि गामे हिण्डन्ती तुह कएण सा वाला ।
पासअसारिव्व घरं घरेण कइआ वि खज्जिहिइ ॥ ३८ ॥

[शुनकप्रचुरे ग्रामे हिण्डमाना तव कृतेन सा बाला ।
पाशकशारीव गृह गृहेण कदापि खादिष्यते ॥]

कुक्कुरबहुलग्राममें वह बाला तुम्हारेलिए इस घरसे उस घर जाते आते कभी न कभी पासाकी गोटी अथवा पाशमेंआबद्ध सारिकापक्षीकीभाँति खा डाली जायगी ॥ ३८ ॥

अण्णण्णं कुसुमरसं जं किर सो महइ महुअरो पाउं ।
तं णिरसाणँ दोसो कुसुमाणं णेअ भमरस्स ॥ ३९ ॥

[अन्यमन्य कुसुमरस यत्किल स इच्छति मधुकर पातुम् ।
तन्नीरसानां दोष कुसुमानां नैव भ्रमरस्य ॥]

यह मधुकर जो अन्यान्य पुष्पोंसे रस चूसनेकी इच्छा करता है, इसमें रसशून्य पुष्पोंका ही दोष है, मधुकरका किसीप्रकार दोष नहीं है ॥ ३९ ॥

रत्थापइण्णणअणुप्पला तुमं सा पडिच्छए एन्तं।
दारणिहिएहिँ दोहि वि मङ्गलकलसेहिँ व थणेहिं ॥ ५० ॥
[रथ्याप्रकीर्णनयनोत्पला त्वां सा प्रतीच्छत्यायान्तम्।
द्वारनिहिताभ्यां द्वाभ्यामपि मङ्गलकलशाभ्यामिव स्तनाभ्याम् ॥]

रास्तेकीओर नयनकमलोंको बिछाकर वह रमणी अपने कुचयुगको मङ्गलकलशकी भाँति द्वारपर निहितकर तुम्हारे आगमनकी प्रतीक्षा कर रही है ॥ ५० ॥

ता रुण्णं जा रुव्वइ ता झीणं जाव झिज्जए अङ्गं।
ता णीससिअं वराइअ जाव अ सासा पहुप्पन्ति ॥ ५१ ॥
[तावद्रुदितं यावद्रुद्यते तावत्क्षीणं यावत्क्षीयतेऽङ्गम्।
तावन्निःश्वसितं वराक्या यावत् (च) श्वासाः प्रभवन्ति ॥]

जितनाही रोया जा सकता है उतनाही अधिक रोती है, जितना क्षीण हुआ जा सकता है उससे अङ्ग उतने क्षीण हुए हैं एवं जितनाही श्वाँस लेते बन सकती है उतनाही उसने उच्छ्वास किया है ॥ ५१ ॥

समसोक्खदुक्खपरिवड्ढिआणँ कालेण रूढपेम्माणं।
मिहुणाणँ मरइ जं तं खु जिअइ इअरं मुअं होइ ॥ ५२ ॥
[समसौख्यदुःखपरिवर्धितयोः कालेन रूढप्रेम्णोः।
मिथुनयोर्म्रियते यत्तत्खलु जीवति इतरन्मृतं भवति ॥]

सुख एवं दुःखमें समानभावसे परिवर्द्धित होकर कालान्तरमें प्रेममें आबद्ध दम्पतियोंमें जो एक मर जाता है वस्तुतः वही जी जाता है एवं दूसरे व्यक्तिद्वारा मृत किया जाता है ॥ ५२ ॥

हरिहिइ पिअस्स णवचूअपल्लवो पढममञ्जरिसणाहो।
मा रुअसु पुत्ति पत्थाणकलसमुहसंठिओ गमणं ॥ ५३ ॥
[हरिष्यति प्रियस्य नवचूतपल्लवः प्रथममञ्जरीसनाथः।
मा रोदीः पुत्रि प्रस्थानकलशमुखसंस्थितो गमनम् ॥]

हे पुत्रि, प्रस्थानकलशमुखसंस्थित मञ्जरीयुक्त नवआम्रपल्लव ही प्रियतमके गमनका हरण अथवा निवारण करेगा, अतः तुम रोओ मत ॥ ५३ ॥

जो कह वि मह सहीहिँ छिद्दं लहिऊण पेसिओ हिअए।
सो माणो चोरिअकामुअ व्व दिट्ठे पिए णट्ठो ॥ ५४ ॥

[यः कथमपि मम सखीभिश्छिद्रम् लब्ध्वा प्रवेशितो हृदये ।
स मानश्चोरकामुक इव दृष्टे प्रिये नष्ट ॥]

प्रणयकलहरूप छिद्र देखकर सखियोंने मेरे हृदयमें जो मान प्रविष्ट करा दिया है, वह मान प्रियवरको देखते ही चोर कामुककी भाँति भाग गया है ॥ ४४ ॥

सहिआहिँ भणणमाणा थणए लग्गं कुसुम्भपुप्फं त्ति ।
मुद्धवहुआ हसिज्जइ पप्फोडन्ती णहवआइ ॥ ४५ ॥

[सखीभिर्भण्यमाना स्तने लग्नं कुसुम्भपुष्पमिति ।
मुग्धवधूर्हस्यते प्रस्फोटयन्ती नखपदानि ॥]

स्तनमें क्या कुसुम्भ कुसुम लगा हुआ है?—सखियों द्वारा ऐसा पूछा जाने पर मुग्धवधूने स्तनपरसे नखचिह्नको हटानेकी चेष्टाकी जिससे सखियाँ हँस पड़ीं ॥ ४५ ॥

उम्मूलेन्ति व हिअअं इमाइँ रे तुह विरज्जमाणस्स ।
अवहीरणवसविसंठुलवलन्तणअणद्धदिट्ठाइं ॥ ४६ ॥

[उन्मूलयन्तीव हृदय इमानि रे तव विरज्यमानस्य ।
अवधीरणवशविसंष्ठुलवलन्नयनार्धदृष्टानि ॥]

अरे तुम्हारे मेरेप्रति विमुख होनेपर तुम्हारी उपेक्षावश लक्ष्यविहीन हो परावर्तनशील नयनार्द्धदृष्टि मेरे हृदयको उन्मूलित कर रही है ॥ ४६ ॥

ण मुअन्ति दीहसासं ण रुअन्ति चिरं ण होन्ति किसिआओ ।
धण्णाओ ताओ जाणं बहुवल्लह वल्लहो ण तुमं ॥ ४७ ॥

[न मुञ्चन्ति दीर्घश्वासान्न रुदन्ति चिरं न भवन्ति कृशाः ।
धन्यास्ता यासां बहुवल्लभ वल्लभो न त्वम् ॥]

हे बहुवल्लभ, तुम जिसके प्रिय नहीं हो—ऐसा कहकर जो तुम्हारे विरहमें दीर्घनिश्वास नहीं छोड़तीं, बहुत देरतक रोदन भी नहीं करतीं एवं कृश भी नहीं होतीं—वे ही रमणी धन्य हैं ॥ ४७ ॥

णिद्दालसपरिघुम्मिरतंसवलन्तद्धतारआलोआ ।
कामस्स वि दुव्विसहा दिट्ठिणिवाआ ससिमुहीए ॥ ४८ ॥

[निद्रालसपरिघूर्णनशीलतिर्यग्वलदर्धतारकालोकाः ।
कामस्यापि दुर्विषहा दृष्टिनिपाताः शशिमुख्याः ॥]

चन्द्रोदयवाली रात्रि हुई रति मदनोत्सव पैदा करनेवाली होती है क्योंकि वह रति अर्धनारीश्वरके समान विभक्तमिथुनकी भाँति परिपूर्णकाम एवं अर्धदेहवाली होकर ही दिखायी पड़ती है ॥ ४८ ॥

जीविअसेसाए मए गमिआ कह कह वि पेम्मदुद्दोली।
एण्हिं विरमसु रे अहिअअ मा रज्जसु कहिं पि ॥ ४९ ॥
[जीवितशेषया मया गमिता कथं कथमपि प्रेमदुर्दोली।
इदानीं विरम रे हृदय मा रज्यस्व कुत्रापि ॥]
हे हृदय! मैंने किसीप्रकार जीवनमात्रावशेष होकर प्रेमकी दुर्दोली अर्थात् विपत्तिरूप झूलेमें झूलकर बिता दी है तुम अब विरत हो जाओ एवं अन्य किसीसे अनुराग मत करो ॥ ४९ ॥

अज्जाए णवणहक्खअणिरिक्खणे गरुअजोव्वणुत्तुङ्गं।
पडिमागअणिअणअणुप्पलच्चिअं होइ थणवट्टं ॥ ५० ॥
[आर्याया नवनखक्षतनिरीक्षणे गुरुयौवनोत्तुङ्गम्।
प्रतिमागतनिजनयनोत्पलार्चितं भवति स्तनपृष्ठम् ॥]
आर्याके अत्यन्त गुरु एवं यौवनोन्नत स्तनके नूतन नखक्षत दर्शनके समय उसके प्रतिबिम्बित नयनोत्पल द्वारा अर्चित हो रहा है ॥ ५० ॥

तं णमह जस्स वच्छे लच्छिमुहं कोत्थुहम्मि संकन्तं।
दीसइ मअपरिहीणं ससिबिम्बं सूरबिम्ब व्व ॥ ५१ ॥
[तं नमत यस्य वक्षसि लक्ष्मीमुखं कौस्तुभे संक्रान्तम्।
दृश्यते मृगपरिहीनं शशिबिम्बं सूर्यबिम्ब इव ॥]
उन भगवानको ही प्रणाम करो जिनके वक्षःस्थलवर्ती कौस्तुभमणिमें संक्रान्त लक्ष्मीदेवीका मुखड़ा सूर्यबिम्बमें प्रतिबिम्बित मृगशून्य अर्थात् निष्कलङ्क चन्द्रबिम्बकी नाईं शोभायमान दीखता होता है ॥ ५१ ॥

मा कुण पडिवक्खसुहं अणुणेहि पिअं पसाअलोहिल्लं।
अइगहिअगरुअमाणेण पुत्ति रासि व्व झिज्जिहिसि ॥ ५२ ॥
[मा कुरु प्रतिपक्षसुखमनुनय प्रियं प्रसादलोभयुतम्।
अतिगृहीतगुरुमानेन पुत्रि राशिरिव क्षीणा भविष्यसि ॥]
हे पुत्रि, शत्रुओंको सुख पहुँचाने मत, अपने प्रसादलोभयुक्त प्रियको अनुनय करो नहीं तो अतिगुरुमानको ग्रहणकर तुम (तोलनेके लिए रक्खा धान्यादि) राशिकी नाईं क्षीण एवं न्यून हो जाओगी ॥ ५२ ॥

विरहकरवत्तदुसहफालिज्जन्तम्मि तीअ हिअअम्मि ।
अस् कज्जलमइलं पमाणसुत्तं व्व पडिहाइ ॥ ५३ ॥
[विरहकरपत्रदुःसहपाट्यमाने तस्या हृदये ।
अश्रु कज्जलमलिनं प्रमाणसूत्रमिव प्रतिभाति ॥]

दुःसह विरहरूप करपत्रद्वारा उत्पाट्यमान उसके हृदयके ऊपर उसका कज्जलमलिन अश्रु प्रमाणसूत्रकी नाईं प्रतिभात हो रहा है ॥ ५३ ॥

दुण्णिक्खेवअमेअं पुत्तअ मा साहसं करिज्जासु ।
एत्थ णिहिताइँ मण्णे हिअआइँ पुण्णो ण लब्भन्ति ॥ ५४ ॥
[दुर्निक्षेपकमेतत्पुत्रक मा साहसं करिष्यसि ।
अत्र निहितानि मन्ये हृदयानि पुनर्न लभ्यन्ते ॥]

हे पुत्रक, यह हृदय रूप निक्षेप या अर्पण दुर्निक्षेप कहा जा सकता है, अर्थात् तुम्हारे हृदयके फिर लौट पानेकी सम्भावना नहीं है, सुतरां तुम साहसपूर्ण कार्य करना मत । जान पड़ता है कि इस नायिकामें निहित मन फिर पाया नहीं जाता ॥ ५४ ॥

णिव्वुत्तरआ वि वहू सुरअविरामट्ठिइं अआणन्ती ।
अविरअहिअआ अण्णं पि किं पि अत्थि त्ति चिन्तेइ ॥ ५५ ॥
[निर्वृत्तरतापि वधूः सुरतविरामस्थितिमजानती ।
अविरतहृदयान्यदपि किमप्यस्तीति चिन्तयति ॥]

अनुभूतरमणा होनेपर भी वधूटी सुरतावसानपर क्या करना चाहिए, यह न जानकर अविरत हृदय लेकर, इसके बाद और कुछ है, ऐसा विचार करती है ॥ ५५ ॥

णन्दन्तु सुरअसुहरसतण्हावहराइँ सअललोअस्स ।
बहुकैअवमग्गविणिम्मिआइँ वेसाणँ पेम्माइं ॥ ५६ ॥
[नन्दन्तु सुरतसुखरसतृष्णापहराणि सकललोकस्य ।
बहुकैतवमार्गविनिर्मितानि वेश्यानां प्रेमाणि ॥]

सभीके सुरतसुखरसकी तृष्णाका अपहरणकरनेवाला एव अनेक प्रकारके कपटमार्गद्वारा रचित वेश्याओंका प्रेम रसिकोंकेलिए अभिनन्दनीय हो ॥ ५६ ॥

अप्पत्तमण्णुदुक्खो किं म किसिअत्ति पुच्छसि हसन्तो ।
पावसि जइ चलचित्तं पिअं जणं ता तुह कहिस्सं ॥ ५७ ॥

[अगाहलग्नपुत्र किं मां [illegible] [illegible] ।
आपतसि यदि कथमपि प्रियं मम तदा तव [illegible] ॥]

चित्तपोषक [illegible] कभी तुम्हें नहीं मिला है, इसीसे [illegible] तभी तो 'मैं कुछ नहीं हो गयी हूँ।' [illegible] प्रिय जब तुम्हें मिल जायगा तभी तुम्हारे मस्तक पर [illegible] ॥ ५७ ॥

अवहत्थिऊण सहिजम्पिआइँ जाव मए रमिओसि ।
एमाइँ ताइँ सोक्खाइँ संसओ जेहिँ जीअस्स ॥ ५८ ॥
[अपहस्तयित्वा सखीजल्पितानि येन त्वं [illegible] रमितोऽसि ।
एतानि तानि सौख्यानि संशयो यैर्जीवस्य ॥]

प्रिय सखियोंकी [illegible] बात न मानकर मैं [illegible] रमण कराती है वे ही वे सारे सुख हैं। किन्तु इन सबके द्वारा मेरा जीवन संशयास्पद हो जाता है ॥ ५८ ॥

ईसालुओ पई से रत्तिं महुअं ण देइ उच्चेउं ।
उच्चेइ अप्पणच्चिअ माए अइउज्जुअसहावा ॥ ५९ ॥
[ईर्ष्यालुः पतिरस्या रात्रौ मधूकं न ददात्युच्चेतुम् ।
उच्चिनोत्यात्मनैव मातरतिऋजुकस्वभावः ॥]

ईर्ष्यालुतावश पति इसे रातमें महुआ बीनने नहीं देता। हे माँ, अत्यन्त सरलस्वभाववाला वह पति स्वयं अपनी महुआ बीन रहा है ॥ ५९ ॥

मण्णुभरविअसिअपत्तलपरिविप मम्मर्हं तुमं वच्च ।
किस्सेसि पञ्जरपालिअस्स मअहस्स वि ण मई ॥ ६० ॥
[[illegible] मन्मथं त्वं व्रज ।
[illegible] न [illegible] ॥]

जहाँ [illegible] मन्मथकी [illegible] । [illegible] सकता है यह नहीं [illegible] रही हो क्या ॥ ६० ॥

उद्धच्छो पिअइ जलं जह जह विरलङ्गुली चिरं पहिओ ।
पावालिआ वि तह तह धारं तणुअं पि तणुएइ ॥ ६१ ॥
[ऊर्ध्वाक्षः पिबति जलं यथा यथा विरलाङ्गुलिश्चिरं पथिकः ।
प्रपापालिकापि तथा तथा धारां तनुकामपि तनूकरोति ॥]

ऊपरकी ओर आँख उठाकर हाथकी अँगुलियोंको विरलकर पथिक जैसे-

जैसे जैसे कालविलम्बके साथ जलपान कर रहा है, प्याऊपालिका वैसे वैसे ही क्षीणजलधाराको क्षीणतर कर जल डाल रही है ॥ ६१ ॥

भिच्छाअरो पेच्छइ णाहिमण्डलं सावि तस्स मुहअन्दं ।
तं चटुअं अ करङ्कं दोह्न वि काआ विलुम्पन्ति ॥ ६२ ॥
[भिक्षाचरः प्रेक्षते नाभिमण्डलं सापि तस्य मुखचन्द्रम् ।
तच्चटुकं च करङ्कं द्वयोरपि काका विलुम्पन्ति ॥]

भिक्षाजीवी नायिकाके नाभिमण्डलकी ओर दृष्टिपात कर रहा है, यह नायिका भी उसके मुखचन्द्रकीओर देखरही है । इस अवसरपर कौए दोनोंके चटुक एवं करङ्क अर्थात् भिक्षादान पात्र एवं भिक्षाग्रहण पात्रसे अन्नको ले भागते हैं ॥ ६२ ॥

जेण विणा ण जिविज्जइ अणुणिज्जइ सो कआवराहो वि ।
पत्ते वि णअरडाहे भण कस्स ण वल्लहो अग्गी ॥ ६३ ॥
[येन विना न जीव्यतेऽनुनीयते स कृतापराधोऽपि ।
प्राप्तेऽपि नगरदाहे भण कस्य न वल्लभोऽग्निः ॥]

जिसे छोड़नेपर जीवनयापन संभव नहीं है, कृतापराध होनेपर भी उसे अनुनीत करना उचित है । बताओ तो, सारेनगरके जलनेपर भी अग्नि किसे प्रिय नहीं है ॥ ६३ ॥

वक्कं को पुलइज्जउ कस्स कहिज्जउ सुहं व दुक्खं वा ।
केण समं व हसिज्जउ पामरपउरे हअग्गामे ॥ ६४ ॥
[वक्रं कः प्रलोक्यतां कस्य कथ्यतां सुखं वा दुःखं वा ।
केन समं वा हस्यतां पामरप्रचुरे हतग्रामे ॥]

किसकी ओर मैं वक्रभावसे देखूँ, किससे सुखदुःखकी बातें कहूँ एवं इस पामरबहुल दुष्ट ग्राम में किसके साथ परिहास करूँ ? ॥ ६४ ॥

फलहीवाहणपुण्णाहमङ्गलं लङ्गले कुणन्तीए ।
असईअ मणोरहगब्भिणीअ हत्था थरहरन्ति ॥ ६५ ॥
[कार्पासीक्षेत्रकर्षणपुण्याहमङ्गलं लाङ्गले कुर्वन्त्याः ।
असत्या मनोरथगर्भिण्या हस्तौ थरथरायेते ॥]

कपासका खेत जुननेके शुभारम्भदिवसकी मङ्गलक्रिया सम्पादन करनेकेसमय मनोरथधारिणी असतीके हस्तद्वय थरथरा रहे हैं ॥ ६५ ॥

पडिवक्खमण्णुपुञ्जाहि मसारिहिं बहलतिमिरम्मि ।
आलोएण विउअं बहुस विसारं ण पत्तं ॥ ६६ ॥
[प्रतिपक्षमन्युपुञ्जाभिर्मषीभिर्बहलतिमिरे ।
आलोकेन निभृतं बहुस विचारं न प्राप्तम् ॥]

अन्धकार बहुलतासे सखीके अन्धकार दूरकरनेके लिए पतिव्रता नहीं और न ऐं इस आलोकसे आकुल अपनी सिखीने आलोकद्वारा उन्हें दिखाया [illegible] है अर्थात् आलोकिनी आलोकसे पतिव्रता आयो सखीका धैर्य नहीं करते ॥ ६६ ॥

मज्जन्तस्स वि तुह सग्गागमिओ पाअरक्खसाआमो ।
पाणा मज्झ वि धम्मिअ तुह कहँ वरपंथि विह छिवन्ति ॥ ६७ ॥
[मज्जतोऽपि तव स्वर्गगामी महीरुहाश्रमः ।
प्राणा ममापि धार्मिक तव कथं वर्त्मनीव स्पृशन्ति ॥]
हे धार्मिक, स्वर्गगमनके अधिकारी होकर तुम महीरुहाश्रित [illegible] अपना स्वर्गगमन बताते हो, किन्तु धार्मिक तुम्हारे प्राणों पैर स्पर्शकर ही कैसे रहे हैं ॥ ६ ॥

अच्छउ दाव मणहरं पिआए मुहदंसणं अइमहग्घं ।
तग्गामछेत्तसीमा वि झत्ति दिट्ठा सुहावेइ ॥ ६८ ॥
[आस्तां तावन्मनोहरं प्रियाया मुखदर्शनमतिमहार्घम् ।
तद्ग्रामक्षेत्रसीमापि झटिति दृष्टा सुखयति ॥]
प्रेयसी के अति मूल्यवान मनोहर मुख-दर्शनकी बात तो दूर रहे, उसके गाँवकी खेतसीमा भी यदि कहीं अचानक दिख जाय तो वह भी मनमें सुख उत्पन्न करती है ॥ ६ ॥

णिक्कम्माहि वि छेत्ताहि पामरो णेअ वच्चए वसहिं ।
मुअपिअजाआसुण्णइअगेहदुक्खं परिहरन्तो ॥ ६९ ॥
[निष्कर्मणोऽपि क्षेत्रात्पामरो नैव व्रजति वसतिम् ।
मृतप्रियजायाशून्यीकृतगेहदुःखं परिहरन् ॥]
अपनी पत्नीके मर जानेसे सूने घरके दुःखसे दूर रहनेके लिए किसान कर्मशून्य खेतसे भी घरको नहीं जा रहा है ॥ ६९

कम्पाआरअसिरिम्भिअरविअरपक्खोहससिकलम्मवहिं ।
कुसुमिविरिमोविविरिमाई एत्थाए अज्जा करम्मोहीं ॥ ७० ॥

[झञ्झावातोत्तृणीकृतगृहविवरमपतत्सलिलधाराभिः ।
कुड्यलिखितावधिदिवस्म रक्षत्यार्या करतलैः ॥]

झञ्झावातमें तृणके उड़ जानेपर गृहविवरद्वारपर्यन्त जल बह रहा है, साध्वी आर्या भित्तिलिखित स्वामीके प्रवासकाल अवधिसूचक दिनसंख्याको दोनों हाथोंद्वारा रक्षा कर रही है ॥ ७० ॥

गोलाणइए कच्छे चक्खन्तो राइआइ पत्ताइं ।
उप्फडइ मक्कडो खोक्खएइ पोट्टं अ पिट्टेइ ॥ ७१ ॥

[गोदावरी नद्याः कच्छे चर्वयन्राजिकाया पत्राणि ।
उत्पतति मर्कट खोक्खशब्द् करोत्युदर च ताडयति ॥]

गोदावरीके किनारे राजिकाका पत्र चर्वणकर बन्दर उछल रहे हैं, खोक् शब्द् कर रहे हैं एव अपने पेट पीट रहे हैं [संकेत स्थानमें भयकी आशङ्का है] ॥ ७१ ॥

गहवइणा मुअसैरिहडुण्डुअदामं चिर वहेऊण ।
वग्गसआइ णेउण णवरिअ अज्जाघरे बद्धं ॥ ७२ ॥

[गृहपतिना मृतसैरिभवृहद्घण्टादाम चिरमूढ्वा ।
वर्गशतानि नीत्वानन्तरमार्यागृहे बद्धम् ॥]

गृहपतिने मृत महिषके बृहद् घण्टाकी मालाको अनेकदिन तक सुरक्षित रखकर शतशतपशुओंको खरीदकर भी, पूर्व सदृश महिष न पाकर उस मालाको आर्याके आयतनमें बाँध रखा। [सुभगा पूर्वपत्नीके आभूषणादिको अन्य प्रेयसीको देना उचित नहीं] ॥ ७२ ॥

सिहिपेहुणावअंसा वहुआ वाहस्स गव्विरी भमइ ।
गअमोत्तिअरइअपसाहणाणँ मज्झे सवत्तीणं ॥ ७३ ॥

[शिखिपिच्छावतंसा वधूर्व्याधस्य गर्विता भ्रमति ।
गजमौक्तिकरचितप्रसाधनानां मध्ये सपत्नीनाम् ॥]

मयूरपुच्छद्वारा विभूषित होकर भी व्याधवधू गर्वके साथ गजमुक्तासे निर्मित आभूषणोंको धारणकर सपत्नियोंके बीच भ्रमण कर रही है ॥ ७३ ॥

वङ्कच्छिपेच्छिरीणं वङ्कुल्लविरीणँ वङ्कभमिरीणं ।
वङ्कहसिरीणँ पुत्तअ पुण्णेहिँ जणो पिओ होइ ॥ ७४ ॥

[वक्राक्षिप्रेक्षणशीलानां वक्रोल्लपनशीलानां वक्रभ्रमणशीलानाम् ।
वक्रहासशीलानां पुत्रक पुण्यैर्जनः प्रियो भवति ॥]

हे युवक, जो तरुणी विलासपूर्वक देखनेवाली बालकपनसे वक्रीभावसे करपल्लवसे कमलकी एवं भ्रमरकी है ईर्ष्याभावसे दिन होनेपर भी जोकि तुम्हारा वश होना आवश्यक है ॥ ७ ॥

मम वच्चिम पीसट्टी सी सुपइणो मज्झ माउलो तेण ।
गोलाअडविअडकुडंगवासिणा दरिअसीहेण ॥ ७५ ॥
[मम धार्मिक विश्रब्धो स शुनकोऽद्य मारितस्तेन ।
गोदावरीविकटकुञ्जवासिना दृप्तसिंहेन ॥]
हे धार्मिक, तुम एकान्तपावसे अपना भ्रमण करो गोदावरीके तीरवर्ती विकटकुञ्जमें वास करनेवाले उस दृप्त सिंहद्वारा वह कुत्ता आज ही मारा गया है ॥ ७५ ॥

वाअरिपव्व मरिसं अधिकं कम्बकप्पकालएण ।
पुच्छन्तो अविरलं सुमरन्तो को सि देवाणं ॥ ७६ ॥
[वातेरितेव मृतमपि कम्बुत्प्लवकलना ।
पुच्छन्नविरलं सुमरन्तोऽसि देवानाम् ॥]
वायुद्वारा कम्पित वृक्षकी जलकलाके पूर्णनकार्य पूछनेवाले करके जलावनिकारके पूछने करनेवाले तुम देवोंमेंसे कोई देव हो ॥ ७६ ॥

साहि सुम्मेन्ति कलम्बाई जह मं तह ण सेसकुसुमाई ।
णूणं एसु दिअहेसु वहइ गुडिआधणुं कामो ॥ ७७ ॥
[सखि भ्रामयन्ति कदम्बानि यथा मां तथा न शेषकुसुमानि ।
नूनमेषु दिवसेषु वहति गुटिकाधनुः कामः ॥]
सखी, कदम्बके फूल हमें जितना भ्रम पैदा करते हैं अन्य फूल उतना नहीं देते । क्योंकि दिनोंमें कामदेव निश्चय ही कदम्बकुसुमरूप गुटिका वा गोलेवाले धनुषको धारण कर रहे हैं ॥ ७७ ॥

ण्हाई दूई ण तुमं पिओ त्ति को अम्ह एत्थ वावारो ।
सा मरउ तुज्झ अअसो तेण अ धम्मक्खरं भणिमो ॥ ७८ ॥
[नाहं दूती न त्वं प्रिय इति कोऽस्माकमत्र व्यापारः ।
सा म्रियते तवायशस्तेन च धर्माक्षरं भणामः ॥]
मैं तुम्हारी दूती नहीं हूँ, तुम भी उसके प्रिय नहीं हो, तुम्हारी इसलिये हमलोगोंको कुछ नहीं करना है । जब वह मरी जाती और तुम्हारे अपयशकी

चर्चा भी चलेगी, इसीसे मैंने स्त्रीवधनिवारणके निमित्त यह धर्मवार्ता चलायी ॥ ७८ ॥

तीअ मुहाहि तुह मुहँ तुज्झ मुहाओ अ मज्झ चलणम्मि ।
हत्थाहत्थीअ गओ अइदुक्करआरओ तिलओ ॥ ७९ ॥

[तस्या मुखात्तव मुखं तव मुखाच्च मम चरणे ।
हस्ताहस्तिकया गतोऽतिदुष्करकारकस्तिलकः ॥]

अत्यन्त दुष्कर कार्यकरनेवाली उस नायिकाका तिलक आलिङ्गन करते समय उसके मुखसे तुम्हारे मुखमें एवं प्रणतिके समय तुम्हारे मुखसे मेरे चरणोंमें प्रतियोगिताभावसे हस्तान्तरित हो सफल हुआ है ॥ ७९ ॥

सामाइ सामलिज्जइ अद्धच्छिपलोइरीअ मुहसोहा ।
जम्बूदलकअकण्णावअंसभरिए हलिअपुत्ते ॥ ८० ॥

[श्यामायाः श्यामलायतेऽर्धाक्षिप्रलोकनशीलाया मुखशोभा ।
जम्बूदलकृतकर्णावतंसभ्रमणशीले हलिकपुत्रे ॥]

जम्बूकिसलयको कर्णावतंसरूपमें व्यवहृतकरनेवाले हालिकपुत्रको देखकर अधखुले नयनोंसे देखनेवाली श्यामाकी मुखशोभा साँवली हो गई ॥ ८० ॥

दूइ तुम चिअ कुसला कक्खडमउआइँ जाणसे वोल्लुं ।
कण्डुइअपण्डुरं जह ण होई तह तं करेज्जासु ॥ ८१ ॥

[दूति त्वमेव कुशला कर्कशमृदुकानि जानासि वक्तुम् ।
कण्डूयितपाण्डुरं यथा न भवति तथा तं करिष्यसि ॥]

हे दूती, तुम्ही बड़ी कुशल हो, एवं तुम्हीं जानती हो कि किसप्रकार कर्कश एवं मृदुवचन बोलाजाता है, किन्तु देखो, उसे बात तो लगे पर वह पीला न पड़ जाय ॥ ८१ ॥

महिलासहस्सभरिए तुह हिअए सुहअ सा अमाअन्ती ।
दिअहं अणण्णकम्मा अङ्गं तणुअं पि तणुएइ ॥ ८२ ॥

[महिलासहस्रभृते तव हृदये सुभग सा अमान्ती ।
दिवसमनन्यकर्मा अङ्गं तनुकमपि तनूकरोति ॥]

हे सुभग, सहस्रों महिलाओंद्वारा भरे हुए तुम्हारे हृदयमें स्थान न पाकर वह अन्य दैनिक कार्योंको छोड़कर अपने कृश अङ्गोंको कृशतर कर रही है ॥ ८२ ॥

खणमेत्तं पि ण फिट्टइ अणुदिअहविइण्णगरुअसंतावा ।
पच्छण्णपावसङ्क व्व सामली मज्झ हिअआओ ॥ ८३ ॥

[कमलाकरमपि नानाफलपुष्पितकलिकागुच्छकलित ।
अल्पफलतरेव रसाल्पां मम हृदयम् ॥]

अल्पफल वाली आमड़ाकी भाँति प्रतिदिन तुम बल्कार बन्धन करके ...
यह रसका मैं हृदयमें सुख का अवसर नहीं होती ॥ ३ ॥

मज्झ ण्णाइ कुविआ अज्जउअ किं मुहा पसाएसि ।
तुह मण्णुसमुप्पण्णेण मज्झ माणेण वि ण कज्जं ॥ ८४ ॥
[नाह मन्ये कुपिता आर्यपुत्र किं मुधा प्रसादयसि ।
त्वन्मन्युसमुत्पन्नेन मम मानेनापि न कार्यम् ॥]

ओ नाथ, मैं तुमपर कुपित नहीं हुई हूँ, मेरा अभिमान करो, तुमसे ...
ही क्यों मनाना चाहते हो। मेरी ओरसे तुम्हारे ऊपर क्रोध करनेका ...
अवसर उत्पन्न करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ८४ ॥

दीहुण्हपउरणीसासपआविओ बाहसलिलपरिसित्तो ।
साहेइ सामसबलं व तीएँ अहरो तुह विओए ॥ ८५ ॥
[दीर्घोष्णप्रचुरनिःश्वासप्रतापितो बाष्पसलिलपरिषिक्तः ।
कथयति श्यामशबलमिव तस्या अधरस्तव वियोगे ॥]

तुम्हारे विरहमें उसका अधर दीर्घ, उष्ण तथा प्रचुरनिश्वासोंसे तप ...
वाष्पजलसे सिक्त होकर मानो 'श्यामशबल' नामक व्रतविशेषका आचरण ...
कर रहा है [इस व्रतमें पहले अग्नि और पानीमें अन्दर प्रवेश करने की ...
विधि है] ॥ ८५ ॥

सरए महद्दहाणं अन्तो सिसिराइँ बाहिरुण्हाइँ ।
जाआइँ कुविअसज्जणहिअअसरिच्छाइँ सलिलाइँ ॥ ८६ ॥
[शरदि महाह्रदानामन्तः शिशिराणि बहिरुष्णानि ।
जातानि कुपितसज्जनहृदयसदृशानि सलिलानि ॥]

शरत्कालमें महाह्रदोंका जल कुपित सज्जनके हृदयके समान ...
भीतर शीतल, किन्तु बाहर गर्म रहता है ॥ ८६ ॥

आअम्ब किंतु सच्चिअ किं ... पुं होइ इण्हिं ।
पसमुच्छलन्तरसमारेमाइ हिअअं धाराइ ॥ ८७ ॥
[आताम्र किं नु ... कि ... एवं तव ... [इदं] इति ।
... हृदयं ... ॥]

नायकके आ जानेपर मैं क्या करूँगी, उसे क्या कहूँगी एवं कैसे अभिसार होगा ? ऐसा सोचकर प्रथमोद्गतसाहस अवलम्बनकरनेवालीका हृदय थरथर काँपता है ॥ ८७ ॥

णेउरकोडिविलग्गं चिउरं दइअस्स पाअपडिअस्स ।
हिअअं पउत्थमाणं उम्मोअन्ती व्विअ कहेइ ॥ ८८ ॥
[नूपुरकोटिविलग्नं चिकुरं दयितस्य पादपतितस्य ।
हृदयं प्रोषितमानमुन्मोचयन्त्येव कथयति ॥]

नूपुरके अग्रभागमें मग्न पादपतितप्रियजनके केशका उन्मोचनकरके ही, यह नायिका अपने हृदयके मानयुक्त होनेकी सूचना दे रही है ॥ ८८ ॥

तुज्झङ्गराअसेसेण सामली तह खरेण सोमारा ।
सा किर गोलाऊले ह्णाआ जम्बूकसाएण ॥ ८९ ॥
[तवाङ्गराग दोषेण श्यामला तथा खरेण सुकुमारा ।
सा किल गोदापूरे स्नाता जम्बूकषायेण ॥]

सुकुमाराङ्गी वह श्यामा तुम्हारे अङ्गरागदोष तीव्र जम्बुकषायद्वारा गोदावरीनदीके किनारे नहला दी गयी है ॥ ८९ ॥

अज्ज व्वेअ पउत्थो अज्ज व्विअ सुण्ण आइँ जाआइं ।
रत्थामुहदेउलचत्तराइँ अह्मं च हिअआइं ॥ ९० ॥
[अद्यैव प्रोषितोऽद्यैव शून्यकानि जातानि ।
रथ्यामुखदेवकुलचत्वराण्यस्माकं च हृदयानि ॥]

आज ही वह नायक प्रवासार्थ चला गया है और आज ही गाँवका मार्गमुख, देवकुल तथा प्राङ्गणसमूह एवं साथ-साथ हमलोगोंका हृदयसमूह शून्य हो गया है ॥ ९० ॥

चिरडि पि अआणन्तो लोआ लोएहिँ गोरवब्भहिआ ।
सोणारतुले व्व णिरक्खरा वि खन्धेहिँ उब्भन्ति ॥ ९१ ॥
[वर्णावलीमप्यजानन्तो लोका लोकैर्गौरवाभ्यधिकाः ।
सुवर्णकारतुला इव निरक्षरा अपि स्कन्धैरुह्यन्ते ॥]

अनेक व्यक्ति वर्णमालाके ज्ञानरहित अनेक व्यक्तियोंको गौरवमें अधिक समझकर, स्वर्णकारकी निरक्षरतुलाकी भाँति, कन्धेपर झुलाकर ढोते हैं ॥ ९१ ॥

आअम्बरत्तकवोलं खलिअक्खरजम्पिरिं फुरन्तोट्ठिं ।
मा छिवसु त्ति सरोस समोसरन्ति पिअं भरिमो ॥ ९२ ॥

[भक्तानाम्ना कपोलं स्वमिततरसम्भवतीकां सुरतोर्मि ।
मा दर्शयसि तरोर्व सम्पत्तर्णा प्रिया स्मराम ॥]

ईर्ष्या कामानाम कपोलभितिक, स्वभिमानमें अत्यन्तकारिणी सुशीला एवं 'सुखी हुआ मन' कहकर रोषरहित अत्यन्त हर्षोकाकी अपनीप्रियाम में स्मरण करता हूँ ॥ ९२ ॥

भासाअविसमीभरमाणोम मप्पा अरम्मि से मुक्को ।
मप्पुम्मपाविरोसं तेण वि सा माअमुवगआ ॥ ९३ ॥
[भोयानरी विस्मापनात्मकैमानया करति वरम हुक ।
मनुष्यपापिरोपं तेनापि सा गजमुक्ता ॥]

भीतमतीम नवपरमस्थान विरम है इसी कहाने पतिकने अपने पतिको पासमें मन लगाकर छोड़ दिया एवं उसने भी अनुकम्पासे निर्दोष पापकाम उसे प्रेमसे आलिंगित किया ॥ ९३ ॥

सा तुए सहत्थदिण्णं कण्णं वि रे सुहअ गन्धरहिअं पि ।
उव्वसिमणअरमरोवरे व्व ओम्मिलिअं वहइ ॥ ९४ ॥
[सा त्वया स्वहस्तदत्तमपि रे सुभग गन्धरहितमपि ।
उद्वसितनगरगृहदेवतेव अवमालिकां वहति ॥]

हे सुभग अपने गन्धरहित होनेपर भी तुम्हारे हाथद्वारा दानी हुई मालाको वह परित्यक्त नगरगृहदेवताकी भाँति, आज भी धो रही है ॥ ९४ ॥

केसीम वि कसेरे व तीरए तम्मि सुअविअमम्मि ।
आरम्पहि व मारए इमेहि अवसेहि महहि ॥ ९५ ॥
[केवलमपि रविषु न शक्यते तस्मिन्सुप्तविरते ।
पाणिकर्मेव कपोलिकमैतैः ॥]

अरी बाला, उसके विरहसुखोपेयकी, दूसरेद्वारा भोगमें लगी हुई कलुषी आँख जैसे काजल कहींसे देखिनेवालोकी सुध नहीं लिया जा सकेगा ॥ ९५ ॥

कण्डुज्जिआर वैहुर मा णं वारेहि होउ परिकविआ ।
मा अहअमारमण्डं पुरिसामन्ती विसिविमिमिहिर ॥ ९६ ॥
[कण्डूयिता वैधु मैनं वारय भवतु परिकम्पा ।
मा कथमपुर्यं दुग्धमिदं कुर्वती हसिष्यति ॥]

यह बालिका उपपुत्तिका नामक क्रीड़ाकर खेले, इसे रोकना मत, इसे कुछ क्षीण होने दो, जिससे जघनभारकीगुरुता लेकर विपरीतविहार करते समय क्लान्ति अनुभव न करे ॥ ९६ ॥

पउरजुवाणो गामो महुमासो जोअणं पई ठेरो ।
जुण्णसुरा साहीणा असई मा होउ किं मरउ ॥ ९७ ॥

[प्रचुरयुवा ग्रामो मधुमासो यौवन पति स्थविरः ।
जीर्णसुरा स्वाधीना असती मा भवतु किं म्रियताम् ॥]

गाँवमें अनेक युवक रहते हैं, मास भी मधुमास है, नायिकाका यौवन पूर्ण है, किन्तु उसका पति स्थविर है, सुराभी पुरानी है, जिसकी इतनी स्वाधीनता है, यह युवती असती नहीं होगी तो क्या मरेगी ? ॥ ९७ ॥

बहुसो वि कहिज्जन्तं तुह वअणं मज्झ हत्थसंदिट्ठं ।
ण सुअं त्ति जम्पमाणा पुणरुत्तसअं कुणइ अज्जा ॥ ९८ ॥

[बहुशोऽपि कथ्यमानं तव वचनं मम हस्तसंदिष्टम् ।
न श्रुतमिति जल्पन्ती पुनरुक्तशतं करोत्यार्या ॥]

मेरेद्वारा प्रेरित तुम्हारी बात अनेक बार अनेक प्रकारसे उससे कहे जानेपर भी, 'यह नहीं सुना गया' ऐसा कहकर वह आर्या ही सैकड़ोंबार पुनरुक्ति कररही है ॥ ९८ ॥

पाअडिअणेहसब्भावणिब्भरं तीअ जह तुमं दिट्ठो ।
संवरणवावडाए अण्णो वि जणो तह च्चेअ ॥ ९९ ॥

[प्रकटितस्नेहसद्भावनिर्भरं तया यथा त्वं दृष्टः ।
संवरणव्यापृतया अन्योऽपि जनस्तथैव ॥]

स्नेहप्रकटन एवं पूर्णसद्भावसे नायिका जिसप्रकार तुम्हें भी देखरही है, प्रेमको छिपानेकेलिए व्यग्र हो, वह अन्यलोगोंको भी उसीप्रकार देखती है ॥९९॥

गेह्णइ पलोअइ इमं पहसिअवअणा पइस्स अप्पेइ ।
जाआ सुअपढमुब्भिण्णदन्तजुअलङ्किअं बोरं ॥ १०० ॥

[गृह्णीत प्रलोकयतेद प्रहसितवदना पत्युरर्पयति ।
जाया सुतप्रथमोद्भिन्नदन्तयुगलाङ्कित बदरम् ॥]

[illegible]

[illegible]
[illegible]

[[illegible]
[illegible]]

[illegible]

प्रकार गणनाकर प्रवेस दिनार्द्धमें ही मेरी सखीने गृहभित्तिको रेखाङ्कन द्वारा चिह्नित किया है ॥ ८ ॥

ण वि तह पढमसमागमसुरअसुहेपाविएवि परिओसो ।
जह बीअदिअहसविलक्खलक्खिए वअणकमलम्मि ॥ ९ ॥
[नापि तथा प्रथमसमागमसुरतसुखे प्राप्तेऽपि परितोष ।
यथा द्वितीय दिवससविलक्षलक्षिते वदनकमले ॥]

प्रथम समागममें सुरतसुखसे भी उस प्रकारका सुख नहीं मिला, जिस प्रकारका सन्तोष दूसरे दिन उसके सलज्ज अवलोकनसे भूषित वदनकमलको देखकर मिला था ॥ ९ ॥

जे सँमुहागअवोलन्तवलिअपिअपेसिअच्छिविच्छोहा ।
अम्हं ते मअणसरा जणस्स जे होन्ति ते होन्तु ॥ १० ॥
[ये संमुखागतव्यतिक्रांतवलितप्रियप्रेषिताक्षिविक्षोभाः ।
अस्माकं ते मदनशरा जनस्य ये भवन्ति ते भवन्तु ॥]

अन्य लोगोंके निकट जैसा हो होवे, हमारे निकट किन्तु प्रथमतः अनुनयार्थ सम्मुखागत होकर तत्पश्चात् व्यतिक्रान्त होनेके समय विचलित होकर प्रियतम जब विक्षोभित दृष्टि डालते हैं, तब वे मदनशर जैसे प्रतीत होते हैं ॥ १० ॥

इअरो जणो ण पावइ तुह जहणारुहणसंगमसुहेल्लिं ।
अणुहवइ कणअडोरो हुअवहवरुणाणँ माहप्पं ॥ ११ ॥
[इतरो जनो न प्राप्नोति तव जघनारोहणसंगमसुखकेलिम् ।
अनुभवति कनकदोरो हुतवहवरुणयोर्माहात्म्यम् ॥]

तुम्हारे जघनपर आरोहणरूप सङ्गमसुखकेलि अन्य कोई अनुभव नहीं कर पाता। केवल कनकसूत्रही अग्नि एव वरुणके माहात्म्यका अनुभव कर सकते हैं ॥ ११ ॥

जो जस्स विहवसारो तं सो देइ त्ति किं त्थ अच्छेरं ।
अणहोन्तं पि खु दिण्ण दोहग्गं तइ सवत्तीणं ॥ १२ ॥
[यो यस्य विभवसारस्त स ददातीति किमत्राश्चर्यम् ।
अभवदपि खलु दत्त दौर्भाग्य त्वया सपत्नीनाम् ॥]

जिसका जो वैभव है वह उसे ही देसकता है, इसमें क्या आश्चर्य ? किन्तु तुम्हारे पास जो नहीं है, ऐसा प्रियप्रणयमें वञ्चितता तुम सपत्नियोंको दे सके हो, यही आश्चर्यका विषय है ॥ १२ ॥

हे सखी, तुम्हारे निर्दयतापूर्ण हृदय लेकर भी किस प्रकार उसके मनोरथ पूर्ण करोगी? दर्पण में प्रतिबिम्बित चाँद उसी व्यक्ति जैसा अनुकूल हुआ संक्रान्त हो जाता न ॥ ४ ॥

पासासङ्की काओ णेच्छदि दिण्णं पि पहिअघरिणीए।
ओअन्तकरअलोगलिअवलअमज्झट्ठिअं पिण्डं ॥ ५ ॥
[पाशाशङ्की काको नेच्छति दत्तमपि पथिकगृहिण्या।
अवनतकरतलावगलितवलयमध्यस्थितं पिण्डम् ॥]

विरहखिन्न पथिकपत्नीद्वारा प्रदत्त पिण्डको अपने कृशोदर हाथसे गिरे कंकणके मध्यस्थित देखकर, पाशशंकासे कौआ उसे ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता ॥ ५ ॥

मोहिरिविअलपमासंसिट्ठीहिं सहिअयाहिं कुसुमविरिअयाओ।
घोसिविण्ण तहिं विअ चोरिअयं देशा पुसिअजन्ति ॥ ६ ॥
[वनविहितप्रकाशप्रदीपिका सखीभिः कुसुमविचिता।
प्रियतमेन चोरितवती मोक्ष्यन्ते ॥]

प्रियतमके अपमानकी अवविहितताको निरन्तर दबाकर सखियोंने रसपानकी बहिन रेखाओंके धोनेसे अलंकृत मालाको गूँध रखा है ॥ ६ ॥

तुह मुहसारिच्छं ण लहइ त्ति संपुण्णमण्डलो विहिणा।
अण्णमअं व्व घडइउं पुणो वि खण्डिज्जइ मिअङ्को ॥ ७ ॥
[तव मुखसादृश्यं न लभत इति संपूर्णमण्डलो विधिना।
अन्यमयमिव घटयितुं पुनरपि खण्ड्यते मृगाङ्कः ॥]

'चन्द्रमा सम्पूर्ण तुम्हारे मुखके का सादृश्य प्राप्त न कर सका' इसी कारण विधाता सम्पूर्ण मण्डल चन्द्रमाको अन्य प्रकारसे निर्मित करनेकेलिए उसे खण्डित कर डालता है ॥ ७ ॥

अज्ज गओ त्ति अज्ज गओ त्ति अज्ज गओ त्ति गणरीए।
पढम व्विअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहिँ चित्तलिओ ॥ ८ ॥
[अद्य गतोऽद्य गत इत्यद्य गत इति गणनशीलया।
प्रथम एव दिवसार्धे कुड्यं रेखाभिश्चित्रितम् ॥]

"प्रियतम आज ही गया है, आज ही गया है, आज ही गया है" ऐसा

प्रकार गणनाकर प्रथम दिनार्द्धमें ही मेरी सखीने गृहभित्तिको रेखाङ्कन द्वारा चित्रित किया है ॥ ८ ॥

ण वि तह पढमसमागमसुरअसुहे पाविए वि परिओसो ।
जह बीअदिअहसविलक्खलक्खिए वअणकमलम्मि ॥ ९ ॥
[नापि तथा प्रथमसमागमसुरतसुखे प्राप्तेऽपि परितोषः ।
यथा द्वितीय दिवससविलक्षलक्षिते वदनकमले ॥]

प्रथम समागममें सुरतसुखसे भी उस प्रकारका सुख नहीं मिला, जिस प्रकारका सन्तोष दूसरे दिन उसके सलज्ज अवलोकनसे भूषित वदनकमलको देखकर मिला था ॥ ९ ॥

जे सँमुहागअवोलन्तवलिअपिअपेसिअच्छिविच्छोहा ।
अम्हं ते मअणसरा जणस्स जे होन्ति ते होन्तु ॥ १० ॥
[ये संमुखागतव्यतिक्रांतवलितप्रियप्रेषिताक्षिविक्षोभाः ।
अस्माकं ते मदनशरा जनस्य ये भवन्ति ते भवन्तु ॥]

अन्य लोगोंके निकट जैसा हो होवे, हमारे निकट किन्तु प्रथमतः अनुनयार्थं सम्मुखागत होकर तत्पश्चात् व्यतिक्रान्त होनेके समय विचलित होकर प्रियतम जब विक्षोभित दृष्टि डालते हैं, तब वे मदनशर जैसे प्रतीत होते हैं ॥ १० ॥

इअरो जणो ण पावइ तुह जहणारुहणसंगमसुहेल्लिं ।
अणुहवइ कणअडोरो हुअवहवरुणाणँ माहप्पं ॥ ११ ॥
[इतरो जनो न प्राप्नोति तव जघनारोहणसंगमसुखकेलिम् ।
अनुभवति कनकदोरो हुतवहवरुणयोर्माहात्म्यम् ॥]

तुम्हारे जघनपर आरोहणरूप सङ्गमसुखकेलि अन्य कोई अनुभव नहीं कर पाता । केवल कनकसूत्रही अग्नि एवं वरुणके माहात्म्यका अनुभव कर सकते हैं ॥ ११ ॥

जो जस्स विहवसारो तं सो देइ त्ति किं त्थ अच्छेरं ।
अणहोन्तं पि खु दिण्णं दोहग्गं तइ सवत्तीणं ॥ १२ ॥
[यो यस्य विभवसारस्तं स ददातीति किमत्राश्चर्यम् ।
अभवदपि खलु दत्तं दौर्भाग्यं त्वया सपत्नीनाम् ॥]

जिसका जो वैभव है वह उसे ही देसकता है, इसमें क्या आश्चर्य ? किन्तु तुम्हारे पास जो नहीं है, ऐसा प्रियप्रणयमें वञ्चितता तुम सपत्नियोंको दे सके हो, यही आश्चर्यका विषय है ॥ १२ ॥

चन्दसरिसं मुहं से सरिसो अमअस्स मुहरसो तिस्सा ।
सकअग्गहरहसुज्जलचुम्बणअं कस्स सरिसं से ॥ १३ ॥
[चन्द्रसदृशं मुखमस्याः सदृशोऽमृतस्य मुखरसस्तस्याः ।
सकचग्रहरभसोज्ज्वलचुम्बनकं कस्य सदृशं तस्याः ॥]

उसका मुख चन्द्रमा के समान है, उसका अधरामृत अमृतके समान है किन्तु उसके केशग्रहणके साथ वेगपूर्वक चुम्बन किस वस्तु के तुल्य है? यह कहा नहीं जाता ॥ १३ ॥

उप्पण्णत्थे कज्जे अइचिन्तन्तो गुणागुणे तम्मि ।
चिरआलमन्दपेच्छित्तणेण पुरिसो हणइ कज्जं ॥ १४ ॥
[उपस्थिते कार्येऽतिचिन्तयन्गुणागुणौ तस्मिन् ।
चिरकालमन्दप्रेक्षित्वेन पुरुषो हन्ति कार्यम् ॥]

इस उपस्थित कार्यमें गुणदोषका अत्यधिक विचार करते हुए बहुतदेरतक केवल मन्द दृष्टिसे देखनेवाला पुरुष कार्यको नष्ट कर देता है ॥ १४ ॥

पाअअ तुम्हाहि अहिअं पिअअम जिअं वहइ मई जीअं ।
तं तइ विणा ण होइ त्ति तेण कुविअं पसाएमि ॥ १५ ॥
[यावत्त्वत्तोऽधिकं प्रियतम जीवितं वहति मम जीवितम् ।
तत्त्वया विना न भवतीति तेन कुपितं प्रसादयामि ॥]
हे प्रियतम, यद्यपि मेरा अपना जीवन तुम्हारे जीवन से भी प्रिय है, पर वह जीवन तुम्हारे बिना नहीं रह पायगा, इस कारणसे कुपित तुम्हें प्रसन्न करनेकेलिए प्रवृत्त हुई हूँ ॥ १५ ॥

पडिअ ण पडिअन्ती जइ तुगए एमे ण मग्गइ कसाए ।
पुत्तिम वाहबिन्दू पुलउम्भेएण भिज्जन्ता ॥ १६ ॥
[पतिता न पतन्ती यदि त्वयैवं न मम रोमाञ्चोद्गमः ।
पतन्तः बाष्पबिन्दवः पुलकोद्भेदेन भिद्यमानाः ॥]
अपना वचन छोड़कर मैं तो विराम करो, यदि प्रोषितके तब गिरे हुए रोमाञ्चित तुम्हारे अश्रुबिन्दु मेरे पुलकोद्गम द्वारा भिन्न न हो जायें तो तुम मेरी अनुरक्तता विश्वास कर सकना ॥ १६ ॥
तं मित्तं काअव्वं जं किर वसणम्मि देसआलम्मि ।
आलिहिअभित्तिबाउल्लअं व ण परम्मुहं ठाइ ॥ १७ ॥

[तन्मित्रं कर्तव्यं यत्किल व्यसने देशकालेषु ।
आलिखितभित्तिपुत्तलकमिव न पराङ्मुखं तिष्ठति ॥]

जो मित्र उपयुक्त देश एवं कालमें व्यसन उपस्थित होनेपर भित्तिपर आलिखित पुत्तलिकाके समान पराङ्मुख हो खड़ा नहीं होता, ऐसा ही मित्र बनाने योग्य है ॥ १७ ॥

वहुआइ णइणिउञ्जे पढमुग्गअसीलखण्डणविलक्खं ।
उड्डेइ विहंगउलं हाहा पक्खेहिँ व भणन्तं ॥ १८ ॥
[वध्वा नदीनिकुञ्जे प्रथमोद्गतशीलखण्डनविलक्षम् ।
उड्डीयते विहगकुलं हा हा पक्षैरिव भणत् ॥]

निभृत नदीतटस्थित निकुञ्जमें वधूके प्रथम सम्पटित शीलभङ्गसे लज्जित हो पंखा संचालनद्वारा ही जैसे 'हा हा' करते-करते पक्षी उड़ गए ॥ १८ ॥

सच्चं भणामि वालअ णत्थि असक्कं वसन्तमासस्स ।
गन्धेण कुरवआणं मणं पि असइत्तणं ण गआ ॥ १९ ॥
[सत्यं भणामि बालक नास्त्यशक्यं वसन्तमासस्य ।
गन्धेनकुरबकाणामनागप्यसतीत्वं न गता ॥]

अरे बालक, सच ही कह रहा हूँ कि वसन्त मासकेलिए अकरणीय कार्य कोई भी नहीं है, तथापि कुरबककुसुमके गन्धसे यह रमणी ईषत् असतीत्वको भी प्राप्त नहीं हुई ॥ १९ ॥

एक्केक्कमवइवेढणविवरन्तरदिण्णतरलणअणाए ।
तइ वोलन्ते वालअ पञ्जरसउणाइअं तीए ॥ २० ॥
[एकैकवृतिवेष्टनविवरान्तरदत्ततरलनयनया ।
त्वयि व्यतिक्रान्ते बालक पञ्जरशकुनायितं तया ॥]

हे बालक, तुम चले गए, एक-एक क्रमसे वृतिवेष्टनके समस्त विवरान्तरमें तरल नेत्र प्रदानकर तुम्हें देखनेकेलिए यह रमणी पिंजरेमें स्थित पक्षिणी जैसा आचरण कर रही थी ॥ २० ॥

ता किं करेउ जइ तं सि तीअ वइवेढपेल्लिअथणीए ।
पाअङ्गुट्ठद्धक्खित्तणीसहङ्गीअ वि ण दिट्ठो ॥ २१ ॥
[तत्किं करोतु यदि त्वमसि तया वृतिवेष्टनप्रेरितस्तनया ।
पादाङ्गुष्ठार्धक्षिप्तनिःसहाङ्ग्यापि न दृष्टः ॥]

[illegible] इस प्रकार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] यदि वह [illegible] तुम्हें न देखे तो वह और क्या कर सकती है ? ॥ ११ ॥

सिमसिमिअरअणसोहुग्गवाहव्याउलिअ [illegible] ।
दिअइ [illegible] दीसम्मि पदिव्वराअ [illegible] ॥ १२ ॥
[[illegible] ।
दीयते [illegible] दीपका [illegible] ॥]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अपने [illegible] हो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रही है ॥

तइ [illegible] [illegible] [illegible] तह [illegible] ।
जह [illegible] दीसन्ति ॥ १३ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

हे [illegible], तुम्हारे [illegible] [illegible] तुम्हें देखनेके लिए [illegible] [illegible] [illegible] इस प्रकार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही [illegible] ॥ १२ ॥

ता [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
जह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १४ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

दुर्लभ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible] हैं [illegible], [illegible] [illegible] दुर्लभ [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, वैसा ही [illegible] भी [illegible] [illegible] ही [illegible] हैं ॥ १३ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
सो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १५ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

दिअहं खुडक्किआए तीए काऊण गेहवावारं।
गरुए वि मण्णुदु खे भरिमो पाअन्तसुत्तस्स ॥ २६ ॥
[दिवस रोषमूकायास्तस्या कृत्वा गेहव्यापारम्।
गुरुकेऽपि मन्युदु खे स्मराम पादान्तसुप्तस्य ॥]

सारे दिन घरके काम-काजमें लगे रहकर रोषसे नीरवा मेरी प्रिय कामिनीका चित्तक्लेश अत्यन्त भारी होनेपर भी, अपने पादान्तमें उसके शयनकी बात स्मरण करता हूँ ॥ २६ ॥

पाणउडीअ वि जलिऊण हुअवहो जलइ जण्णवाडम्मि।
ण हु ते परिहरिअव्वा विसमदसासंठिआ पुरिसा ॥ २७ ॥
[पानकुट्यामपि ज्वलित्वा हुतवहो ज्वलति यज्ञवाटेऽपि।
न खलु ते परिहर्तव्या विषमदशासस्थिता पुरुषा ॥]

मद्यपानकुटीमें प्रज्वलित होकर भी अग्नि यज्ञ वेदीमें भी प्रज्वलित होती है। विषम अवस्थामें सस्थित वैसे पुरुषोंका भी कभी त्याग नहीं करना चाहिए ॥२७॥

जं तुज्झ सई जाआ असईओ जं च सुहअ अह्मे वि।
ता किं फुट्टउ बीअं तुज्झ समाणो जुआ णत्थि ॥ २८ ॥
[यत्तव सती जाया असत्यो यच्च सुभग वयमपि।
तत्किं स्फुटतु बीज तव समानो युवा नास्ति ॥]

हे सुभग, तुम्हारी जाया तो सती है और मेरी असती, इसका मूल कारण क्या प्रकट होता है? तुम्हारे समान युवक कोई नहीं है, क्या यही कारण नहीं है? ॥ २८ ॥

सव्वस्सम्मि वि दड्ढे तहवि हु हिअअस्स णिव्वुदि च्चेअ।
जं तेण गामडाहे हत्थाहत्थिं कुडो गहिओ ॥ २९ ॥
[सर्वस्वेऽपि दग्धे तथापि खलु हृदयस्य निर्वृतिरेव।
यत्तेन ग्रामदाहे हस्ताहस्तिकया कुटो गृहीत ॥]

गाँवके जलने में सबकुछ जल जानेपर भी मेरे हृदयमें अत्यन्त सुख अनुभूत हो रहा था, कारण, उसने मेरे हाथसे अपने हाथ में घड़ा ग्रहण किया था ॥ २९ ॥

जाएज्ज वणुद्देसे खुज्जो वि हु णीसाहो झडिअपत्तो।
मा माणुसम्मि लोए ताई रसिओ दरिद्दो अ ॥ ३० ॥

[जानकी कम्पोटेंपि कुरगेऽपि खलु जिनता विविधनय ।
स मधुरे कोऽपि स्वामी रतिरसे दृष्टिश ॥]

यमभूमिमें भावनापूर्ण एवं परिश्रमपूर्ण कुशलता यदि प्राप्त होता है तो हो, किन्तु भागवतोंकी भावनापूर्ण एवं रसिकताका कहीं दृष्टि न हो ॥ १० ॥

तस्स अ सोहग्गगुणं अमहिलसरिसं च साहसं मज्झ ।
जाणइ गोलाऊरो वासारत्तोद्धरत्तो अ ॥ ११ ॥
[तस्य च सौभाग्यगुणमहिलासदृशं च साहसं मम ।
जानाति गोदापूरो वर्षारात्रार्धरात्रश्च ॥]

सौभाग्यगुणसम्पन्न उसका एवं वर्षाकालकी अर्ध रात्रि भी जानती रातमें उसके सौभाग्यकी बात एवं मेरे अमहिला जैसा साहसकी बात जानते हैं ॥ ११ ॥

ते वोलिआ वअस्सा ताण कुडुंगाण खाणुआ सेसा ।
अम्हे वि गअवआओ मूलुच्छेअं गअं पेम्मं ॥ १२ ॥
[ते व्यतिक्रान्ता वयस्यास्तेषां कुडङ्गानां स्थाणवः शेषाः ।
वयमपि गतवयसो मूलोच्छेदं गतं प्रेम ॥]

वे सारे वयस्य चले गए हैं उन कुञ्जोंमें ठूंठमात्र ही शेष रह गया है । हम भी गतवयस्काएं भी प्रेमका मूलोच्छेद हो गया है ॥ १२ ॥

पच्चग्गउज्झिअसरसोट्ठपरिमलं महुअरा अणवरअं वणिआणं ।
उम्मिलिअमालईकुसुमसमूहवाणं व्व दीसन्ति ॥ १३ ॥
[प्रत्यग्रोज्झितसरसोष्ठपरिमलं मधुकरा अनवरतं वनितानाम् ।
उन्मीलितमालतीकुसुमसमूहवत् इव दृश्यन्ते ॥]

नवयौवना वनिताओंके साथ सरस एवं निरन्तरतोंसे उनके अधरका मकरन्दमद करते मधुकर उन्मीलित मालती कुसुमसमूहके निकट विचरण किया करते हैं ॥ १३ ॥

जस्स जहिं विअ पढमं तिस्सा अंगम्मि णिवडिआ दिट्ठी ।
तस्स तहिं चेअ ठिआ सव्वंगं केण वि ण दिट्ठं ॥ १४ ॥
[यस्य यत्रैव प्रथमं तस्या अङ्गे निपतिता दृष्टिः ।
तस्य तत्रैव स्थिता सर्वाङ्गं केनापि न दृष्टम् ॥]

उस नायिकाके जिस अङ्गपर जिसकी दृष्टि सर्वप्रथम पड़ती है वहीं जाकर

उसकी दृष्टि गड़गयी है, इसी कारण, कोई उसके सारे अङ्गोंको नहीं देख सका है ॥ ३४ ॥

विरहे विसं व विसमा अमअमआ होइ संगमे अहिअं ।
किं विहिणा समअं चिअ दोहिं वि पिआ चिणिम्मिअआ ॥ ३५ ॥
[विरहे विषमिव विषमामृतमया भवति संगमेऽधिकम् ।
किं विधिना सममेव द्वाभ्यामपि प्रिया विनिर्मिता ॥]

प्रिया विरहावस्थामें विषके समान विषमा एव सङ्गममें अत्यधिक अमृतमयी समझ पड़ती है, तब क्या विधाताने इनदोनों वस्तुओंद्वारा समान भावसे ही उसका निर्माण किया है ॥ ३५ ॥

अद्दंसणेण पुत्तअ सुट्ठु वि णेहाणुबन्धघडिआइं ।
हत्थउडपाणिआइँ व कालेण गलन्ति पेम्माइं ॥ ३६ ॥
[अदर्शनेन पुत्रक सुष्ठ्वपि स्नेहानुबन्धघटितानि ।
हस्तपुटपानीयानीव कालेन गलन्ति प्रेमाणि ॥]

हे पुत्रक, हस्ताञ्जलिस्थित जल जिसप्रकार समय पाकर गलित हो जाता है, उसीप्रकार स्नेहानुबन्धमें सुष्ठु सघटित प्रेम भी बहुत दिनतक न दिखायी पड़नेके फलस्वरूप विलुप्त हो जाता है ॥ ३६ ॥

पइपुरओ व्विअ णिज्जइ विच्छुअदट्ठेत्ति जारवेज्जहरं ।
णिउणसहीकरधारिअ भुअजुअलन्दोलिणी बाला ॥ ३७ ॥
[पतिपुरत एव नीयते वृश्चिकदष्टेति जारवैद्यगृहम् ।
निपुणसखीकरधृता भुजयुगलान्दोलनशीला बाला ॥]

वृश्चिक दंशनसे कातर होनेके बहाने यह बाला पतिके समीपसे ही चतुर सखियों द्वारा धृत अवस्थामें ही भुजयुगलको आन्दोलित करने-करते जारवैद्यके घर ले जायी जारही है ॥ ३७ ॥

विक्किणइ माहमासम्मि पामरो पाइडिं वइल्लेण ।
णिद्धूममुम्मुर व्विअ सामलीअ थणो पडिच्छन्तो ॥ ३८ ॥
[विक्रीणीते माघमासे पामर प्रावरण बलीवर्देन ।
निर्धूममुर्मुरनिभौ श्यामलया स्तनौ पश्यन् ॥]

माघके महीनेमें पामरजन, धूमरहित धानकी भूसीकी अग्निके समान

[[illegible] कुञ्जेऽपि [illegible] ।
मा [illegible] रमिष्ये [illegible] ॥]

वनभूमिमें [illegible] एवं [illegible] कुञ्ज [illegible] होते हैं, किन्तु [illegible] एवं [illegible] नहीं [illegible] ॥ १० ॥

तस्स अ सोहग्गगुणं अमहिलसरिसं अ साहसं मज्झ ।
जाणइ गोलाऊरो वासारत्तद्धरत्तो अ ॥ ११ ॥
[तस्य च सौभाग्यगुणमहिलासदृशं च साहसं मम ।
जानाति गोदापूरो वर्षारात्रार्धरात्रश्च ॥]

गोदावरीका प्रवाह [illegible] एवं वर्षाकालकी [illegible] रात्रि ही [illegible] उनके सौभाग्यगुण एवं मेरे [illegible] साहस [illegible] जानते हैं ॥ ११ ॥

ते वोलिआ वअस्सा ताण कुडंगाण खाणुआ सेसा ।
अम्हे वि गअवआओ मूलुच्छेअं गअं पेम्मं ॥ १२ ॥
[ते व्यतिक्रान्ता वयस्यास्तेषां कुञ्जानां स्थाणवः शेषाः ।
वयमपि गतवयस्का मूलोच्छेदं गतं प्रेम ॥]

वे सारे [illegible] चले गए हैं उन कुञ्जोंमें ठूंठमात्र ही शेष रह गया है। [illegible] भी [illegible] मूलोच्छेद हो गया है ॥ १२ ॥

[illegible] ।
[illegible] इव दीसन्ति ॥ १३ ॥
[[illegible] ।
[illegible] इव दृश्यन्ते ॥]

[illegible] ॥ १३ ॥

जस्स जहिं विअ पढमं तिस्सा अंगम्मि णिवडिआ दिट्ठी ।
तस्स तहिं चेअ ठिआ सव्वंगं केण वि ण दिट्ठं ॥ १४ ॥
[यस्य यत्रैव प्रथमं तस्या अङ्गे निपतिता दृष्टिः ।
तस्य तत्रैव स्थिता सर्वाङ्गं केनापि न दृष्टम् ॥]

उस नायिकाके जिस अङ्गपर जिसकी दृष्टि पहले पड़ गयी है उसी अङ्गमें

उसकी दृष्टि गड़गयी है, इसी कारण, कोई उसके सारे अङ्गोंको नहीं देख सका है ॥ ३४ ॥

विरहे विसं व विसमा अमअमआ होइ संगमे अहिमं ।
किं विहिणा समअं चिअ दोहिं वि पिआ विणिम्मिअआ ॥ ३५ ॥
[विरहे विषमिव विषमामृतमया भवति संगमेऽधिकम् ।
किं विधिना सममेव द्वाभ्यामपि प्रिया विनिर्मिता ॥]

प्रिया विरहावस्थामें विषके समान विषमा एवं सङ्गममें अत्यधिक अमृतमयी समझ पड़ती है, तब क्या विधाताने इनदोनों वस्तुओंद्वारा समान भावसे ही उसका निर्माण किया है ॥ ३५ ॥

अदंसणेण पुत्तअ सुट्ठु वि णेहाणुबन्धघडिआइं ।
हत्थउडपाणिआइँ व कालेण गलन्ति पेम्माइं ॥ ३६ ॥
[अदर्शनेन पुत्रक सुष्ठ्वपि स्नेहानुबन्धघटितानि ।
हस्तपुटपानीयानीव कालेन गलन्ति प्रेमाणि ॥]

हे पुत्रक, हस्ताञ्जलिस्थित जल जिसप्रकार समय पाकर गलित हो जाता है, उसीप्रकार स्नेहानुबंधनमें सुष्ठु संघटित प्रेम भी बहुत दिनतक न दिखायी पड़नेके फलस्वरूप विलुप्त हो जाता है ॥ ३६ ॥

पइपुरओ व्विअ णिज्जइ विच्छुअदट्ठेत्ति जारवेज्जहरं ।
णिउणसहीकरधारिअ भुअजुअलन्दोलिणी बाला ॥ ३७ ॥
[पतिपुरत एव नीयते वृश्चिकदष्टेति जारवैद्यगृहम् ।
निपुणसखीकरधृता भुजयुगलान्दोलनशीला बाला ॥]

वृश्चिक दंशनसे कातर होनेके बहाने यह बाला पतिके समीपसे ही चतुर सखियों द्वारा धृत अवस्थामें ही भुजयुगलको आन्दोलित करते-करते जारवैद्यके घर ले जायी जारही है ॥ ३७ ॥

विक्किणइ माहमासम्मि पामरो पाइडिं वइल्लेण ।
णिद्धूमसुम्मुर व्विअ सामलीअ थणो पडिच्छन्तो ॥ ३८ ॥
[विक्रीणीते माघमासे पामरः प्रावरणं बलीवर्दैन ।
निर्धूममुर्मुरमिमौ श्यामायाः स्तनौ पश्यन् ॥]

माघके महीनेमें पामरजन, धूमरहित धानकी भूसीकी अग्निके समान

कल्पतरुपर स्तनोंके स्पर्शकी अभिलाषा, वैद्य ज्योतिषीकी बातोंमें जानी जीवितविनाशकी शङ्काकी वेदनाका है ॥ १ ॥

सच्चं भणामि मरणे ठिअम्हि पुण्णे तडम्मि तावीए।
अज्ज वि तत्थ कुडङ्गे णिवडइ दिट्ठी तह च्चेअ ॥ ४९ ॥
[सत्यं भणामि मरणे स्थितास्मि पुण्ये तटे ताप्याः।
अद्यापि तत्र निकुञ्जे निपतति दृष्टिस्तथैव ॥]

सच्ची कहता हूँ कि मरणकाल उपस्थित होनेपर भी हूँ, किन्तु आज भी तापीनदीके पुण्यतटपर स्थित उस निकुञ्जकीओर मेरी दृष्टि वहीं जाती रहती है ॥ ४९ ॥

धण्णाबहरोपरं व मारणा मह पई विलुम्पन्ति।
ईसामन्ति मई विम छेप्पातिन्तो फलो अम्मो ॥ ५० ॥
[धन्याधरताडित मरणो मम यदि विलुम्पन्ति।
ईर्ष्यन्ति सखेव धन्यतुमिना फलो अम्म ॥]

हे माताओ, धन्योंके हाथमें स्थित देवताकी भाँति मेरे पतिके प्रेमको वे अपनी छाती करती हैं एवं मेरे प्रति ईर्ष्यालाप करती हैं मानो उनकी ही अपनी क्षति होती है (अर्थात् स्वयं कोप दुखारी समझकर वे रक्त हुई) ॥ ॥

अप्पत्तपत्तअं पाविऊण णवरङ्गअं हलिअसोण्हा।
उअह तणुई ण मामइ रच्छासु वि वामरच्छासु ॥ ५१ ॥
[अप्राप्त प्राप्तं प्राप्य नवरङ्गकं हलिकस्नुषा।
पश्यत तन्वी न माति विस्तीर्णास्वपि ग्रामरथ्यासु ॥]

तुम्हारे देखो, अप्राप्तपूर्व नवरङ्गक पाकर ही हलिक कृषक्‌की स्नुषा ग्रामकी विस्तीर्ण ग्राम गलियोंमें चलनेको संकुचित नहीं रह पा रही है ॥ ५१ ॥

आरनोवमाइँ णिमअम्मिपमाइँ पतिहिमअअभिलुट्ठिअपाइँ।
पिरहो णु आअर अवा उम्परम्मे अभिमआणाइँ ॥ ५२ ॥
[आलोचनानि निजमिताभि गाढस्पर्शनिर्गिताभि।
विरहः खलु जानाति मम बन्धने अभिज्ञानानि ॥]

अलोकन दर्शित होकेर प्रणाम, प्रतिमाकी देकर निवृत्तमूलक, फिर

भी दूसरेके हृदयको सन्तोष देनेवाले प्रियवाक्य इनेगिने व्यक्ति ही जानते हैं ॥ ४२ ॥

छज्जइ पहुस्स ललिअं पिआइ माणो खमा समत्थस्स ।
जाणन्तस्स अ भणिअं मोणं च अआणमाणस्स ॥ ४३ ॥
[शोभते प्रभोर्ललितं प्रियाया मानः क्षमा समर्थस्य ।
जानतश्च भणितं मौनं चाजानतः ॥]

प्रभुकी स्वेच्छाक्रीडादि, प्रियाके मान, समर्थों की क्षमा, ज्ञानियों का कथन एवं अज्ञानीका मौन शोभा पाते हैं ॥ ४३ ॥

वेविरसिण्णकरङ्गुलिपरिग्गहक्खलिअलेहणीमग्गे ।
सोत्थि व्विअ ण समप्पइ पिअसहि लेहम्मि किं लिहिमो ॥४४॥
[वेपनशीलस्विन्नकराङ्गुलि परिग्रहस्खलितलेखनीमार्गे ।
स्वस्त्येव न समाप्यते प्रियसखि लेखे किं लिखाम ॥]

अरी प्रियसखि, लेख में मैं और क्या लिखूँगी ? मेरे कम्पनशील एवं स्वेदयुक्त अङ्गुलीके परिग्रहसे स्खलित लेखनीके मार्गमें 'स्वस्ति' लिखना ही समाप्त नहीं होता ॥ ४४ ॥

देव्वम्मि पराहुत्ते पत्तिअ घडिअं पि विहडइ णराणं ।
कज्जं वालुअवरणं व्व कहँ वन्धं विअ ण एइ ॥ ४५ ॥
[दैवे पराङ्मुखे प्रतीहि घटितमपि विघटते नराणाम् ।
कार्यं वालुकावरण इव कथमपि बन्धमेव न ददाति ॥]

दैव यदि पराङ्मुख हो तो मानवकृत कार्य भी नष्ट हो जाता है, इसपर विश्वास करना, इस अवस्थामें वालुकानिर्मित दीवालकी नाईं कोई कार्य रोक नहीं मानता ॥ ४५ ॥

मामि हिअअं व पीअं तेण जुआणेण मज्जमाणाए ।
ण्हाणहलिद्दाकडुअं अणुसोत्तजलं पिअन्तेण ॥ ४६ ॥
[मातुलानि हृदयमिव पीतं तेन यूना मज्जन्त्याः ।
स्नानहरिद्राकटुकमनुस्रोतो जलं पिबता ॥

हे मामी, मानशीला मेरे स्नान हरिद्रा द्वारा कटुक जलके प्रवाहगत होनेपर उसे पीकर उस युवकने जैसे मेरेही हृदयको पी डाला है ॥ ४६ ॥

जीविअं असासअं विअ ण णिअत्तइ जोव्वणं अइक्कन्तं ।
दिअहा दिअहेहिँ समा ण होन्ति किं णिट्ठुरो लोओ ॥ ४७ ॥

[जीवितमशाश्वतमिव न निवर्तते यौवनमतिक्रान्तम् ।
दिवसा दिवसैः समा न भवन्ति किं निष्ठुरो लोकः ॥]

मानव जीवन जो अनित्य है, यौवन एकबार चले जानेपर लौटता नहीं, सभी दिन समान नहीं होते फिर भी लोग निठुर क्यों हैं ? यह कहा नहीं जा सकता ॥ ४७ ॥

उप्पाइअदव्वाणं वि खलाणं को भाअणं खलो च्चेअ ।
पक्काइँ वि णिम्बफलाइँ णवरँ काएहिँ खज्जन्ति ॥ ४८ ॥

[उत्पादितद्रव्याणामपि खलानां को भाजनं खल एव ।
पक्वान्यपि निम्बफलानि केवलं काकैः खाद्यन्ते ॥]

जो द्रव्योपार्जनमें समर्थ हैं, उन खलोंका दान-पात्र खल ही होता है— केवल खल । निम्बफल पकनेपर भी केवल कौए ही उसका आस्वादन करते हैं ॥ ४८ ॥

अज्ज मए गन्तव्वं घणन्धआरे वि तस्स सुहअस्स ।
अज्जा णिमीलिअच्छी पअपरिवाडिं घरे कुणइ ॥ ४९ ॥

[अद्य मया गन्तव्यं घनान्धकारेऽपि तस्य सुभगस्य ।
आर्या निमीलिताक्षी पदपरिपाटीं गृहे करोति ॥]

आज मुझे घने अन्धकारमें भी उस सुभगके पास अभिसारके लिए जाना होगा, यह सोचकर आर्या आँख मूँदकर घरमें ही पादचारीका अभ्यास कर रही है ॥ ४९ ॥

सुहओ ण कुप्पइ च्चिअ अह कुप्पइ विप्पिअं ण चिन्तेइ ।
अह चिन्तेइ ण जम्पइ अह जम्पइ लज्जिओ होइ ॥ ५० ॥

[सुभगो न कुप्यत्येव अथ कुप्यति विप्रियं न चिन्तयति ।
अथ चिन्तयति न जल्पति अथ जल्पति लज्जितो भवति ॥]

सुजन कभी कुपित नहीं होते, कुपित होनेपर भी अप्रिय बातकी कभी चिन्ता नहीं करते, चिन्ता करते भी हैं तो वह मुखसे प्रकाशित नहीं होता, प्रकाशित करते भी हैं तो लज्जित होते हैं ॥ ५० ॥

सो अत्थो जो हत्थे तं मित्तं जं णिरन्तरं वसणे ।
तं रूअं जत्थ गुणा तं विण्णाणं जहिँ धम्मो ॥ ५१ ॥

[सोऽर्थो यो हस्ते तन्मित्रं यन्निरन्तर व्यसने ।
तद्रूप यत्र गुणास्तद्विज्ञानं यत्र धर्मं ॥]

वही वास्तविक अर्थ है जो हस्तगत हो गया है, वही मित्र है जो व्यसनमें निरन्तर समीप रहे, वही रूप है जिसमें गुणोंका सयोगभी हो, एवं वही विज्ञान है जिसमें धर्मभी रहे ॥ ५१ ॥

चन्दमुहि चन्दधवला दीहा दीहच्छि तुह विओअम्मि ।
चउजामा सअजाम व्व जामिणी कहँ वि वोलीणा ॥ ५२ ॥
[चन्द्रमुखि चन्द्रधवला दीर्घा दीर्घाक्षि तव वियोगे ।
चतुर्यामा शतयामेव यामिनी कथमप्यतिक्रान्ता ॥]

हे शशिवदने, दीर्घलोचने, तुम्हारे विरह में चन्द्रधवल दीर्घ एव चातुर्याम विशिष्ट होनेपर भी शतयामपरिमित रूपमें प्रतिभासित यामिनीको मैंने किस प्रकार बिताया है ? ॥ ५२ ॥

अउलीणो दोमुहओ ता महुरो भोअणं मुहे जाव ।
मुरओ व्व खलो जिण्णम्मि भोअणे विरसमारसइ ॥ ५३ ॥
[अकुलीनो द्विमुखस्तावन्मधुरो भोजन मुखे यावत् ।
मुरज इव खलो जीर्णे भोजने विरसमारसति ॥]

जब तक मुखमें भोजन द्रव्य रहता है, तभी तक अकुलीन द्विमुख खलगण मृदङ्गकी नाईं मधुर बातें करते हैं, किन्तु भोज्य वस्तुके जीर्ण होजानेपर विरस बातों में निन्दा आदि करते हैं ॥ ५३ ॥

तह सोण्हाइ पुलइओ दरवलि अन्तद्धतारअं पहिओ ।
जह वारिओ वि घरसामिएण ओलिन्दए वसिओ ॥ ५४ ॥
[तथा स्नुषया प्रलोकितो दरवलितार्धतारक पथिक ।
यथा वारितोऽपि गृहस्वामिना अलिन्दके सुप्तः ॥]

आँखके आधे तारेको थोड़ा वक्र देकर गृहस्थकी पुत्रवधूने पथिकको इस प्रकार देखा है कि गृहस्वामीद्वारा वर्जितहोकरभी वह गृहके अलिन्दमही वास करने लगा ॥ ५४ ॥

लहुअन्ति लहु पुरिसं पव्वअमेत्तं पि दो वि कज्जाइं ।
णिव्वरणमणिव्वूढे णिव्वूढे जं अ णिव्वरं ॥ ५५ ॥

[[illegible] सुवर्णे [illegible] अपि कार्ये ।
निर्वर्तमानमिच्छति निच्छति च निर्वर्तयितुम् ॥]

[illegible] के समान [illegible] भी [illegible] कार्य [illegible] —(प्रथम) कार्यके [illegible] होनेवाली [illegible] विवेचन एवं (द्वितीय) कार्यके [illegible] होनेवाली [illegible] निवेदन ॥ ५५ ॥

कं तुङ्गथणुक्खित्तेण पुत्ति दारट्ठिआ पलोएसि ।
उण्णामिअकलसणिवेसिअग्घकमलेण व मुहेण ॥ ५६ ॥
[कं तुङ्गस्तनोत्क्षिप्तेन पुत्रि द्वारस्थिता प्रलोकयसि ।
उन्नामितकलशनिवेशितार्घकमलेनेव मुखेन ॥]

हे पुत्रि, [illegible] कलशपर [illegible] निवेशित [illegible] भाँति अपने [illegible] मुखसे [illegible] द्वारपर [illegible] किसको देख रही हो ॥

[illegible] पढमो साहइ [illegible] ।
[illegible] घरे हलिअस्स [illegible] पसरइ ॥ ५७ ॥
[[illegible] ।
[illegible] हलिकस्य [illegible] ॥]

[illegible] इस [illegible] हलिकवधू [illegible] रही है ॥

[illegible] कुम्मसंपिण्डिअ [illegible] तुम्हेहिं ।
[illegible] पि ण दीसइ किं उण गन्तुं [illegible] ॥ ५८ ॥
[[illegible] युष्माभिः ।
[illegible] अपि न दृश्यते किं पुनर्गन्तुं [illegible] ॥]

[illegible] कुम्भस्थल, [illegible], पीन, विस्तार एवं [illegible] [illegible] भी [illegible] अवस्थित नहीं रह पाती है, [illegible] को [illegible] रही [illegible]

मासपसूअं छम्मासगब्भिणिं एक्कदिअहजरिअं च ।
रङ्गुत्तिण्णं च पिअं पुत्तअ कामन्तओ होहि ॥ ५९ ॥
[मासप्रसूतां षण्मासगर्भिणीमेकदिवसज्वरितां च ।
रङ्गोत्तीर्णां च प्रियां पुत्रक कामयमानो भव ॥]

हे पुत्रक, मासमात्र प्रसूता, छह मास गर्भिणी, एक दिनके ज्वरसे आतुरा एवं रङ्गभूमिसे प्रत्यागता, इस प्रकार प्रियाओंके प्रति कामयमान होना ॥ ५९ ॥

पडिवक्खमण्णुपुञ्जे लावण्णउडे अणङ्गगअकुम्भे ।
पुरिससअहिअअवरिए कीस थणन्ती थणे वहसि ॥ ६० ॥
[प्रतिपक्षमन्युपुञ्जौ लावण्यकुटावनङ्गगजकुम्भौ ।
पुरुषशतहृदयघृतौ किमिति स्तनन्ती स्तनौ वहसि ॥]

सपत्नीरूप प्रतिपक्षके मनस्तापविधायक, लावण्यकलश सदृश, मदन हस्तीके कुम्भ तुल्य एव शतशत पुरुषोंके हृदयमें अभिलषित अपने स्तनद्वय किस कारण काँखने जैसे शब्दोंके साथ वहन कर रही हो ॥ ६० ॥

घरिणिघणत्थणपेल्लणसुहेल्लिपडिअस्स होन्तपहिअस्स ।
अवसउणङ्गारअवारविट्ठिदिअहा सुहावेन्ति ॥ ६१ ॥
[गृहिणी घनस्तनप्रेरणसुखकेलिपतितस्य भविष्यत्पथिकस्य ।
अपशकुनाङ्गारकवारविष्टिदिवसा सुखयन्ति ॥]

गृहिणीके स्थूलस्तनपीडनजनित सुखकेलिमें निमग्न अचिर भविष्यमें प्रवासगामी नायकके पक्षमें शकुनशास्त्र विरोधी मङ्गलवार एव भद्रादोषमें अशुभ दिवस यात्राविरोधी होनेके कारण सुखदायक प्रतीत होते हैं ॥ ६१ ॥

सा तुह कएण बालअ अणिसं घरदारतोरणणिसण्णा ।
ओससइ चन्दणमालिअ व्व दिअहं विअ वराई ॥ ६२ ॥
[सा तव कृतेन बालकानिशं गृहद्वारतोरणनिषण्णा ।
अवशुष्यति चन्दनमालिकेव दिवसमेव वराकी ॥]

हे बालक, तुम्हारे आगमनकी प्रतीक्षामें वह दीना नायिका सर्वदा चन्दनमालिकाकी नाईं गृहद्वारके तोरणपर बैठी रहकर एक दिनमें ही शुष्क होती जा रही है ॥ ६२ ॥

हसिअं सहत्थताल सुक्खवड उवगएहिं पहिएहिं ।
पत्तअफलाणँ सरिसे उड्डीणे सूअविन्दम्मि ॥ ६३ ॥
[हसितं सहस्तताल शुष्कवटमुपगतैः पथिकैः ।
पत्रफलानां सदृशे उड्डीने शुकवृन्दे ॥]

शुष्क वटवृक्षके तले उपस्थित पथिक, पत्र एव फलके समान शुकोंके उड़ जानेपर, हाथ से ताली बजाकर हँसे थे ॥ ६३ ॥

अज्ज मिए हसिआ मामि तेण पाएसु लइअपडन्तेण ।
तीए वि अज्जवि दीणवसिअमुव्वअन्तीए ॥ १४ ॥
[अद्यास्मि हसिता मातुलानि तेन पादयोर्लग्नपतता ।
तयापि अद्यापि दीनवशिकमुद्वहन्त्या ॥]

हे मामी, आज उसने चरणोंमें पड़ते हुए इसी प्रकार फिर का पद पाकर एवं चलती हुई दीनवशिकको अभिव्यक्त करनेवाली उसीने मुझे खूब हँसाया है ॥ १४ ॥

महुअरयं कुणन्तो वैसे वि अणे अहिण्णमुहरम्मो ।
अप्पवसो वि हु सुअणो परम्वसो अहिजाईए ॥ १५ ॥
[मधुकरं कुर्वन्तोऽपि अनेकोऽभिन्नमुखरम्यः ।
आत्मवशोऽपि खलु सुजनः परवशः कुलीनतया ॥]

सुजनाय मधुरविधि रखकर सुजन व्यक्तियोंके अनुवर्तन करनेवाले नहीं समझना चाहिए कि यह आत्मवश होनेपर भी उसी कुलीनताके भी परवशी हो सकता है ॥ १५ ॥

अणुदिअहवड्ढिआअरविण्णाणगुणेहि जणिअमाहप्पो ।
पुत्तअ कहिंमिअणओ विरलममणो वि पुत्तणो ॥ १६ ॥
[अनुदिवसवर्धितादरविज्ञानगुणैर्जनितमाहात्म्यः ।
पुत्रक कुत्रापि विरलमनाः अपि दुर्लभः ॥]

हे पुत्र, प्रतिदिन वर्धित आदरसमन्वित विज्ञानगुणोंद्वारा जिसने माहात्म्यको अभिव्यक्त किया उन व्यक्तियोंमें वर्णित होनेवाली व्यक्ति कहीं भी विरले दिखते हैं ॥ १६ ॥

विण्णाणगुणमहग्घे पुरिसे वेसत्तणं पि रमणिज्जं ।
जणणिब्भिए उण जणे पिअत्तणेणावि लज्जामो ॥ १७ ॥
[विज्ञानगुणमहार्घे पुरुषे द्वेष्यत्वमपि रमणीयम् ।
जननिर्मिते पुनर्जने प्रियत्वेनापि लज्जामहे ॥]

विज्ञानगुणोंसे महान आदरणीय व्यक्तिके प्रति द्वेषभाव रखने पर भी यह रमणीय है किन्तु साधारण जिनकी निन्दा करता है ऐसे व्यक्तिके प्रियत्व पानेपर भी मैं लज्जित होती हूँ ॥ १७ ॥

कहँ णाम तीअ तह सो सहावगुरुओ वि थणहरो पडिओ ।
अहवा महिलाणं चिरं को वि ण हिअअम्मि संठाइ ॥ १८ ॥

[कथं नाम तस्यास्तथा रसमावर्जनेऽपि विभ्रमाः पतिताः ।
अथवा महिलानां चिरं कोऽपि न हृदये स्थितः ॥]

उस नायिकाके उसने रसभावपूर्ण इतने विभ्रमका अवगत हुए ?
अथवा महिलाओंके हृदयमें कोई चिरकालतक स्थित नहीं रह सकता ॥ ६८ ॥

सुअणु वअणं छिवन्तं सूरं मा साउलीअ वारेहि ।
एअस्स पङ्कअस्स व जाणउ कअं सुहप्फंसं ॥ ६९ ॥

[सुतनु वदनं स्पृशन्तं सूर्यं मा पटाञ्चलेन वारय ।
एतस्य पङ्कजस्य च जानातु कृतं सुखस्पर्शम् ॥]

हे सुतनु, अपने वदनको स्पर्श करनेवाले सूर्यको तुम वस्त्राञ्चल द्वारा रोको मत, तुम्हारे वदन और कमलमें किसका स्पर्श अधिक सुखद है, यह सूर्यको जान लेने दो ॥ ६९ ॥

माणोसहं व पिज्जइ पिआइ माणंसिणीअ दइअस्स ।
करसंपुडवलिउद्धाणणाइ महराइ गण्डूसो ॥ ७० ॥

[मानौषधमिव पीयते प्रियया मनस्विन्या दयितस्य ।
करसंपुटवलितोर्ध्वाननया मदिराया गण्डूषः ॥]

प्रियतमके करसम्पुट द्वारा ऊपर उठाये गए मुखवाली मनस्विनी प्रिया प्रियतमप्रदत्त मदिरागण्डूषको मान दूर करनेकी औषधिवत् पी रही है ॥ ७० ॥

कह सा णिव्वण्णिज्जइ जीअ जहा लोइअम्मि अङ्गम्मि ।
दिट्ठी दुब्बलगाइ व्व पङ्कपडिआ ण उत्तरइ ॥ ७१ ॥

[कथं सा निर्वर्ण्यतां यस्या यथालोकितेऽङ्गे ।
दृष्टिर्दुर्बलगौरिव पङ्कपतिता नोत्तरति ॥]

जिस रमणीके जिस अङ्गपर जिस किसीकी दृष्टि पड़ जाती है, वहींसे पङ्कपतिता दुर्बल गायकी भाँति वह फिर ऊपर नहीं उठती, उसके समग्र सौन्दर्यका वर्णन किस प्रकार हो सकता है ? ॥ ७१ ॥

कीरन्ती च्चिअ णासइ उअए रेह व्व खलअणे मेत्ती ।
सा उण सुअणम्मि कआ अणहा पाहाणरेह व्व ॥ ७२ ॥

[क्रियमाणैव नश्यत्युदके रेखेव खलजने मैत्री ।
सा पुनः सुजने कृता अनघा पाषाणरेखेव ॥]

खम्भोंमें स्थापित की कपोतोंकी मैत्री उनमें खींची गयी रेखाकी भाँति लुप्त हो जाती है, किन्तु वही मैत्री सुजनमें स्थापित होने पर पाषाणमें खींची गयी अविच्छिन्न रेखाकी भाँति स्थायी होती है ॥ ७० ॥

अम्हा दुक्करआरअ पुणो वि तत्तिं करेसि गमणस्स ।
अज्ज वि ण होन्ति सरला वेणीअ तरङ्गिणो चिउरा ॥ ७१ ॥
[अस्माकं दुष्करकारक पुनरपि चिन्तां करोषि गमनस्य ।
अद्यापि न भवन्ति सरला वेण्यास्तरङ्गिणश्चिकुराः ॥]

हे दुष्करकर्मकारक, यह अत्यन्त आश्चर्य विषय है कि तुम पुनः जानेकी बातें सोचते हो, आज तक हमारी वेणीके तरङ्गित केशपाश सीधे नहीं हुए ॥ ७१ ॥

ण वि तह छेअरआइँ वि हरन्ति पुणरुत्तराअरसिआइँ ।
जह जत्थ व तत्थ व जह व तह व सब्भावणेहरमिआइँ ॥ ७२ ॥
[नापि तथा छेकरतान्यपि हरन्ति पुनरुक्तरागरसितानि ।
यथा यत्र वा तत्र वा यथा वा तथा वा सद्भावस्नेहरमितानि ॥]

निपुणताके व्यापार आचरित अनुरागवाली पुनरुक्तियाँ उतना हरण नहीं करतीं, जितना जहाँ-तहाँ, जिस-किस भाँति आचरित सद्भाव एवं स्नेहमिश्रित रमण करता है ॥ ७२ ॥

बज्झसि पिआइ समअं तह वि हु रे भणसि कीस किसिअ त्ति ।
उवरिभरेण अ अण्णुअ मुअइ वइल्लो वि जूआइं ॥ ७३ ॥
[बध्यसे प्रियया समं तथापि खलु रे भणसि किमिति कृशासि ।
उपरि भरेण च हे अज्ञ मुञ्चति बलीवर्दोऽपि युगानि ॥]
तुम्हारी अपनी पूरब प्रिया के साथ तुम्हें अपने विचार हो रही है। अरे, फिर भी तुम पूछ रहे हो कि मैं दुबली क्यों होती जा रही हूँ? हे अज्ञ, ऊपर भार अधिकतासे बैल भी जुआ त्याग देता है ॥ ७३ ॥

दिअमूलअम्मलिअ अ मोरम्म कहँ वि लेय मे णाह ।
अच्छोहिँ वि तस्स करे सुरत्त व्व समुप्पअम्म पणअम्म ॥ ७४ ॥
[रसमूलकमलमली इव मौलिरिव केन मे नाथ ।
अक्ष्णोरपि तस्य करे विनाशयित अनुरागमयी सखी ॥]

उस नायकने अत्यन्तकष्टसे मेरे दृढभावसे मूलबन्धग्रन्थिमें ग्रथित दोनों बाहुओंको छोड़ा था, एवं मैंने भी किसी प्रकार उसके वक्षःस्थलके ऊपर उभड़े हुए स्तनद्वय को छोड़ दिया है ॥ ७६ ॥

अणुणअपसाइआए तुज्झ घराहे चिरं गणन्तीए ।
अपहुत्तोहअहत्थङ्गुलीअ तीए चिरं रुण्णं ॥ ७७ ॥
[अनुनयप्रसादितया तवापराधांश्चिर गणयन्त्या ।
अप्रभूतोभयहस्ताङ्गुल्या तया चिर रुदितम् ॥]

मेरे अनुनयसे प्रसन्न होकर भी वह बहुत देरतक तुम्हारे अपराधोंकी गणना करते करते, दोनों हाथोंकी अङ्गुलियोंको असमर्थ जान बहुत देर रोयी थी ॥७७॥

सेअच्छलेण पेच्छह तणुए अङ्गम्मिसे अमाअन्तं ।
लावण्णं ओसरइ व्व तिवलिसोवाणवत्तीए ॥ ७८ ॥
[स्वेदच्छलेन पश्यत तनुकेऽङ्गे तस्या अमात् ।
लावण्यमपसरतीव त्रिवलीसोपानपङ्क्तिभि ॥]

देखो, उस नायिकाका लावण्य, उसके कृश अङ्गमें समा न सकनेपर जैसे स्वेदके बहाने त्रिवली (उदरभागकी लम्बी रोमरेखा) रूप सोपानपङ्क्ति द्वारा उतर रहा है ॥ ७८ ॥

देव्वाअत्तम्मि फले किं कीरइ एत्तिअं पुणो भणिमो ।
कङ्केल्लिपल्लवाण ण पल्लवा होन्ति सारिच्छा ॥ ७९ ॥
[दैवायत्ते फले किं क्रियतामियत्पुनर्भणाम ।
कङ्केल्लिपल्लवानां न पल्लवा भवन्ति सदृशा ॥]

कारण, फल दैवाधीन है, अत उस विषयमें और क्या किया जाय, किन्तु इतना कह सकती हूँ कि अशोकके पल्लवके सरीखे पल्लव नहीं होते ॥ ७९ ॥

धुअइ व्व मअकलङ्कं कवोलपडिअस्स माणिणी उअह ।
अणवरअवाहजलभरिअणअणकलसेहिँ चन्दस्स ॥ ८० ॥
[धावतीव मृगकलङ्क कपोलपतितस्य मानिनी पश्यत ।
अनवरतबाष्पजलभृतनयनकलशाभ्यां चन्द्रस्य ॥]

देखो, मानिनी कपोलपर प्रतिबिम्बित चन्द्रके मृगरूप कलङ्कको अनवरत प्रवाही बाष्पजलसे पूर्ण नयनकलशद्वय द्वारा जैसे धो रही है ॥ ८० ॥

अण्णेण अप्पणो मालिअमाणं ओमालिअम्मि ण कुडिहर ।
अण्णो को वि हआसा मंसआ परिमलुग्गारो ॥ ८१ ॥
[अन्येनात्मनो मालिकानां नवमालिका न च्युता जल्पति ।
अन्योऽपि हताशा मांसल परिमलोद्गारः ॥]
अन्यान्य पुष्पोंके साथ मालिकामें स्थित नवमालिका पुष्प कभी भी अपने अन्यके गुण या भाव नहीं होता । इस हताशा पुष्पवृन्दसे किसी अन्य प्रकारका ऐसा परिमल निकलता है ॥ १ ॥

फलसंपत्तीअ समोणआइँ तुङ्गाइँ फलविपत्तीए ।
हिअआइँ सुपुरिसाणं महातरूणं व सिहराइँ ॥ ८२ ॥
[फलसंपत्त्या समवनतानि तुङ्गानि फलविपत्त्या ।
हृदयानि सुपुरुषाणां महातरूणामिव शिखराणि ॥]
महातरुके शिखरकी भाँति सत्पुरुषोंका हृदय फल-सम्पत्तिसे अवनत अथवा फल-विपत्तिसे उन्नत रहता है ॥ २ ॥

गामारुह परिसर्व परिवत्तन्तीअ पडिमआमवए ।
णित्थामुणरत्ते पडिमहत्थमुहओ वसन्तओ ॥ ८३ ॥
[ग्रामारुहपरिसरं परिवर्तमानाया प्रतिमातपात ।
निःस्थामतरे प्रतिहस्तमुखरो वसन्तकः ॥]
पथिककी पत्नी जब ग्रामके बाहर सुन्दर मार्गसे अपना पहुँचती है तब उसके संचित हाथसे सुन्दर मनोहर भाव ही उसके जीवनके अर्थोंमें परिवर्तनको व्याकुलित करता है ॥ ३ ॥

तुङ्गो च्चिअ होइ मणो मणंसिणो अन्तिमासु वि दसासु ।
अत्थमणम्मि वि रइणो किरणा उड्ढं चिअ फुरन्ति ॥ ८४ ॥
[तुङ्ग एव भवति मनो मनस्विनोऽन्तिमास्वपि दशासु ।
अस्तमनेऽपि रवेः किरणा ऊर्ध्वमेव स्फुरन्ति ॥]
अन्तिम दशामें भी मनस्वीका मन उन्नत ही रहता है । अस्त-समयके समय भी सूर्यकी किरणें ऊपर ही स्फुरित होती है ॥ ४ ॥

पोढ़ मपन्ति सरसा वि मानाआ अप्पणो अणुचिन्ता ।
विसमुद्दपत्तलाणा हवन्ति जर के वि सप्पुरिसा ॥ ८५ ॥

[उदरं बिभ्रति शकुना अपि हे मातर आत्मनोऽनुद्विग्नाः ।
विह्वलोद्धरणस्वभावा भवन्ति यदि केऽपि सत्पुरुषाः ॥]

हे माताओ, अन्यकी उदरपूर्तिकी चिन्ता किये बिना सग बिना किसी उद्वेगके अपना पेट भर लेते हैं, किन्तु कोई यदि सत्पुरुष हो तो उसका स्वभाव दुर्गतजनोंके उद्धारमें सलग्न होना है ॥ ८५ ॥

ण विणा सब्भावेण ग्घेप्पइ परमत्थजाणुओ लोओ ।
को जुण्णमज्जरं कञ्जिएण वेआरिउं तरइ ॥ ८६ ॥

[न विना सद्भावेन गृह्यते परपार्थज्ञो लोक ।
को जीर्णमार्जारं काञ्जिकया प्रतारयितुं शक्नोति ॥]

सद्भावके अतिरेकसे किसीको परमार्थज्ञ नहीं माना जाता । कौन वृद्ध बिडाल को केवल काञ्जिक (भिगोये भातके पानी) द्वारा ठग सकता है ? ॥ ८६ ॥

रण्णाउ तण रण्णाउ पाणिअं सव्वअं सअंगाहं ।
तह वि मआणँ मईणँ अ आमरणन्ताइँ पेम्माइं ॥ ८७ ॥

[अरण्यात्तृणमरण्यात्पानीयं सर्वस्त स्वयंग्राहम् ।
तथापि मृगाणां मृगीणां चामरणान्तानि प्रेमाणि ॥]

मृग-मृगीको जङ्गलसे स्वतः प्राप्त तृण एवं जल ही ग्रहण करना पड़ता है । फिर भी मृग मृगीका प्रेम आजीवन स्थायी होता है ॥ ८७ ॥

तावमवणेइ ण तहा चन्दणपङ्को वि कामिमिहुणाणं ।
जह दूसहे वि गिम्हे अण्णोण्णालिङ्गणसुहेल्ली ॥ ८८ ॥

[तापमपनयति न तथा चन्दनपङ्कोऽपि कामिमिथुनानाम् ।
यथा दूःसहेऽपि ग्रीष्मे अन्योन्यालिङ्गन सुखकेलि ॥]

घिसा चन्दन भी कामियोंका ताप उतना दूर नहीं कर पाता, जितना ग्रीष्मकालमें भी परस्परालिङ्गनरूप सुखकेलि दूर कर देता है ॥ ८८ ॥

तुप्पाणणा किणो चिट्ठसि त्ति पडिपुच्छिआएँ बहुआए ।
विउणावेढिअजहणत्थलाइ लज्जोणअं हसिअं ॥ ८९ ॥

[घृतलिप्तानना किमिति तिष्ठसीति परिपृष्टया वध्वा ।
द्विगुणावेष्टितजघनस्थल्या लज्जावनत हसितम् ॥]

'घी मुँहमें पोतकर क्यों बैठी हो', इस प्रकार पूछी जानेपर वधू पहलेकी अपेक्षा अपने जघोंको दोहरा ढककर लज्जावनत मुखसे हँसने लगी ॥ ८९ ॥

हिअअ ण्णेअ विलीणा ण साहिआ जाणिऊण पहुणाई ।
बालअपुत्तमण्णं पिअ वाहमेंगा पुणाअत्तुर ॥   ॥
[हृदय एव विलीने न कथितो ज्ञात्वा गृहनाथम् ।
बालपूर्णवर्तमिव दृश्यते पूर्णचन्द्रः ॥]

दूर्वा बढ़ जाने वाली आनन्द आनती है इस लिये सखीकी अपनी हृदया की बात जानतीके पूर्ति बालकी भाँति जाने हृदयमें ही रखती है किसीको बताती नहीं ॥ ९ ॥

पाअड दिअंसिअ अणम्मि आलिअणमणं अमअवाअडवणणाम ।
वण्णिअसममपिअमाअम्मि ढअमणम्मिमियी परिपी ॥ ९१ ॥
[प्रकटि विश्लिष्टयति अभिवर्धमानमनभ्युपगता ।
चरित्रकालविश्वामलतालिबरति ह्विणी पूर्णिमी ॥]

नाई व मन के बनानेवाले किसी चौकनेवाली पूर्णिमा मानने सुने हुए बातों पूर्व अभिवचे संचलित करके विलासमान होकर बीत रही है ॥ ९१ ॥

जह जह उम्मइट बहू णवजोव्वणमणहराई अङ्गाई ।
तह तह से तणुआअइ मज्झो दइओ अ पडिवक्खो ॥ ९२ ॥
[यथा यथोद्वहति वधूर्नवयौवनमनोहराण्यङ्गानि ।
तथा तथा तनुकायते मध्यो दयितश्च प्रतिपक्षः ॥]

नई जैसे जैसे अपने नवयौवनसे मनोहर अङ्गोंको धारण करती है वैसे ही वैसे उनकी कमर पतली एवं सभी शत्रु दुबले होने लगते हैं ॥ ९२ ॥

जह जह जराचरिणआ हारं पई धुम्मसी विलम्ब वि ।
दुमलपरिमार्थे तह तह अविलम्बं पहुदो हार ॥ ९३ ॥
[यथा यथा जरापरिणतो वहति पतिर्दुर्भगो विलम्बमपि ।
कुलबालिकानां तथा तथा बहुविरह सहने नयति ॥]

पति जितना अधिक बूढ़ा होता है, दुर्ग एवं विकट होता जाता है कुलबालिका नायिकाके लिए उतना ही कठिन होता चला जाता है ॥ ९३ ॥

पत्तो माणसि गुणाणो वारंवारेण अ भउअमाणो ।
णिमइ पाणेवेअणमयाभणं पिव पिवन्तेण वाणेण ॥ ९४ ॥
[एष मानसे गुणः वारंवारेण सम्मान्यमानः ।
प्रीयते मानमिवरसोदरमिव कुन्तेन मानुषमिव ॥]

हे मामी, यही वह युवा पुरुष है जिसे गाँवकी असती स्त्रियाँ, ग्रीष्ममें प्रातके सन्निकटस्थ कूपके शीतल जलकी भाँति अत्यन्त कष्टसे पाती हैं ॥ ९४ ॥

गामवडस्स पिउच्छा आवण्डुमुहीणँ पण्डुरच्छाअं।
हिअएण समं असईणँ पडइ वाआहअं पत्तं ॥ ९५ ॥
[ग्रामवटस्य पितृष्वसः आपाण्डुमुखीनां पाण्डुरच्छायम् ।
हृदयेन सममसतीनां पतति वाताहत पत्रम् ॥]

हे बुआ, पीतमुखी असतियोंके मनके साथ ही साथ गाँवके वटवृक्षके पीतवर्ण पत्रसमूह हवासे आहत हो गिरे जा रहे हैं ॥ ९५ ॥

पेच्छइ अलद्धलक्खं दीहं णीससइ सुण्णअं हसइ।
जह जम्पइ अफुडत्थं तह से हिअअट्ठिअं किं पि ॥ ९६ ॥
[पश्यत्यलब्धलक्ष्य दीर्घं निःश्वसिति शून्य हसति ।
यथा जल्पत्यस्फुटार्थं तथा तस्या हृदयस्थित किमपि ॥]

जब युवती बिना लक्ष्यके ही दृष्टिपात कर रही है, दीर्घनिःश्वास फेंक रही है, सूनी हँसी हँस रही है, एवं अस्पष्टार्थ भाषमे न जाने क्या आलाप कर रही है, तब ऐसा लगता है कि शायद उसके मनमें कुछ न कुछ है ही ॥ ९६ ॥

गहवइ गओम्ह सरणं रक्खसु एअं त्ति अडअणा भणिरी।
सहसागअस्स तुरिअं पइणो च्चिअ जारमप्पेइ ॥ ९७ ॥
[गृहपते गतोऽस्माक शरण रक्षैनमित्यसती भणित्वा ।
सहसागतस्य त्वरित पत्युरेव जारमर्पयति ॥]

हे गृहस्वामी, यह पुरुष हमारा शरणागत हुआ है, इसकी रक्षा करो—कहकर असतीने सहसा आये हुए पतिके हाथों जारको सौंप दिया ॥ ९७ ॥

हिअअट्ठिअस्स दिज्जउ तणुआअन्ति ण पेच्छह पिउच्छा।
हिअअट्ठिओम्ह कत्तो भणिउ मोहं गआ कुमरी ॥ ९८ ॥
[हृदयेप्सितस्य दीयतां तनूभवन्तीं न पश्यथ पितृष्वसः ।
हृदयेप्सितोऽस्माकं कुतो भणित्वा मोहं गता कुमारी ॥]

अरी बुआ, इस कुमारीको इसके मनोवाञ्छित व्यक्तिको ही समर्पित कर, यह दुर्बल होता जा रहा है, क्या यह तुम्हें दीख नहीं रहा है ? 'मेरा हृदयहार पुरुष कहाँ है', यह कहकर कुमारी मोहग्रस्त हो गयी है ॥ ९८ ॥

तिअससउर पत्था इवीर गिम्हापरण्हरमिअस्स ।
आर्द्रे गअम्मणुसुमं महामणुसुमन्धं विजरमारं ॥ ९९ ॥
[विजृम्भतेऽपि मधु स्तनयति ग्रीष्मापराह्णरमितस्य ।
आर्द्रं गण्डूषमुखं स्नानमुग्धं चिकुरभारम् ॥]

ग्रीष्मकालके अपराह्न समय रमण करनेवाले प्रिय पतिके वक्ष स्थलके ऊपर वह अपना आर्द्र मणिभूषण एवं स्नानकुसुमविभूषित केशपाश स्थापित कर रही है ॥ ९९ ॥

अह सरसदन्तमण्डलकवोलपडिमागओ मअच्छीए ।
अन्तो सिन्दूरिअसङ्खवत्तकरणिं वहइ चन्दो ॥ १०० ॥
[अथ सरसदन्तमण्डलकपोलप्रतिमागतो मृगाक्ष्याः ।
अन्तः सिन्दूरितशङ्खपात्रकरणीं वहति चन्द्रः ॥]

मृगनयनीके सरस दन्तक्षतमण्डलयुक्त कपोलपर प्रतिबिम्बित हो चन्द्र भीतरी सिन्दूरवर्णयुक्त शंखपात्र की समानता पा जाता है ॥ १०० ॥

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए ।
सत्तसअम्मि समत्तं तीअं गाहासअं एअं ॥ १०० ॥
[रसिकजन हृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।
सप्तशतके समाप्तं तृतीयं गाथाशतकमेतत् ॥]

कविवत्सल प्रमुख सुकवियों द्वारा रचित, रसिकों के हृदयहार सप्तशती में यह तृतीय शतक समाप्त हुआ ॥ १०० ॥

———

चतुर्थ शतक

अह अम्ह आअदो अज्ज कुलहराओ त्ति छेज्जई जारं ।
सहसागअस्स तुरिअं पइणो कण्ठं मिलावेइ ॥ १ ॥
[असावस्माकमागतोऽद्य कुलगृहादितीयमसौ जारम् ।
सहसागतस्य त्वरितं पत्युः कण्ठे लगयति ॥]

'यह व्यक्ति आज ही मेरे मैहरसे आया है'—ऐसा कहकर असती स्त्री अपने उपपतिको सहसागत पतिके गलेसे लगा देती है ॥ १ ॥

पुसिआ कण्णाहरणेन्दणीलकिरणाहआ ससिमऊहा ।
माणिणिवअणम्मि सकज्जलंसुसङ्काइ दइएण ॥ २ ॥
[प्रोञ्छिता कर्णाभरणेन्द्रनीलकिरणाहताः शशिमयूखाः ।
मानिनीवदने सकज्जलाश्रुशङ्कया दयितेन ॥]

प्रिय पति मानिनीके वदनपर कर्णाभरणस्थित इन्द्रनीलमणिके प्रभामिश्रित चन्द्रकिरणसमूहको आँसूकी बूँद समझकर पोंछ रहा है ॥ २ ॥

एद्दहमेत्तम्मि जए सुन्दरमहिला सहस्सभरिए वि ।
अणुहरइ णवर तिस्सा वामद्धं दाहिणद्धस्स ॥ ३ ॥
[एतावन्मात्रे जगति सुन्दरमहिलासहस्रभृतेऽपि ।
अनुहरति केवलं तस्या वामार्धं दक्षिणार्धस्य ॥]

सहस्रों सुन्दरियोंसे परिपूर्ण इतने बड़े संसारमें सौन्दर्यके विषयमें केवल इसका ही वामाङ्ग दक्षिणाङ्गका अनुकरण कर रहा है ॥ ३ ॥

जह जह वाएइ पिओ तह तह णच्चामि चञ्चले पेम्मे ।
वल्ली वलेइ अङ्गं सहावथद्धे वि रुक्खम्मि ॥ ४ ॥
[यथा यथा वादयति प्रियस्तथा तथा नृत्यामि चञ्चले प्रेम्णि ।
वल्ली वलयत्यङ्गं स्वभावस्तब्धेऽपि वृक्षे ॥]

प्रेम मेरे चाञ्चल्यका विधायक है, वरन् मेरा प्रिय जैसे जैसे बजायेगा, मैं वैसे वैसे नाचूँगी अर्थात् उसकी इच्छाका पालन करूँगी । स्वभावस्तब्ध वृक्षमें भी चञ्चल लता लिपटी रहती है ॥ ४ ॥

दुक्खेहिं लब्भइ पिओ लद्धो दुक्खेहिं होइ साहीणो ।
लद्धो वि अलद्धो विअ जइ जह हिअअं तह ण होइ ॥ ५ ॥
[दुःखैर्लभ्यते प्रियो लब्धो दुःखैर्भवति स्वाधीनः ।
लब्धोऽप्यलब्ध एव यदि यथा हृदयं तथा न भवति ॥]

बड़े कष्टसे प्रियतमको प्राप्त किया जाता है, प्राप्त करनेपर भी बड़े कष्टसे उसे स्वाधीन किया जाता है और यदि वे हृदयके अनुकूल न हों तो प्राप्त होनेपर भी नहीं प्राप्त ही समझा जाता है ॥ ५ ॥

अण्णो अणुणअसुहखण्डिरीअ अकअं कअं तुए पेम्मं ।
सरलसहावा वि पिआ अविणअमग्गं बलाणीओ ॥ ६ ॥
[अन्योऽनुनयसुखकाङ्क्षिण्याकृतं कृतं त्वया प्रेम ।
सरलस्वभावोऽपि प्रियोऽविनयमार्गं बलान्नीतः ॥]

हाय रे, अनुनय-सुखकी आकांक्षासे मैंने उनके द्वारा न किये गये अपराधको भी किया गया बतला कर सरल स्वभाव प्रियको भी बलपूर्वक अविनयके मार्गमें खींच रही हूँ ॥ ६ ॥

हत्थेसु अ पाएसु अ अङ्गुलिगणणाइ अइगआ दिअहा ।
एण्हिं उण केण गणिज्जउ त्ति भणिऊण रोअइ मुद्धा ॥ ७ ॥
[हस्तयोश्च पादयोश्चाङ्गुलिगणनयातिगता दिवसाः ।
इदानीं पुनः केन गण्यतामिति भणित्वा रोदिति मुग्धा ॥]

हाय, हाथ एवं पैरोंकी सिर्फ अङ्गुलियों द्वारा गणनाकर दिनोंको बिताया जाता है। अब कितने ... ऐसा कहकर मुग्धा रो रही है ॥ ७ ॥

कीरमुहसच्छहेहिं रेहइ वसुहा पलासकुसुमेहिं ।
बुद्धस्स चलणवन्दणपडिएहिं व भिक्खुसंघेहिं ॥ ८ ॥
[कीरमुखसदृशै राजते वसुधा पलाशकुसुमैः ।
बुद्धस्य चरणवन्दनपतितैरिव भिक्षुसंघैः ॥]

बुद्धदेवके चरणवन्दनार्थ पतित भिक्षुओंकी भाँति शुकमुखसदृश रक्तवर्ण पलाश पुष्पोंसे वसुधा सुशोभित हो रही है ॥ ८ ॥

जं जं पिहुलं अङ्गं तं तं जाअं किसोअरि किसं ते ।
जं जं तणुअं तं तं पि णिट्ठिअं किं त्थ माणेण ॥ ९ ॥

[यद्यत्पृथुलमङ्ग तत्तज्जात कृशोदरि कृश ते ।
यद्यत्तनुक तत्तदपि निष्ठित किमत्र मानेन ॥]

हे कृशोदरी, तुम्हारे जो-जो अङ्ग स्थूल होते हैं, वे ही कृश हो गए हैं और जो जो अङ्ग स्वभावत कृश होते हैं, वे-वे अङ्ग कृशताकी चरमसीमा पर पहुँच गए हैं, इसलिये मान द्वारा क्या मिलेगा ? ॥ ९ ॥

ण गुणेण हीरइ जणो हीरइ जो जेण भाविओ तेण ।
मोत्तूण पुलिन्दा मोत्तिआइँ गुञ्जाओँ गेह्णन्ति ॥ १० ॥

[न गुणेन ह्रियते जनो ह्रियते यो येन भावितस्तेन ।
मुक्त्वा पुलिन्दा मौक्तिकानि गुञ्जा गृह्णन्ति ॥]

कोई व्यक्ति केवल गुण द्वारा किसी के आकर्षणका विषय नहीं होता । जो व्यक्ति जिस वस्तु द्वारा प्रेम रूप लगता है, वह व्यक्ति उसी वस्तु द्वारा आकृष्ट होता है । उत्कल के पर्वतवासी पुलिन्दगण मुक्ताको त्यागकर गुञ्जाको ही ग्रहण करते हैं ॥ १० ॥

लङ्कालआणँ पुत्तअ वसन्तमासेक्कलद्धपसराणं ।
आपीअलोहिआणं बीहेइ जणो पलासाणं ॥ ११ ॥

[लङ्कायानां पुत्रक वसन्तमासैकलब्ध प्रसराणाम् ।
आपीतलोहितानां बिभेति जन पलाशानाम् ॥]

हे पुत्रक, लङ्कानिवासी चर्बी, अक्ष एव मास में अधिकतर प्रसृत एव अत्यधिक रुधिरपायी राक्षसोंकी भाँति शाखाग्रस्थायी, वसन्त मासमें ही अधिकतर प्रसृत एव ईषत् पीत एव लोहित वर्ण पलाशपुष्पों से सुन्दर नारियाँ डरती हैं ॥ ११ ॥

घेत्तूण चुण्णमुट्ठिं हरिसूससिआए वेपमाणाए ।
भिसिणेमित्ति पिअअमं हत्थे गन्धोदअं जाअं ॥ १२ ॥

[गृहीत्वा चूर्णमुष्टिं हर्षोत्सुकिताया वेपमानाया ।
अवकिरामीति प्रियतम हस्ते गन्धोदक जातम् ॥]

हर्षसे उच्छ्वसित हो, सात्त्विक भावसे काँपती हुई नायिका गन्धद्रव्यकी चूर्णमुष्टि ग्रहणकर प्रियतमके ऊपर विकीर्ण करेगी, ऐसा सोचते ही घर्मस्रावसे उसके हाथमें गन्धजल उत्पन्न हो गया ॥ १२ ॥

पुट्टिं पुससु किसोअरि पडोहरङ्गोल्लपत्तचित्तलिअं।
छेआहिँ दिअरजाआहिँ उज्जुए मा कलिज्जिहिसि ॥ १३ ॥
[पृष्ठं प्रोञ्छ कृशोदरि पश्चाद्गृहाङ्गणपत्रचित्रितम् ।
छेकाभिर्देवरजायाभिर्ऋजुके मा कलयिष्यसे ॥]

हे कृशोदरी, मकानके पिछवाड़े वाले आँगनमें पत्तोंसे चित्रित अपनी पीठको पोंछ डालो। नहीं तो अपनी चतुर देवरानियाँ तुम्हें मालूम कर लेंगी ॥ १३ ॥

मअणग्गिणो व्व धूमं मुहपवणुद्धुअं पि वहसि विरहं।
मज्झे पफुल्लकुसुमं व पुब्बअं कहें णु कलिन्ती ॥ १४ ॥
[मदनाग्नेरिव धूमं मुखपवनोद्धूतमपि वहसि विरहम् ।
मध्ये प्रफुल्लकुसुममिव पुष्पितं कथं नु कलयसि ॥]

ज्वालामें दिखाई देनेवाले धुँएके सदृश आँसुओंसे भरी तुम्हारी दोनों आँखोंको देख लिया, किन्तु तुम्हारी मुस्कान बाहर पुष्पित करने वाली कलिकाओं जैसी क्यों है ? ॥ १४ ॥

[illegible] पीअणपिअसन्धं।
[illegible] व गामणइं विज्जुआणइ असहाअं ॥ १५ ॥
[[illegible] पुरे [illegible] ।
[illegible] विद्युदाभा [illegible] ॥]

[illegible] में [illegible] बैठी हुई [illegible] दिखाई देती है ॥ १५ ॥

सुअसु जं सामीवं कुणो साअं छुपामरिसमिम।
सुहअ सहावेण वि किं तस्स सिणेहा अग्गि ण सिंप ॥ १६ ॥
[[illegible] कुरु [illegible] ।
सुभग [illegible] किं तेन स्नेहो [illegible] ॥]

[illegible] क्यों [illegible] ? हे सुभग, [illegible] (स्नेह) नहीं है, उनके केवल [illegible] (आनन्द) [illegible] क्या लाभ ? ॥ १६ ॥

सुहपुच्छिआइ हलिओ मुहपङ्कअनुरहिपवणणिव्ववीअं ।
तह पिअइ पअइकडुअं पि ओसहं जण ण णिट्टाइ ॥ १७ ॥
[सुखपृच्छिकाया हलिको मुखपङ्कजसुरभिपवननिर्वापितम् ।
तथा पिबति प्रकृतिकटुकमप्यौषधं यथा न तिष्ठति ॥]

हलिकने भी अनुरक्त शरीर सुखजिज्ञासाकारिणीके मुखकमलके समीर द्वारा शीतल किये हुए स्वभाव कटुऔषधिको इस प्रकार पी डाला कि उसका किंचिन्मात्र भी शेष नहीं रहा ॥ १७ ॥

अह सा तहिं तहिं च्चिअ वाणीरवणम्मि चुक्कसंकेआ ।
तुह दसणं विमग्गइ पब्भट्ठणिहाणठाणं व ॥ १८ ॥
[अथ सा तत्र तत्रैव वानीरवने विस्मृतसङ्केता ।
तव दर्शनं विमार्गति प्रभ्रष्टनिधानस्थानमिव ॥]

बादमें वह नायिका सङ्केतस्थलकी बात भूलाकर विस्मृत आधारस्थानकी भाँति, उसी उसी वाणीकुञ्जमें तुम्हें खोज रही है ॥ १८ ॥

दढरोसकलुसिअस्स वि सुअणस्स मुहाहि विप्पिअं कत्तो ।
राहुमुहम्मि वि ससिणो किरणा अमअं चिअ मुअन्ति ॥ १९ ॥
[दृढरोषकलुषितस्यापि सुजनस्य मुखादप्रियं कुतः ।
राहुमुखेऽपि शशिनः किरणा अमृतमेव मुञ्चन्ति ॥]

अत्युत्कट-रोषवश कलुषित होनेपर भी भले आदमीके मुँहसे अप्रिय बात कहाँ निकलती है ? राहुके मुखमें पड़े हुए चन्द्र किरण अमृत ही देते हैं ॥१९॥

अवमाणिओ वि ण तहा दुमिज्जइ सज्जणो विहवहीणो ।
पडिकाऊ असमत्थो माणिज्जन्तो जह परेण ॥ २० ॥
[अवमानितोऽपि न तथा दूयते सज्जनो विभवहीनः ।
प्रतिकर्तुमसमर्थो मान्यमानो यथा परेण ।

वैभवहीन सज्जन अपमानित होनेपर भी उतने क्षुब्ध नहीं होते, जितना कि दूसरों द्वारा माने जानेपर भी वैभवके अभावमें प्रत्युपकारसे असमर्थ होने पर व्यथित होते हैं ॥ २१ ॥

फलहन्तरे वि अविणिग्गआइँ हिअअम्मि जरमुवगआइँ ।
सुअणकआइ रहस्साइँ डहइ आउक्खए अग्गी ॥ २१ ॥

[कण्टकोत्कीर्णविनिर्गतानि हृदये [illegible] ।
कुसुमकुसुमानि [illegible] [illegible]]

[illegible] तुम्बी हुई [illegible] उसके मुँहसे नहीं निकलती, उसके हृदयमें ही वे मर हो जाती हैं और उसके [illegible] वर्ष [illegible] करती हैं ॥ २१ ॥

तुम्बीओ [illegible] आअन्त ।
[illegible] पि [illegible] ॥ २२ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] हो गए हैं [illegible] ॥ २२ ॥

पिअदंसणसुहरसमउलिआइँ जइ से ण होन्ति णअणाइँ ।
ता केण कण्णरइअं लक्खिज्जइ कुवलअं तिस्सा ॥ २३ ॥
[प्रियदर्शनसुखरसमुकुलिते यदि अस्या न भवतो नयने ।
तदा केन कर्णरचितं लक्ष्यते कुवलयं तस्याः ॥]

उस नायिकाके नेत्र यदि प्रियदर्शन सुखसे मुकुलित न होते तो क्या उसके कानोंमें रचित नीलकमलको कोई देख सकता ? ॥ २३ ॥

णिक्किव[illegible] पइम्मि पासुत्ते ।
अव्वत्तमोहणसुहं [illegible] ॥ २४ ॥
[[illegible] पत्यौ प्रसुप्ते ।
[illegible] ॥]

[illegible] ॥ २४ ॥

कुप्पन्ति देन्ति [illegible] ।
[illegible] ॥ २५ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

व्याकुलता एव चिन्तानुरञ्जनके सहायक मदनके बाणोंको नमस्कार करती हूँ, कारण वे सब प्रियकी अनुपस्थितिमें मनोव्यथा भी उत्पन्न करते हैं और सुख भी प्रदान करते हैं, या कभी प्रेमानुराग बढ़ा देते हैं एव कभी सौमनस्य उत्पन्न कर देते हैं ॥ २५ ॥

कुसुममआ वि अइखरा अलद्धफंसा वि दूसहपआवा ।
भिन्दन्ता वि रइअरा कामस्स सरा बहुविअप्पा ॥ २६ ॥
[कुसुममया अप्यतिखरा अलब्धस्पर्शा अपि दु सहप्रतापा ।
भिन्दन्तोऽपि रतिकराः कामस्य शरा बहुविकल्पा ॥]

कामदेवके बाण नाना प्रकार विशिष्ट अर्थात् परस्पर विरुद्धधर्मा हैं । कारण, कुसुममय होनेपर भी वे अत्यन्त तिषग हैं, लक्ष्यवस्तुको स्पर्श किये बिना ही वे उससे दुःसह ताप प्रकट करते हैं एव हृदय भेदन करनेपर भी रतिसम्पादन कर्त्ता होते हैं ॥ २६ ॥

ईसं जणेन्ति दावेन्ति मम्महं विप्पिअं सहावेन्ति ।
विरहे ण देन्ति मरिउं अहो गुणा तस्स बहुमग्गा ॥ २७ ॥
ईर्ष्यां जनयन्ति दीपयन्ति मन्मथ विप्रिय साहयन्ति ।
विरहे न ददति मर्तुमहो गुणास्तस्य बहुमार्गाः ॥]

अहो, प्रिय अथवा कामबाण की गुणावली बहुविध है—कभी तो ये ईर्ष्या उत्पन्न करते हैं, कभी मदनभाव उद्दीपित करते हैं, कभी अप्रियाचरण सहन कराते हैं एव विरहमें भी मरनेका अवकाश नहीं देते ॥ २७ ॥

णीआइँ अज्ज णिक्किव पिणद्धणवरङ्गआॅइ वराईए ।
घरपरिवाडीअ पहेणआइँ तुह दंसणासाए ॥ २८ ॥
[नीतान्यद्य निष्कृप पिनद्धनवरङ्गकया वराक्या ।
गृहपरिपाट्या प्रहेणकानि तव दर्शनाशया ॥]

हे निर्दय, तुम्हारे दर्शनकी आशामें वह दीनानायिका नूतन रक्तवस्त्र पहनकर आज यह घर घर बायन बाँट रही थी, किन्तु तुम्हारी अनुकम्पा उसे नहीं मिली ॥ २८ ॥

सूइज्जइ हेमन्तम्मि दुग्गओ पुप्फुआसुअन्धेण ।
धूमकविलेण परिविरलतन्तुणा जुण्णवडएण ॥ २९ ॥

[धूमायते हेमन्ते दुर्गता करीषाग्निधूमकेन ।
धूमविशेषपरिमितश्मश्रुणा जीर्णवस्त्रेण ॥]

हेमन्तकालमें करीषके धोएँकी अग्नि धूमसिक्तित, धुएँ के कारण विरल वर्ण एवं उसी प्रकार के विरलश्मश्रु जीर्णवस्त्रधारी अत्यन्त दरिद्र दुर्गत किया जाता है ॥ ९ ॥

णवसिसिरउग्गिणिआइँ कुणइ पहिओ हिमग्गमपहाए ।
[illegible] मञ्जरिं ॥ १० ॥
[शीतकाल[illegible]विचितानि करोति पथिको हिमागमप्रभाते ।
[illegible] ॥]

शिशिरके प्रभातमें [illegible] पथिक शीतल [illegible] कर [illegible] [illegible] पीछे हाथमें [illegible] [illegible] [illegible] कर रहा है ॥ १० ॥

[illegible] सहमाणभरिं पामरस्स सीसम्मि ।
बन्धिम्मिव हीरन्ती ममरजुआण अणुसरन्ति ॥ ११ ॥
[[illegible] पामरस्य शीर्षे ।
बन्दीमिव ह्रियमाणां [illegible]ऽनुसरन्ति ॥]

[illegible] एवं पामरों द्वारा शिरपर ले जाती हुई [illegible] [illegible] बन्दीकी [illegible] [illegible] अनुसरण कर रहे हैं ॥ ११ ॥

सूरच्छलेण पुत्तअ कस्स तुमं अञ्जलिं पणामेसि ।
हासकडक्खुम्मिस्सा ण होन्ति देवाणँ जेक्कारा ॥ १२ ॥
[सूर्यच्छलेन पुत्रक कस्मै अञ्जलिं प्रणामयसि ।
हासकटाक्षोन्मिश्रा न भवन्ति देवानां जयकाराः ॥]

हे पुत्रक, तुम सूर्यके बहाने किसे अञ्जलिपूर्वक प्रणाम कर रहे हो ? देवताओंकी स्तुति हास्य एवं कटाक्षद्वारा मिश्रित होके [illegible] नहीं है ॥ १२ ॥

मुहपिज्जणिमपरिवं [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १३ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥]

जिसमें मुखमारुत द्वारा दीपक बुझाया जाय, सौम अवरुद्ध हो जाय, ससम्भ्रमावसे मलाप चले, एवं दाग दापथद्वारा, अधरदशन वर्जित हो, वह चौर्यरमण सुख उत्पन्न करता है ॥ ३३ ॥

गेअच्छलेण भरिउं कस्स तुमं रुअसि णिब्भरुक्कण्ठं ।
मण्णुपडिरुद्धकण्ठद्धणिन्तखलिअक्खरुल्लावं ॥ ३४ ॥
[गेयच्छलेन स्मृत्वा कस्य त्वं रोदिषि निर्भरोत्कण्ठम् ।
मन्युप्रतिरुद्धकण्ठार्धनिर्यत्स्खलिताक्षरोल्लापम् ॥]

गानेके बहाने किसे स्मरणकर तुम रोती हो, इस रोदनसे तुम्हारी उत्कण्ठा की अतिशयता प्रकट होती है पर इसमें तुम्हारे शोकनिरुद्ध कण्ठसे अर्धनि सृत एवं स्खलिताक्षर प्रलाप सुनायी पड़ता है ॥ ३४ ॥

बहलतमा हअराई अज्ज पउत्थो पई घरं सुण्णं ।
तह जग्गेसु सअज्झिअ ण जहा अम्हे मुसिज्जामो ॥ ३५ ॥
[बहलतमा हतरात्रिरद्य प्रोषितः पतिर्गृहं शून्यम् ।
तथा जागृहि प्रतिवेशिन् यथा वयं मुष्यामहे ॥]

दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि गाढान्धकाराच्छन्न है, पति भी आज ही प्रवासार्थ गया है, मेरा घर सूना है। हे पड़ोसी (उपपति), इस प्रकार जागृत रहना जिसमे हमारे यहाँ चोरी न हो ॥ ३५ ॥

संजीवणोसहिम्मिव सुअस्स रक्खइ अणण्णवावारा ।
सासू णवब्भदंसणकण्ठागअजीविअं सोह्णं ॥ ३६ ॥
[संजीवनौषधमिव सुतस्य रक्षत्यनन्यव्यापारा ।
श्वश्रूर्नवाभ्रदर्शनकण्ठागतजीवितां स्नुषाम् ॥]

सास नवजलधर दर्शनके कारण, कण्ठागत प्राण पुत्रवधूको पुत्रकेलिए सञ्जीवन औषधिके समान समझकर, अनन्यकर्मा होकर रक्षा करती है ॥ ३६ ॥

णूणं हिअअणिहित्ताइ वससि जाआइ अम्ह हिअअम्मि ।
अण्णह मणोरहा मे सुहअ कहं तीअ विण्णाआ ॥ ३७ ॥
[नूनं हृदयनिहितया वससि जायया अस्माकं हृदये ।
अन्यथा मनोरथा मे सुभग कथं तया विज्ञाताः ॥]

[हे सुभग, तुम निश्चय ही अपने हृदयमें निहित अपनी भार्याको साथ लेकर मेरे हृदय में वास कर रहे हो ; नहीं तो मेरे मनोगतभावको उसने कैसे जान लिया ? ॥ ३७ ॥

जइ सुहअ णईसन्ते तिस्सा [illegible] [illegible] ।
दिण्णं माहिलाहिं पाविअं दंसणसुहअं ॥ ३८ ॥
[यदि सुभग [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
दत्तं पूर्व[illegible] [illegible] दर्शनसुखेन ॥]

हे सुभग तुम उसके [illegible] ते [illegible] होते [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पूर्वजीव [illegible] तुम्हारे दर्शन सुखसेही [illegible] देते थे ॥ ३८ ॥

[illegible] सुह सुहदंसण पडिवन्नजीविआसार ।
दुक्खिआर मए [illegible] चिन्तिअमेत्तो [illegible] ॥ ३९ ॥
[[illegible] [illegible] ।
दुःखिता [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रही है। किन्तु [illegible] [illegible] दुःखी होकर मैं [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३९ ॥

[illegible] पुत्ति किं ण दुम्मेसि ।
[illegible] जम्मभूमि [illegible] ॥ ४० ॥
[[illegible] पुत्रि किं न दूयसे ।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥]

हे पुत्री तुम्हारा पूर्वजीव [illegible] [illegible] [illegible] होनेसे [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] एवं तुम [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं देती ? ॥

परिमोसविसिअसिप्पहिं मणिअ [illegible] [illegible] [illegible] ।
पडिवण्णं तीअ वि [illegible] [illegible] ॥ ४१ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] ॥]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था ॥ ४१ ॥

[illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥ ४२ ॥

[अन्योन्यसंदेशानुरागवर्धमानकौतूहलानि ।
दुःखमसमाप्तमनोरथानि तिष्ठन्ति मिथुनानि ॥]

दोनों प्रेमी परस्पर प्रेरित प्रणय वार्त्ताद्वारा उत्पन्न अनुरागमें कौतूहलके बढ़जानेपर मिलन मनोरथ पूरा न करसकनेके कारण दुःखमें रहरहे हैं ॥ ४२ ॥

जइ सो ण वल्लहो व्विअ गोत्तग्गहणेण तस्स सहि कीस ।
होइ मुहं ते रविअरफंसव्विसट्टं व तामरसं ॥ ४३ ॥

[यदि स न वल्लभ एव गोत्रग्रहणेन तस्य सखि किमिति ।
भवति मुखं तव रविकरस्पर्शविकसितमिव तामरसम् ॥]

हे सखि, वह यदि तुम्हें प्रिय न होगा तो उसका नाम लेनेपर तुम्हारा मुख सूर्यकिरणके संस्पर्शसे विकसित पद्मकी भाँति प्रतीयमान क्यों होगा ? ॥

माणदुमपरुसपवणस्स मामि सव्वङ्गणिव्वुइअरस्स ।
अवऊहणस्स भद्द रइणाडअपुव्वरङ्गस्स ॥ ४४ ॥

[मानद्रुमपरुषपवनस्य मातुलानि सर्वाङ्गनिर्वृतिकरस्य ।
अवगूहनस्य भद्रं रतिनाटकपूर्वरङ्गस्य ॥]

सभी अङ्गोंके सुखविधायक, रतिनाटकके पूर्वरङ्गरूपी आलिङ्गनकी शुभ-कामना करती हूँ ॥ ४४ ॥

णिअआणुमाणणीसङ्क हिअअ दे पसिअ विरम एत्ताहे ।
अमुणिअपरमत्थजणाणुलग्ग कीस म्ह लहुएसि ॥ ४५ ॥

[निजकानुमाननिःशङ्क हृदय हे प्रसीद विरमेदानीम् ।
अज्ञातपरमार्थजनानुलग्न किमित्यस्माँल्लघयसि ॥]

हे हृदय, तुम अपने अनुमानद्वारा ही शङ्काशून्य हुए हो, सम्प्रति नायककी खोजसे विरत होओ, ऐसे अज्ञात मर्म व्यक्तिमें आसक्त होना, हम जैसी ललनाओंको इतना छोटा क्यों बना देता है ? ॥ ४५ ॥

ओसहिअजणो पइणा सलाहमाणेण अइचिरं हसिओ ।
चन्दो त्ति तुज्झ वअणे विइण्णकुसुमाञ्जलिविलक्खो ॥ ४६ ॥

[आवसथिकजनः पत्या श्लाघमानेनातिचिरं हसितः ।
चन्द्र इति तव वदने वितीर्णकुसुमाञ्जलिविलक्षः]

तुम्हारा मुख ही चन्द्र है, ऐसा सोचकर उसके प्रति कुसुमाञ्जलि देनेसे लज्जित अवदानादिमें नियमित गृहस्थकी प्रशंसाकर तुम्हारा पति बहुत देर तक हँसा है ॥ ४६ ॥

थिम्रन्तोहि अघुरिवं पलसम्मि वि तुमम्मि बहोहि ।
बालअ पुप्फिअअन्ती व अविमा कस्स वि भविस्से ॥ ४७ ॥
[यौवनमारोहतुर्वि अवलोकेऽपि त्वय्येव ।
बालक पुष्पमाणा न जाने कस्य कि भविष्यति ॥]

हे बालक, तुम्हारे स्थापित होनेपर भी ... न जाने मैं किसे क्या बना दूँ ? यह नहीं जानती ॥ ४७ ॥

अज्जाणं तणुसारम सिक्खावण बीहतोरमज्जाणं ।
बिसम्बाइअमअरम मा मा णं पम्हसिज्जासु ॥ ४८ ॥
[आज्ञाया तनुमारक शिक्षक दीर्घतरिक्षितोन्मत्तानाम् ।
विषमाधिकमसरक मा मा एनां प्रस्मरिष्यसि ॥]

हे बालक, तुम स्त्रीके नखोंकी तुम्हारे विशारद हो, उसके ... एक शिक्षक एवं शीकमय करनेके कारण हो । तुम उसे कभी उसे स्मरण न करना ॥ ४८ ॥

अण्णाइ व हीरइ किम परिवड्ढन्तमरहं पिअअमस्स ।
मरणविणोएण विणा विरमावेउं विरहदुक्खं ॥ ४९ ॥
[अन्यया न शक्यत एव परिवर्धमानगुरुकं प्रियतमस्य ।
मरणविनोदेन विना विरमयितुं विरहदुःखं ॥]

भावार्थ ... अतिरिक्त किसी दूसरे उपायसे प्रियतमके विरहमें बढ़नेवाला भारी दुःख शान्त न होगा ॥ ४९ ॥

अम्भन्तीहि तुह गुणं बहुसा अम्हि णिम्मविअपुलअं ।
बालअ सअमेअ कआसि दुल्लहो कस्स कुप्पामो ॥ ५० ॥
[वर्णयन्तीभिस्तव गुणान्बहुशोऽस्माभिस्तवपुलकम् ।
बालक स्वयमेव कृतोऽसि दुर्लभः कस्मै कुप्यामः ॥]

सखियों के सामने मैंने ही तुम्हारे गुणों का बहुत वर्णन किया है । इससे ..., हे बालक, स्वयं मैंने तुम्हें दुर्लभ बना दिया है । किसे कोप दिखाऊँ ॥ ५० ॥

आआए सो वि विअण्णो मए वि हसिऊण गामचुक्कपूरो ।
पढमोसरिअस्स णिअंसणस्स गण्ठिं विमग्गन्तो ॥ ५१ ॥
[जाता सोऽपि विकल्पो ... हसित्वा ... ।
प्रथमापसृतस्य निवसनस्य ग्रन्थिं विमार्गयन् ॥]

पहले ही मेरे विगलित वस्त्रकी गाँठ खोजनेको उद्यत हो, (सुनक०) वह भी लज्जित हो गया और मैंने भी हँसकर उसका गाढालिङ्गन कर लिया ॥ ५१ ॥

फण्डुज्जुआ वराई अज्ज तए सा कआवराहेण ।
अलसाइअरुण्णविअम्भिआइँ दिअहेण सिक्खविआ ॥ ५२ ॥
[कान्दर्जुका वराकी अद्य त्वया सा कृतापराधेन ।
अलसायितरुदितविजृम्भितानि दिवसेन शिक्षिता ॥]

सम्प्रति अपराधकर तुमने याण अथवा कान्तकी भाँति सरलस्वभाव दीन रमणीको एक दिनमें औदासीन्य, रोदन एवं विस्तारकी शिक्षा दे दी है ॥ ५२ ॥

अवराहेहिँ वि ण तह्या पत्तिअ जह मं इमेहिँ दुम्मेसि ।
अवहत्थिअसब्भावेहिँ सुहअ दक्खिण्णभणिएहिँ ॥ ५३ ॥
[अपराधैरपि न तथा प्रतीहि यथा मामेभिर्दुनोषि ।
अपहस्तितसद्भावैः सुभग दाक्षिण्यभणितैः ॥]

हे सुभग, मेरी बातका विश्वास करना। तुम अपने अपराधद्वारा मुझे उतना दुःखी नहीं कर सकते हो जितना अपने इस सद्भावशून्य दाक्षिण्यभाषण द्वारा कर सकते हो ॥ ५३ ॥

मा जूर पिआलिङ्गणसरहसभमिरीणँ बाहुलइआणं ।
तुह्णिक्कपरुण्णेण अ इमिणा माणंसिणि मुहेण ॥ ५४ ॥
[मा कुप्यस्व प्रियालिङ्गनसरभसभ्रमणशीलाभ्यां बाहुलतिकाभ्याम् ।
तूष्णीकप्ररुदितेन चानेन मनस्विनि मुखेन ॥]

हे मनस्विनी, नीरवमें रोनेवाले इस मुखको लेकर तुम प्रियके आलिङ्गन-जनित सुखसे कम्पायमान बाहुलताद्वयके ऊपर खेद मत प्रकट करना ॥ ५४ ॥

मा वच्च पुप्फलाविर देवा उअअञ्जलीहिँ तूसन्ति ।
गोआअरीअ पुत्तअ सीलुम्मूलाइँ कूलाइ ॥ ५५ ॥
[मा व्रज पुष्पलवनशीला देवा उदकाञ्जलिभिस्तुष्यन्ति ।
गोदावर्याः पुत्रक शीलोन्मूलानि कूलानि ॥]

हे कुसुमचयनकेलिए व्यग्र पुत्रक, गोदावरी किनारे मत जाना, देवता जलाञ्जलिसे ही तुष्ट होते हैं। गोदावरीका तीर शीलोन्मूलनकारी है ॥ ५५ ॥

वअणे वअणम्मि चलन्तसीसमुण्णावहाणहुङ्कारं ।
सहि देन्ति णीसासन्तरेसु कीस म्ह दुम्मेसि ॥ ५६ ॥

[[illegible]
[illegible]]

है [illegible] ॥ ५१ ॥

[illegible] पुच्छन्ती [illegible] ।
[illegible] ॥ ५३ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

हे [illegible] है । [illegible] ॥ ५ [illegible] ॥

[illegible] ।
[illegible] सुन्दरी [illegible] ॥ ५४ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] ([illegible]) [illegible] ॥ ५५ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ५६ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] है ॥ ५९ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ६० ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

भाग गया, किंचित् खिला हुआ फूल वृन्तसमूहके भारसे अवनत होकर कार्पासी भी मानो हँसने लगा।

णीसासुक्कम्पिअपुलइएहिँ जाणन्ति णच्चिउं धण्णा।
अम्हारिसीहिँ दिट्ठे पिअम्मि अप्पा वि वीसरिओ ॥ ६१ ॥
[निःश्वासोत्कम्पितपुलकितैर्जानन्ति नर्तितुं धन्याः ।
अस्मादृशीभिर्दृष्टे प्रिये आत्मापि विस्मृतः ॥]

नृत्यके समय प्रेमीके अङ्गस्पर्शसे जो निःश्वास उत्कम्प एवं पुलकके साथ नृत्य करना जानती हैं, वे धन्या हैं; किन्तु मेरी जैसी रमणीके प्रियको देख पाते ही आत्मविस्मृत हो जाती हैं ॥ ६१ ॥

तणुएण वि तणुइज्जइ खीणेण वि खिज्जए वला इमिणा।
मज्झत्थेण वि मज्झेण पुत्ति कहँ तुज्झ पडिवक्खो ॥ ६२ ॥
[तनुकेनापि तनूयते क्षीणेनापि क्षीयते बलादनेन ।
मध्यस्थेनापि मध्येन पुत्रि कथं तव प्रतिपक्षः ॥]

हे पुत्रि, तुम्हारी कमर दुबली एवं पतली है, इस कमरकेद्वारा तुम अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको दुबली पतली बनानेमें किस प्रकार समर्थ हो रही हो? ॥ ६२ ॥

वाहिव्व वेज्जरहिओ धणरहिआ सुअणमज्झवासो व्व।
रिउरिद्धिदंसणम्मिव दूसहणीओ तुह विओओ ॥ ६३ ॥
[व्याधिरिव वैद्यरहितो धनरहितः स्वजनमध्यवास इव ।
रिपुऋद्धिदर्शनमिव दुःसहनीयस्तव वियोगः ॥]

तुम्हारा विरह मेरेलिए वैद्यरहित व्याधिकी भाँति, स्वजनोंके बीच निर्धन हो वासकरनेकी भाँति तथा अपने नेत्रद्वारा शत्रुओंकी समृद्धि देखनेके समान प्रतीत होता है ॥ ६३ ॥

को एत्थ जअम्मि समत्थो थइउं वित्थिण्णणिम्मलुत्तुङ्गं।
हिअअं तुज्झ णराहिव गअणं च पओहरं मोत्तु ॥ ६४ ॥
[कोऽत्र जगति समर्थः स्थगयितुं विस्तीर्णनिर्मलोत्तुङ्गम् ।
हृदयं तव नराधिप गगनं च पयोधरान्मुक्त्वा ॥]

हे राजन्, पयोधर (स्तन या मेघ) के अतिरिक्त कौनसी वस्तु इस जगत्में विस्तीर्ण, निर्मल एवं उत्तुङ्ग तुम्हारे हृदय एवं गगनपर अधिकार करनेमें समर्थ है? ॥ ६४ ॥

मामण्णेह मडमया [illegible] [illegible]।
[illegible] सम्मरमं [illegible] ॥ ९५ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥]

[illegible] [illegible] [illegible] तुम्हारे [illegible] द्वारा [illegible] [illegible]
मर [illegible] सुन रही है ॥ ९५ ॥

[illegible] सुरहि[illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] मुहं [illegible] ॥ ९६ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] मुखं [illegible] ॥]

[illegible] [illegible] समान [illegible] जो मुख कभी भी [illegible] [illegible] नहीं
हुआ, उस [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कोपमें और
([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं ॥ ९६ ॥

[illegible] वि गुरुमणुपुरओ [illegible] [illegible]।
[illegible] से [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ९७ ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

तुम्हारे [illegible] [illegible], गुरुजनोंके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया ॥ ९७ ॥

परिमो से [illegible] [illegible] ।
[illegible] ॥ ९८ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] [illegible] [illegible] होनेपर भी, [illegible] [illegible] [illegible] होनेपर
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया था, [illegible] [illegible] [illegible] है ॥ ९८ ॥

[illegible] [illegible] वि [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥ ९९ ॥

[फाल्गुनोत्सवनिर्दोषं केनापि कर्दमप्रसाधनं दत्तम् ।
स्तनकलशमुखप्रलुठत्स्वेदधौतं किमिति धावयसि ॥]

नजाने किसने फाल्गुनोत्सव में तुम्हें निर्दोष विचारे विना कीचड़ लगा दिया है। अपने स्तनकलशके मुखसे विगलित स्वेदद्वारा धोये हुए उस कीचड़को पुनः क्यों धो रही हो ? ॥ ६९ ॥

किं ण भणिओ सि बालअ गामणिधूआइ गुरुअणसमक्खं ।
अणिमिसमीसीसिवलन्तवअणणअणद्धदिट्ठेहिं ॥ ७० ॥
[किं न भणितोऽसि बालक ग्रामणीदुहित्रा गुरुजनसमक्षम् ।
अनिमिषमीषदीषद्वलद्वदननयनार्धदृष्टैः ॥]

हे बालक, गुरुओंके सम्मुख अनिमिषनयनसे मुखको तिरछाकर कटाक्ष-द्वारा तुम्हें देखकर ग्रामिणीकी कन्याने तुमसे क्या नहीं कहा ? ॥ ७० ॥

णअणब्भन्तरघोलन्तबाहभरमन्थराइ दिट्ठीए ।
पुणरुत्तपेच्छिरीए बालअ किं जं ण भणिओ सि ॥ ७१ ॥
[नयनाभ्यन्तरघूर्णमानबाष्पभरमन्थरया दृष्ट्या ।
पुनरुक्तप्रेक्षणशीलया बालक किं यन्नभणितोऽसि ॥]

नयनाभ्यन्तरमें घूर्णमानबाष्पभरित मन्थर दृष्टिसे तुम्हें बारबार देखकर, हे बालक, उस नायिका ने ऐसा क्या है जिसे तुमसे कह न दिया हो ? ॥ ७१ ॥

जो सीसम्मि विइण्णो मज्झ जुआणेहिं गणवई आसी ।
तं च्चिअ एह्निं पणमामि हअजरे होहि संतुट्ठा ॥ ७२ ॥
[यः शीर्षे वितीर्णो मम युवभिर्गणपतिरासीत् ।
तमेवेदानीं प्रणमामि हतजरे भव संतुष्टा ॥]

युवकोंने मेरे सिरपर जिस गणपतिको दान किया था, अब यौवन विगत होनेपर उन्हींको प्रणाम कर रही हूँ। हे हतभागे, तुम सन्तुष्ट होओ ॥ ७२ ॥

अन्तोहुत्तं डज्झइ जाआसुण्णे घरे हलिअउत्तो ।
उक्खाअणिहाणाइँ व रमिअट्ठाणाइँ पेच्छन्तो ॥ ७३ ॥
[अन्तरभिमुखं दह्यते जायाशून्ये गृहे हालिकपुत्रः ।
उत्खातनिधानानीव रमितस्थानानि पश्यन् ॥]

जायाशून्य घरमें रमणके स्थानोंको, उत्खात सञ्चित निधिके उत्पाटित



स्वामीकी पीठ [illegible] देकर [illegible] हृदयमें [illegible] अनुभव हो रहा है॥ ७३॥

णिद्दाभङ्गो आवण्डुरत्तणं दीहरा अ णीसासा।
जाअन्ति जस्स विरहे तेण समं केरिसो माणो॥ ७४॥
[निद्राभङ्ग आपाण्डुरत्वं दीर्घाश्च निःश्वासाः।
जायन्ते यस्य विरहे तेन समं कीदृशो मानः॥]

जिसके विरहमें निद्राभङ्ग, पाण्डुरता एवं दीर्घनिःश्वास उत्पन्न होता है उसके साथ किस प्रकार मानका अवलम्बन करूँ ?॥ ७४॥

तेण ण मरामि मण्णूहिं पूरिआ अज्ज जेण रे सुहअ।
तोग्गअमणा मरन्ती मा तुज्झ पुणो वि लग्गिस्सं॥ ७५॥
[तेन न म्रिये मन्युभिः पूरिताद्य येन रे सुभग।
त्वद्गतमना म्रियमाणा मा तव पुनरपि लगिष्यामि॥]

हे सुभग, तुम्हारी [illegible] होकर [illegible] भी कहीं फिर तुम्हें [illegible] न पाऊँ यही सोचकर [illegible] होकर भी मरना नहीं चाहती॥ ७५॥

अवरज्झसु वीसद्धं सव्वं ते सुहअ विसहिमो अम्हे।
गुणणिब्भरम्मि हिअए पेच्छसु दोसा ण माअन्ति॥ ७६॥
[अपराध्यस्व विस्रब्धं सर्वं ते सुभग विषहामहे वयम्।
गुणनिर्भरे हृदये प्रतीहि दोषा न मान्ति॥]

हे सुभग, विश्वस्त होकर यथारुचि अपराध करो, मैं तुम्हारा सब कुछ सहन करूँगी, यह विश्वास रखना कि तुम्हारे गुणोंद्वारा पूर्ण भरा हृदय तुम्हारे दोषोंको स्थान न दे सकेगा॥ ७६॥

परिरब्धाग्गणसरीम्मपिअसंभरणपिसुणो वराईए।
परिवाहो विअ दुक्खस्स वहइ णअणट्ठिओ बाहो॥ ७७॥
[[illegible]।
परीवाह इव दुःखस्य वहति नयनस्थितो बाष्पः॥

[illegible] आँखोंमें स्थित आँसू परिपूर्ण होकर [illegible] दुःखके [illegible] भी यहाँ [illegible] हो रहा है॥ ७७॥

जं जं करेसि जं जं जंपसि जह तुम णिअच्छेसि ।
तं तमणुसिक्खिरीए दीहो दिअहो ण संपडइ ॥ ७८ ॥
[यद्यत्करोषि यद्यज्जल्पसि यथा त्व निरीक्षसे ।
तत्तदनुशिक्षणशीलाया दीर्घो दिवसो न सपद्यते ॥]

तुम जो-जो करते हो, जो-जो बोलते हो एव जिस प्रकार देखते हो उसका अनुसरण करने जानेपर देखती हूँ कि मेरे दिन दूभर नहीं प्रतीत होते ॥ ७८ ॥

भण्डन्तीअ तणाइं सोत्तु दिण्णाइँ जाइँ पहिअस्स ।
ताइं च्चेअ पहाए अज्जा आअड्ढइ रुअन्ती ॥ ७९ ॥
[भर्त्सयन्त्या तृणानि स्वप्तु दत्तानि यानि पथिकस्य ।
तान्येव प्रभाते आर्या आकर्षति रुदती ॥]

भर्त्सनाकर रात्रिमें पथिकको सोनेकेलिए रमणी ने पुआल दिया था, सबेरा होनेपर उसे ही रोते-रोते बटोररही है ॥ ७९ ॥

वसणम्मि अणुव्विग्गा विहवम्मि अगव्विआ भए धीरा ।
होन्ति अहिण्णसहावा समेसु विसमेसु सप्पुरिसा ॥ ८० ॥
[व्यसनेऽनुद्विग्ना विभवेऽगर्विता भये धीराः ।
भवन्त्यभिन्नस्वभावा समेषुविषमेषु सत्पुरुषा ॥]

सज्जन व्यक्ति विपदामें अनुद्विग्न, सम्पदमें अगर्वित एव भयमें धीर रहकर अनुकूल एव प्रतिकूल परिस्थितियोंमें समस्वभावशील (स्थितप्रज्ञ) रहते हैं ॥ ८० ॥

अज्ज सहि केण गोसे क पि मणे वल्लहं भरन्तेण ।
अम्हं मअणसराहअहिअअव्वणफोडनं गीअ ॥ ८१ ॥
[अद्य सखि केन प्रात कामपि मन्ये वल्लभां स्मरता ।
अस्माक मदनशराहतहृदयव्रणस्फोटन गीतम् ॥]

अरी सखी, प्रतीत होता है कि आज प्रात कालही जैसे कोई प्रियतमाको स्मरणकर इस प्रकार गानकर रहा है जिससे मदनबाणद्वारा आहत मेरे हृदय का घाव विदीर्ण हो रहा है ॥ ८१ ॥

उट्ठन्तमहारम्भे थणए दट्ठूण मुद्धवहुआए ।
ओसण्णकवोलाए णीससिअं पढमघरिणीए ॥ ८२ ॥
[उत्तिष्ठन्महारम्भौ स्तनौ दृष्ट्वा मुग्धवध्वा ।
अवसन्नकपोलया निःश्वसित प्रथमगृहिण्या ॥]

उष्ण कपोल सिंचित मृणालखण्डको मुखमें डाले हाथीकी सूँड़में ही मृणाल मुरझा रही है। ८१।

गहमपुम्पगलिसरस वि बहुलकरिणीमुहं भरन्तस्स ।
सरसो मुणालकवलो गअस्स हत्थे च्चिअ मिलाणो ॥ ८१ ॥
[कुसुमकुसुमकलितस्यापि वल्लभकरिणीमुखं स्मरतः ।
सरसो मृणालकवलो गजस्य हस्त एव म्लानः ॥]

अत्यन्त व्याकुल होनेपर भी प्रियतमा हथिनीका मुँह स्मरणकर हाथीके सूँड़पर स्थित सरस मृणालखण्डकी ग्रास होता जा रहा है परिचित नहीं हो रहा है। ८१।

पसिअ पिए का कुविआ सुअणु तुमं परअणम्मि को कोवो ।
को हु परो नाह तुमं कीस अपुण्णाण मे सत्ती ॥ ८२ ॥
[प्रसीद प्रिये का कुपिता सुतनु त्वं परजने कः कोपः ।
कः खलु परो नाथ त्वं किमित्यपुण्यानां मे शक्तिः ॥]

हे प्रिये प्रसन्न होओ। कौन कुपित हुआ है? सुतनु, तुमने कोप किया है? पराओंके प्रति कोप कैसा? और पराया कौन है? हे नाथ तुम्हीं पराया हो। कैसे? मेरे अपुण्य की शक्ति से नाथ। ८२।

पडिहिसि तुमं त्ति णिमिसं व जग्गिअं जामिणीअ पढमद्धं ।
सेसं संतावपरव्वसाए वरिसं व वोलीणं ॥ ८३ ॥
[पतिष्यसि त्वमिति निमिषमिव जागरितं यामिन्याः प्रथमार्धम् ।
शेषं सन्तापपरवशया वर्षमिव व्यतिक्रान्तम् ॥]

'तुम आओगे' यह सोचकर रात्रि के प्रथम अर्ध निमिषके समान जागकर रात्रि का पूर्वार्ध व्यतीत किया है फिर सन्तापसे विरह-व्याकुल होकर वर्षके समान बिताया है। ८३।

अवलम्बह मा संकह ण इमा गहलंघिआ परिब्भमइ ।
अत्थक्कगज्जिउब्भन्तहित्थहिअआ पहिअजाआ ॥ ८४ ॥
[अवलम्बध्वं मा शङ्कध्वं नेयं ग्रहलङ्घिता परिभ्रमति ।
अकस्माद्गर्जितोद्भ्रान्तत्रस्तहृदया पथिकजाया ॥]

इस स्त्रीको पकड़ो, कोई आशंका मत करो, यह ग्रहोंके द्वारा आक्रान्त होकर परिभ्रमण नहीं कर रही है इस पथिकजायाका हृदय आकस्मिक मेघ-गर्जनसे हुआ त्रस्त होकर भ्रान्त हो गया है। ८४।

केसररअविच्छड्डे मअरन्दो होइ जेत्तिओ कमले।
जइ भमर तेत्तिओ अण्णहिं पि ता सोहसि भमन्तो ॥ ८७ ॥
[केसररज समूहे मकरन्दो भवति यावान्कमले।
यदि भ्रमर तावानन्यत्रापि तदा शोभसे भ्रमन् ॥]

रे भौंरे, कमलके केसरपराग समूहमें जितना मधु होता है, यदि अन्य पुष्पों में भी उतना ही मधु हो तो तुम्हारा वहाँ जाना अच्छा लगता है ॥८७॥

पेच्छन्ति अणिमिसच्छा पहिआ हलिअस्स पिट्ठपण्डुरिअं।
धूअं दुद्धसमुद्दुत्तरन्तलच्छिं विअ सअह्णा ॥ ८८ ॥
[प्रेक्षन्तेऽनिमिषाक्षाः पथिका हलिकस्य पिष्टपाण्डुरिताम्।
दुहितरं दुग्धसमुद्रोत्तरल्लक्ष्मीमिव सतृष्णाः ॥]

अनिमिषलोचन देवताओंने क्षीरसागरसे उर्ध्वंगत पीतवर्ण लक्ष्मीकीओर जिसप्रकार सतृष्णभावसे देखा था, तण्डुलादि चूर्णलेपनद्वारा पीतवर्णप्राप्त हलिक पुत्रीके प्रति राहगीर भी उसी प्रकार निर्निमिष एव सतृष्ण होकर दृष्टिपात कररहे हैं ॥ ८८ ॥

कस्स भरिसि त्ति भणिए को मे अत्थि त्ति जम्पमाणाए।
उव्विग्गरोइरीए अम्हे वि रुआविआ तीए ॥ ८९ ॥
[कस्य स्मरसीति भणिते को मेऽस्तीति जल्पमानया।
उद्विग्नरोदनशीलया वयमपि रोदितास्तया ॥]

'किसे स्मरणकर रही हो ?' ऐसा पूछे जानेपर, 'मेरा कौन है' ऐसा उत्तर दे, उद्वेगसे रोनेवाली उस रमणीने हमलोगोंको भी रुलाया है ॥ ८९ ॥

पाअपडिअं अहव्वे किं दाणिं ण उट्ठवेसि भत्तारं।
एअं विअ अवसाणं दूरं पि गअस्स पेम्मस्स ॥ ९० ॥
[पादपतितमभव्ये किमिदानीं नोत्थापयसि भर्तारम्।
एतदेवावसानं दूरमपि गतस्य प्रेम्णः ॥]

हे अनुचित व्यवहार करनेवाली, अभीतक तुम पैरोंपर गिरे हुए भर्तारको उठा नहीं रही हो ? अत्यन्त वृद्धि प्राप्त प्रेमकी भी यही चरमसीमा है ॥ ९० ॥

तडविणिहिअग्गहत्था वारितरङ्गेहिं घोलिरणिअम्बा।
सालूरी पडिबिम्बे पुरिसाअन्तिव्व पडिहाइ ॥ ९१ ॥
[तटविनिहिताग्रहस्ता वारितरङ्गैर्घूर्णनशीलनितम्बा।
शालूरी प्रतिबिम्बे पुरुषायमाणेव प्रतिभाति ॥]

[illegible] [illegible] [illegible] रखकर एवं [illegible] निकलनेवाले दिन-कर मेरुकी जाने प्रतिबिम्बमें मानो सुशोभित बना रही है ऐसा प्रतीत होता है ॥ ९१ ॥

सिहरिममणिमसुहवेविमाई सुमहत्यसिहिहिमाई ।
सिमवागु वासहीओ कुसुम्म तुमह प्यासाएण ॥ ९२ ॥
[[illegible] [illegible] ।
सिकस्तु [illegible] कुसुम्भ [illegible] ॥]

हे कुसुम्भ, तुम्हारी कृपासे ही कुमारियाँ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सुखसीखनम एवं [illegible] [illegible] [illegible] जाने भी लिया गया ॥ ९२ ॥

मेसिममेत्ता रच्छा [illegible] कह तसिआ ण जामी सि ।
अं छिप्पइ गुरुअणलज्जिमी सरन्ती वि सो सुहओ ॥ ९३ ॥
[[illegible] रथ्या [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] च [illegible] ॥]

हे मित्र रथ्या अर्थात् रास्तेका जितना परिमाण है उतना परिमाण लेकर तुमने कम क्यों नहीं किया ? कारण गुरुओं के सामने कम्पित होकर [illegible] भी वह सुभग [illegible] [illegible] ही किया जाता है ॥ ९३ ॥

मरम्मसुरंधिरं व मोत्तिमं पिअइ आअवम्मीमो ।
मोरो पाउसआले तणग्गलग्गं उअअबिन्दुं ॥ ९४ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥]

वर्षाके और [illegible] [illegible] होकर [illegible] [illegible] फिर [illegible] [illegible] दिखानी देनेवाला [illegible] [illegible] [illegible] हुए जलबिन्दुका पान कर रहा है [[illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] है ।] ॥ ९४ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥ ९५ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] ॥]

[illegible] [illegible] [illegible] हुआ [illegible] होनेपर भी ([illegible] [illegible]

उद्भासित) उर्ध्वगत होकर जलमृत सुनीए जलधरके बीचसे ईषत् उद्गत चन्द्रमण्डलकी नाईं शोभा पा रहा है ॥ ९५ ॥

राअविरुद्धं व कहं पहिओ पहिअस्स साहइ ससङ्कं।
जत्तो अम्बाण दलं तत्तो दरणिग्गअं किं पि ॥ ९६ ॥
[राजविरुद्धामपि कथां पथिक पथिकस्य कथयति सशङ्कम्।
यत आम्राणां दल तत ईषन्निर्गत किमपि ॥]

'आम्रवृक्षके जिस स्थानसे पत्तेका उद्गम होता है, उस स्थानसे थोड़ा थोड़ा निकला हुआ (अङ्कुर) न जाने क्या दिखायी दे रहा है ? राजविरुद्ध चर्चाकी भाँति इस बातको भी एक पथिक दूसरेसे अत्यन्त शङ्कित होकर कहता है ॥ ९६ ॥

धण्णा ता महिलाओ जा दइअं सिविणए वि पेच्छन्ति।
णिद्द व्विअ तेण विणा ण एइ का पेच्छए सिविणं ॥ ९७ ॥
[धन्यास्ता महिला या दयित स्वप्नेऽपि प्रेक्षन्ते।
निद्रैव तेन विना नैति का प्रेक्षते स्वप्नम् ॥]

जो प्रियको स्वप्नमें भी देखलेती है, वेही नारी धन्य हैं; उसके विरहमें मुझे निद्रा ही नहीं आती, स्वप्न कौन देखे ? ॥ ९७ ॥

परिरद्धकणअकुण्डलत्थलमणहरेसु सवणेसु।
अण्णअसमअंवसेण अ पहिरज्जइ तालवेण्टजुअं ॥ ९८ ॥
[परिरब्धकनककुण्डलगण्डस्थलमनोहरयोः श्रवणयो।
अन्यसमयवशेन च परिध्रियते तालवृन्तयुगम् ॥]

कनक कुण्डलचुम्बित गण्डस्थलमें शोभित कर्णद्वयमें कालान्तरवश तालपत्रनिर्मित कर्णभूषणयुगल भी धारण होता है ॥ ९८ ॥

मज्झण्हपत्थिअस्स वि गिम्हे पहिअस्स हरइ संतावं।
हिअअट्ठिअजाआमुहमिअङ्कजोह्णाजलप्पवहो ॥ ९९ ॥
[मध्याह्नप्रस्थितस्यापि ग्रीष्मे पथिकस्य हरति सतापम्।
हृदयस्थितजायामुखमृगाङ्कज्योत्स्नाजलप्रवाह ॥]

अपने हृदयस्थित जायाके मुखचन्द्रकी ज्योत्स्ना-जलप्रवाह, ग्रीष्ममें मध्याह्नके समय पथमें रुकेहुए पथिकका सन्ताप दूरकर देता है ॥ ९९ ॥

भण को ण रुस्सइ जणो पत्थिज्जन्तो अपत्तकालम्मि।
रतिवावडा रुअन्तं पिअं वि पुत्त सवइ माआ ॥ १०० ॥

[यत्र को न वञ्चति तत्र मदनेनायतीभोगकाले ।
रतिविभ्रमा मनस्विनि पुनः प्रान्ते जाता ॥]

अनुकूल स्थान एवं अवसरमें अनुचित होनेपर कौन [illegible]
होता, बताओ तो ? रतिविभ्रम बालाकी मिथुनके होनेपर [illegible]
देती है ॥ १ ॥

एत्थ चउत्थं विरमइ गाहाणं सअं सुहारसमइअं ।
सोऊण अ ण रज्जइ हिअअं महुरत्तणेण अमिअं पि ॥ [illegible]
[अत्र चतुर्थं विरमति गाथानां शतं सुधारसमयीनाम् ।
श्रुत्वा न रमति हृदये मधुरत्वेनामृतमपि ॥]

रसमाधुर्यमयि गाथा शतक चतुर्थ समाप्त नहीं समाप्त हो गया [illegible]
सुननेपर हृदयको अमृत भी उतना मधुर नहीं लगता ॥ १ १ ॥



पञ्चम शतक

उज्झसि उज्झसु कड्ढसि कड्ढसु अह फुडसि हिअअ ता फुडसु।
तह वि परिसेसिओ च्चिअ सो हु मए गलिअसब्भावो॥ १॥

[दह्यसे दह्यस्व क्वथ्यसे क्वथ्यस्व अथ स्फुटसि हृदय तत्स्फुट।
तथापि परिशेषित एव स खलु मया गलितसद्भावः॥]

अरे हृदय, दग्ध होना हो तो हो जाओ, क्वथित या पक्व होना हो तो हो जाओ, किन्तु अब भी उसे मैंने स्नेह या सद्भाव विगलित ही निर्धारित किया है॥ १॥

दट्ठूण रुन्दतुण्डग्गणिग्गअं णिअसुअस्स दाढग्गं।
भोण्डी विणा वि कज्जेण गामणिअडे जवे चरइ॥ २॥

[दृष्ट्वा विशालतुण्डाग्रनिर्गतं निजसुतस्य दंष्ट्राग्रम्।
सूकरी विनापि कार्येण ग्रामनिकटे यवांश्चरति॥]

अपने पुत्रके विशाल मुखाग्रसे निकले हुए दाढ़ोंको देखकर शूकरी बिना किसी कामके गाँवके निकटस्थ जवके खेतोंमें विचरण कर रही है॥ २॥

हेलाकरग्गअड्ढिअजलरिक्कं साअरं पआसन्तो।
जअइ अणिग्गहअवडवग्गि भरिअगअणो गणाहिवई॥ ३॥

[हेलाकराग्राकृष्टजलरिक्तं सागरं प्रकाशयन्।
जयत्यनिग्रहवडवाग्निभृतगगनो गणाधिपतिः॥]

शुण्डद्वारा अवज्ञापूर्वक जलपान किये जानेपर रिक्त या शून्य सागरको प्रकाशित कर निग्रहसमर्थ गणाधिपति अनिगृहीत वडवानल द्वारा गगनमण्डल को परिपूर्ण करते-करते जययुक्त हो रहे हैं॥ ३॥

एएण च्चिअ कंकेल्लि तुज्झ तं णत्थि जं ण पज्जत्तं।
उवमिज्जइ जं तुह पल्लवेण वरकामिणी हत्थो॥ ४॥

[एतेनैव कङ्केल्ले तव तन्नास्ति यन्न पर्याप्तम्।
उपमीयते यत्तव पल्लवेन वरकामिनीहस्तः॥]

हे अशोकवृक्ष, तुम्हारे पल्लवकेसाथ सुन्दरी कामिनीका हाथ उपमित होता है, इससे प्रतीत होता है कि तुम्हारे पास वह है ही नहीं जो पूर्ण न हो॥

रसिअविअड्ढ विलासिअ समअण्णुअ सच्चअं असोओ सि ।
वरजुअइचलणकमलाहओ वि जं विअससि सअण्ह ॥ ५ ॥
[रसिक विदग्ध विलासिन्समयज्ञ सत्यमशोकोऽसि ।
वरयुवतिचरणकमलाहतोऽपि यद्विकससि सतृष्णम् ॥]

हे रसिक, हे विदग्ध, हे विलासी, हे समयज्ञ तुम सचमें तुम अशोक अथवा शोकरहित हो कारण, श्रेष्ठ युवतीके चरणकमल द्वारा आहत होनेपर भी तुम सतृष्ण भावसे विकसित होते हो अर्थात् देखते रहते हो ॥ ५ ॥

वलिणो वामणरूवे वोज्झं तिउणत्तणं च पावन्तो ।
सुरसत्थकआणन्दो वामणरूवो हरी जअइ ॥ ६ ॥
[बलेर्वामनरूपे भारं त्रिगुणत्वं च प्राप्नुवन् ।
सुरसार्थकृतानन्दो वामनरूपो हरिर्जयति ॥]

वामनरूपमें बलिके भारस्वरूप अर्थात् तिरस्कारजनक तिगुनी मात्रा गुण एवं त्रिगुणता है—इसे समझकर नमन करते-करते सुरसमूह वामनप्रभोद्वारा सबको आनन्दित कर विनीत अथवा पाताल भरतालापहारी विजयी हो। अभिप्राय है वामनरूप के विस्तारके समय—अपनी अनुरूप क्रिया एवं वैदुष्यका भाव प्रकाशित करते-करते देवलोक को आनन्दित करनेवाले वामनरूपी विष्णु विजयी हों ॥ ६ ॥

णिव्वाविआइ अलसो गहवइधूआइ णिव्वमसिहो वि ।
महुमहणपाअणिहसणपिअसमहुससिसिरहीए ॥ ७ ॥
[निर्वापितो अलसो गृहपतिदुहित्रा निर्वृतशिखोऽपि ।
मधुमथनपादनिघृष्टविनतमधुरशिखीकलापया ॥]

रूठी होनेके लिए विलास जैसे गृहपतिकी दुहिता मधुमथनके समान विस्तारके पादविन्यासजनित मृदुस्पर्श लोकबिन्दुओंके कारण शीतलताकी हो निवृत्तशिखाके भी बुझा रही है ॥ ७ ॥

आरम्भाअमसुम्भमपुरससरखलसिसिरिरहिरम्पि ।
ण समप्पइ णवकमलाहिणार वजूहआरम्भो ॥ ८ ॥
[आरम्भागमसुलभपुरसरखलशिशिरेऽपि ।
न समाप्यते नवकमलाभिनवा वधूकारम्भः ॥]

मालते रसपानसम्पूर्ण अत्यन्त अनुचित होनेसे बुध द्वारा समस्त

स्वेदसमुद्गमसे शीतलाङ्गिनी नवकापालिकव्रतधारिणी रमणी स्वेदनिवारणके लिए भस्मानुलेपन कार्यको समाप्त नहीं कर पा रही है ॥ ८ ॥

एक्को पण्हुअइ थणो बीओ पुलअइ णहमुहालिहिओ ।
पुत्तस्स पिअअमस्स अ मज्झणिसण्णाएँ घरणीए ॥ ९ ॥
[एकः प्रस्नौति स्तनो द्वितीयः पुलकितो भवति नखमुखालिखितः ।
पुत्रस्य प्रियतमस्य च मध्यनिषण्णया गृहिण्याः ॥]

पुत्र एवं प्रियतमके बीच बैठनेके कारण गृहिणीका एक स्तन दुग्धपात कर रहा है और दूसरा स्तन पतिप्रेममें नखाग्रसे चिह्नित हो पुलकित हो रहा है ॥ ९ ॥

एत्ताइच्चिअ मोहं जणेइ बालत्तणे वि वट्टन्ती ।
गामणिधूआ विसकन्दलिव्व वड्ढीओ काहिइ अणत्थं ॥ १० ॥
[एतावत्येव मोहं जनयति बालत्वेऽपि वर्तमाना ।
ग्रामणीदुहिता विषकन्दलीव वर्धिता करिष्यत्यनर्थम् ॥]

बालिकाकी अवस्थामें इस प्रकार वर्त्तमान रहकर भी ग्रामपतिकी दुहिता मोह उत्पन्न कर रही है, विषकन्दली अर्थात् विषवृक्षकी भाँति वर्द्धित होकर अनर्थ ही करवायेगी ॥ १० ॥

अपहुप्पन्त महिमण्डलम्मि णहसंठिअं चिरं हरिणो ।
तारापुप्फप्पअरञ्चिअ व तइअं पअं णमह ॥ ११ ॥
[अप्रभवन्महीमण्डले नभःसंस्थितं चिरं हरेः ।
तारापुष्पप्रकराञ्चितमिव तृतीयं पदं नमत ॥]

महिमण्डलमें अपरिमित होनेके कारण बहुत देरतक नभोमण्डलमें संस्थित तारारूप पुष्पराजि द्वारा सम्पूजित त्रिविक्रम विष्णुके तृतीय चरणको नमस्कार करो। [गुप्तस्थानमें अतर्भुक्ता वयस्याके प्रश्नके उत्तरमें नायिका रात्रिमें उपयुक्त त्रैविक्रमबन्ध्याख्य रमणकलाके विषयमें दूसरेके बहानेसे बताती है ॥]

सुप्पउ तइओ वि गओ जामोत्ति सहीओ कीस मं भणह ।
सेहालिआणँ गन्धो ण देइ सोत्तु सुअह तुम्हे ॥ १२ ॥
[सुप्यतां तृतीयोऽपि गतो याम इति सख्यः किमिति मां भणथ ।
शेफालिकानां गन्धो न ददाति स्वप्तुं स्वपित यूयम् ॥]

सखियो, तुम मुझसे यह क्यों कह रही हो कि "तीसरा याम भी बीत गया, तुम सोओ" शेफालिकाकी गन्ध मुझे सोने नहीं दे रही है, तुम सब सो जाओ ॥

[illegible] सो च संभरिज्जइ जो मे तह संठिआएँ अङ्गाइ ।
णिव्वत्तिए वि सुरए णिज्झाअइ सुरअरसिअव्व ॥ १३ ॥
[[illegible] च न संस्मर्यते यो मम [illegible] ।
निर्वर्तितेऽपि सुरते निध्यायति सुरतरसिक इव ॥]

जो व्यक्ति सुरतरसिकके समान सुरतक्रियाके समाप्त होनेपर भी मेरे अङ्गोंको [illegible] समझकर उनके प्रति [illegible] लगाये रखता है उसे कैसे स्मरण न करूँ ? ॥ १३ ॥

सुव्वइ [illegible] विसुज्झन्तकमलअ्पईव ।
रिद्धिं [illegible] बलेण सव्वं लआमस्स ॥ १४ ॥
[[illegible] ।
[illegible] बलेन सर्वं लतामस्य ॥

[illegible] उस [illegible] देख पाता है जिससे [illegible] बीत रहा है एवं जिसमें उसके समस्त सभी [illegible] एवं [illegible] सभी [illegible] रहे हैं ॥ १४ ॥

वोरिमरमसवा [illegible] मा पुत्ति [illegible] ।
[illegible] सन्भिआसि [illegible] ॥ १५ ॥
[[illegible] मा पुत्रि [illegible] ।
[illegible] ॥]

हे [illegible] पुत्रि [illegible] मत [illegible], [illegible] तरह [illegible] दिखायी दे जाओगी ॥

[illegible] पडिवन्नं च देइ रसो [illegible] ।
[illegible] मिणा [illegible] ॥ १६ ॥
[[illegible] प्रतिवचनं च ददाति [illegible] ।
[illegible] विना [illegible] ॥

[illegible] बिना [illegible] भी [illegible] कोई उत्तर नहीं दे रही है एवं [illegible] भी [illegible] किसी-किसीसे [illegible] हो रही है ॥

[illegible] मोत्तूण पच्छाए च पुड [illegible] ।
किं [illegible] ता च [illegible] ॥ १७ ॥
[[illegible] च [illegible] ।
किं [illegible] ॥]

ठीक है, हमलोग क्या हुआ असती ही हैं। हे पतिव्रते, तुम हट जाओ। तुम्हारा गोत्र अर्थात् नाम वा कुल मलिन नहीं हुआ है; तब भी किसी व्यक्तिके जायाकी भाँति हमलोगोंने कभी नाईकी कामना नहीं की है ॥ १७ ॥

णिद्दं लहन्ति कहिअं सुणन्ति खलिअक्खरं ण जम्पन्ति।
जाहिँ ण दिट्ठो सि तुम ताओ च्चिअ सुहअ सुहिआओ ॥ १८ ॥

[निद्रां लभन्ते कथित शृण्वन्ति स्खलिताक्षर न जल्पन्ति।
याभिर्न दृष्टोऽसि त्वं ता एव सुभग सुखिता ॥]

हे सुभग, जिन रमणियोंने तुम्हें देखा नहीं है, वे ही सुखी हैं। कारण वे सो सकती हैं, दूसरेकी बातें सुन सकती हैं, एव उन्हें अक्षरस्खलनके साथ बातचीत नहीं करनी पड़ती ॥ १८ ॥

बालअ तुमाइ दिण्णं कण्णे काऊण बोरसङ्घाडिं।
लज्जालुइणी वि वहू घरं गआ गामरच्छाए ॥ १९ ॥

[बालक त्वया दत्तां कर्णे कृत्वा बदरसङ्घाटीम्।
लज्जालुरपि वधूगृहं गता ग्रामरथ्यया ॥]

हे बालक, लज्जाशील होनेपर भी वधू तुम्हारे दिये हुए बेरगुच्छको कानमें धारण कर गाँवके पथसे घर चली गई ॥ १९ ॥

अह सो विलक्खहिअओ मए अहव्वाएँ अगहिआणुणओ।
परवज्जणच्चरीहिँ तुह्मेहिँ उवेक्खिओ णेन्तो ॥ २० ॥

[अथ स विलक्षहृदयो मया अभव्यया अगृहीतानुनय।
परवाद्यनर्तनशीलाभिर्युष्माभिरुपेक्षितो निर्यन् ॥]

अरे, मैंने अशिष्टा होकर उसका अनुनय स्वीकार नहीं किया, इससे विधुर-हृदय हो वह क्या घरसे निकलते समय तुमलोगों द्वारा उपेक्षित हुआ है? कारण, तुम्हारा काम ही है बाजा बजाकर दूसरोंको नचा डालना ॥ २० ॥

दीसन्तो णअणसुहो णिव्वुइजणओ करेहिँ वि छिवन्तो।
अब्भत्थिओ ण लब्भइ चन्दो व्व पिओ कलाणिलओ ॥ २१ ॥

[दृश्यमानो नयनसुखो निर्वृतिजनन कराभ्यां [अपि] स्पृशन्।
अभ्यर्थितो न लभ्यते चन्द्र इव प्रिय कलानिलय ॥]

दृष्टिपथमें आनेपर नयनके सुखका उत्पादक, कर अथवा किरन द्वारा सस्पर्श

कमलोंके सरीखे [illegible] अर्थात् [illegible] मनोहर [illegible] होकर भी दुर्लभ है ॥ २१ ॥

जे पीलिअभमरसरणमासमा आसि पारसुप्पज्जे ।
[illegible] बहुला पिअअमस्स ते पच्चुआ जाआ ॥ २२ ॥
[ये [illegible]
कालेन वधुका प्रियतमस्य ते [illegible] ॥]

हे प्रियतम [illegible] जो बहुत [illegible] थे वे कालके [illegible] दूर के समान [illegible] हो रहे हैं ॥ २२ ॥

घणमहुरेण पेम्मेण माउआ दुम्मिअम्ह पत्ताहे ।
सिविणअपिदिवसम्मेण व दिट्ठपणट्ठेण लोअम्मि ॥ २३ ॥
[घनमधुरेण प्रेम्णा [illegible] हृदयेन ।
स्वप्नमिलितेनैव दृष्टनष्टेन लोके ॥]

[illegible] स्वप्नमें [illegible] घनमधुर [illegible] हूँ ॥ २३ ॥

चाओ सहावसरलं विच्छिन्दइ सरं गुणम्मि वि पडन्तं ।
वंकस्स उज्जुअस्स अ संबन्धो किं चिरं होइ ॥ २४ ॥
[चापः स्वभावसरलं विच्छिनत्ति शरं गुणेऽपि पतन्तम् ।
वक्रस्य ऋजुकस्य च संबन्धः किं चिरं भवति ॥]

धनुषकी डोरीसे ऊपर संस्थापित स्वभाव-सरल बाणको छेदता है, वक्र एवं सरल इन दोनोंका सम्बन्ध क्या कभी चिरस्थायी हो सकता है ? ॥ २४ ॥

पढमं वामणविहिणा पच्छा हु कओ विअम्भमाणेण ।
थणजुअलेण इमीए महुमहणेण व्व बलिबन्धो ॥ २५ ॥
[प्रथमं वामनविधिना पश्चात्खलु कृतो विजृम्भमाणेन ।
स्तनयुगलेनास्या मधुमथनेनेव बलिबन्धः ॥]

इसके ये दोनों स्तन मधुसूदन विष्णुकी भाँति पहले वामनरूप में [illegible] होकर बलिबन्ध (त्रिवलीबन्धन एवं विष्णुपक्षमें बलिराजका बन्धन) करनेमें समर्थ हुए हैं ॥ २५ ॥

माअपसुत्तम्मि [illegible] मा आवि [illegible] ।
[illegible] ॥ २६ ॥

[मालतीकुसुमानि दग्ध्वा मा जानीहि निर्वृतः शिशिर ।
कर्त्तव्याद्यापि निर्गुणानां कुन्दानामपि समृद्धि ॥]

ऐसा मत समझना कि केवल सगुण मालतीकुसुमके समूहको जलाकर शिशिर सन्तुष्ट हो गया है, अभी भी निर्गुण कुन्दपुष्पसमूहकी समृद्धिको घटाना उसके लिए शेष है ॥ २६ ॥

तुङ्गाणँ विसेसनिरन्तराणँ [सरस] वणलद्धसोहाण ।
कअकज्जाणँ भडाणँ व थणाण पडण वि रमणिज्जं ॥ २७ ॥

[तुङ्गयोर्विशेषनिरन्तरयो [सरस] व्रणलब्धशोभयोः ।
कृतकार्ययोर्भटयोरिव स्तनयोः पतनमपि रमणीयम् ॥]

मानादि द्वारा उन्नत, विशेष निरन्तर अथवा समकक्षप्राय एवं युद्धादिमें प्राप्त सरसव्रणविशिष्ट होनेके कारण अत्यन्त शोभित, विजयी योद्धाद्वयके समान उन्नत, अन्योन्यसलग्न एवं सरसव्रणविशिष्ट अर्थात् रतिसमरमें नखादि चिह्नयुक्त होनेके कारण अत्यन्त शोभित कृतकृत्य स्तनद्वयका लटक जाना भी रमणीय है ॥ २७ ॥

परिमलणसुहा गुरुआ अलद्धविवरा सलक्खणाहरणा ।
थणआ कव्वालाव व्व कस्स हिअए ण लगन्ति ॥ २८ ॥

[परिमलनसुखा गुरुका अलब्धविवराः सलक्षणाभरणाः ।
स्तनकाः काव्यालापा इव कस्य हृदये न लगन्ति ॥]

मर्दनमें सुखकर, स्थूल, रन्ध्रशून्य एवं सुलक्षणाक्रान्त आभरणसे शोभित स्तन—विचारसुखकर, अर्थगुरु, दोषरहित एवं सुलक्षणविशिष्ट अलङ्कारसे सुशोभित काव्यालापके समान—किसके हृदयमें नहीं माते ? ॥ २८ ॥

खिप्पइ हारो थणमण्डलाहि तरुणीअ रमणपरिरम्भे ।
अच्चिअगुणा वि गुणिनो लहन्ति लहुअत्तणं काले ॥ २९ ॥

[क्षिप्यते हारः स्तनमण्डलात्तरुणीभी रमणपरिरम्भे ।
अर्चितगुणा अपि गुणिनो लभन्त लघुत्व कालेन ॥]

रमणकालके आलिङ्गनमें तरुणी स्तनमण्डलसे हारको हटा रखती है, अवसर उपस्थित होनेपर अर्चितगुणवाले गुणीगण भी लघुत्व प्राप्त करते हैं। अर्थात् छोटे समझे जाते हैं ॥ २९ ॥

अण्णो को वि सुहाओ मम्महसिहिणो हला हआसस्स ।
विज्झाइ णीरसाणं हिअए सरसाणँ ज्झत्ति पज्जलइ ॥ ३० ॥

[अन्या कोऽपि त्वयाद्ये अनन्यचिन्तितो हता हताशस्य ।
विरहेऽपि मौनमाना इत्ये मरणाभो प्रविशति मन्मनसि ॥]

अरे हताश (दग्ध) सद्भाविका स्वभाव आभासत भरिसै चिन्तन है। जिस हृदयमें यह पुराना है किन्तु प्राण हृदयमें सुख बन रही है ॥ १० ॥

तह तस्स माणपरिवड्ढिअस्स चिरपणअबद्धमूलस्स ।
मामि पडन्तस्स सुओ सद्दो वि ण पेम्मरुक्खस्स ॥ ११ ॥

[तथा तस्य मानपरिवर्धितस्य चिरप्रणयबद्धमूलस्य ।
मातुलानि पतता श्रुतः शब्दोऽपि न प्रेमवृक्षस्य ॥]

हे मामी, जो प्रेमरूप वृक्ष मान-सम्मानसे बढ़ा हुआ था एवं जिसकी जड़ चिरकालीन प्रणय थी, उसके पतनके समय कोई आवाज ही नहीं सुनायी पड़ी ॥ ११ ॥

पाअपडिओ ण गणिओ पिअं भणन्तो वि अप्पिअं भणिओ ।
वच्चन्तो वि ण रुद्धो भण कस्स कए कओ माणो ॥ १२ ॥

[पादपतितो न गणितः प्रियं भणन्नपि अप्रियं भणितः
व्रजन्नपि न रुद्धो भण कस्य कृते कृतो मानः ॥]

नायकके पैरपर गिरनेपर भी तुमने उसे समझा नहीं, उसके द्वारा मीठी बातें कही जानेपर भी तुमने तीखी बातें सुनायीं, उसके चले जानेपर भी तुमने रोका नहीं। बताओ तो, किसलिए मान करती हो ? ॥ १२ ॥

पुसइ खणं पुसइ खणं पप्फोडइ तक्खणं भमावन्ती ।
मुहमारुअपणअई रिच्छं धूसरए बाहरत्तच्छि ॥ १३ ॥

[प्रोञ्छति क्षणं प्रस्फोटयति क्षणं प्रस्फोटयति तत्क्षणं भ्रामयन्ती ।
मुखमारुतेन ... क्षणं धूसरितं ... ॥]

... के कारण ... बालिका ... पुष्प यह एक क्षण पोंछ रही है, एकक्षण फोरती है एवं उसी क्षण ... कर रही है ॥ १३ ॥

वासरत्ते उण्णअपओहरे जोव्वणे व वोलीणे ।
पढमेक्ककासकुसुमं दीसइ पलिअं व धरणीए ॥ १४ ॥

[वर्षाकाले उन्नतपयोधरे यौवन इव व्यतिक्रान्ते ।
प्रथमैककाशकुसुमं दृश्यते पलितमिव धरण्या ॥]

उन्नतपयोधर (स्तन) युक्त यौवनकी नाईं उन्नतपयोधर (मेघ) विशिष्ट वर्षाकी रातके बीत जानेपर, धरणीके पके हुए बालकी भाँति एक काश-कुसुम पहले दिखायी पड़ा ॥ ३४ ॥

कत्थं गअं रइबिम्बं कत्थ पणट्ठाओ चन्दताराओ ।
गअणे वलाअपन्ति कालो होरं व कड्ढेइ ॥ ३५ ॥
[कुत्र गत रविबिम्ब कुत्र प्रणष्टाश्चन्द्रतारका ।
गगने वलाकापङ्क्ति कालो होरामिवाकर्षति ॥]

दिनमें सूर्यबिम्ब कहाँ खो गया? रात्रिमें चन्द्र और तारे कहाँ भाग गए? ज्योतिर्विदोंकी ग्रहगणनार्थ रेखाचिह्नकी भाँति वर्षाकालीन आकाशको वलाकापङ्क्ति अङ्कित कर रही है ॥ ३५ ॥

अविरलपडन्तणवजलधारारज्जुघडिअं पअत्तेण ।
अपहुत्तो उक्खेत्तुं रसइ व मेहो महिं उअह ॥ ३६ ॥
[अविरलपतन्नवजलधारारज्जुघटितां प्रयत्नेन ।
अप्रभवन्नुत्क्षेप्तुं रसतीव मेघो महीं पश्यत ॥]

देखो, अविरल स्खलित नवजलधारारूप रज्जुसे आबद्ध महीको ऊपर न खींच सकनेके कारण, मेघ मानो शब्द कर रहा है ॥ ३६ ॥

ओ हिअअ ओहिदिअह तइआ पडिवज्जिऊण दइअस्स ।
अत्थेक्काउल वीसम्भघाइ किं तइ समारद्धं ॥ ३७ ॥
[हे हृदय अवधिदिवस तदा प्रतिपद्य दयितस्य ।
अकस्मादाकुल विस्रम्भघातिन् किं त्वया समारब्धम् ॥]

अरे हृदय, उस समय प्रियके प्रवास अवधिको स्वीकार कर अकस्मात् आकुल हो विश्वासघातीकी भाँति तुमने क्या करना प्रारम्भ किया है? ॥ ३७ ॥

जो वि ण आणइ तस्स वि कहेइ भग्गाइँ तेण वलआइँ ।
अइउज्जुआ वराई अह व पिओ से हआसाए ॥ ३८ ॥
[योऽपि न जानाति तस्यापि कथयति भग्नानि तेन वलयानि ।
अतिऋजुका वराकी अथवा प्रियस्तस्या हताशाया ॥]

जो नहीं जानते, उनसे कहती है, "मेरा वलय उसके द्वारा तोड़ा गया

है । हो सकता है कि यह कोपवती रमणी ही [illegible] हो अथवा [illegible] है ॥ ४८ ॥

सामाइ गरुअजोव्वणविसेसभरिए कवोलमूलम्मि ।
पिज्जइ अहोमुहेण व कण्णवअंसेण लावण्णं ॥ ४९ ॥
[श्यामाया गुरुयौवनविशेषभृते कपोलमूले ।
पीयतेऽधोमुखेनेव कर्णावतंसेन लावण्यम् ॥]

श्यामा नायिकाके विशाल एवं विशेष यौवनसे [illegible] कपोलके [illegible] अधोमुख होकर कर्णावतंस उसके लावण्यका पान कर रहा है ॥ ४९ ॥

सेरग्गिमसअण्ही मालअपाइएण तस्स सुहअस्स ।
दूर पहुप्पन्ती तस्सेअ मउणं पत्ता ॥ ५० ॥
[सौभाग्यिमसकाङ्क्षी कोमलमहेन तस्य सुभगस्य ।
दूती प्रभवन्ती (पर्याप्ता वा) तस्यैव पुरातनं प्राप्ता ॥]

उस सुभगका नाम ही लेनेपर अपने सारे अङ्गोंके सौन्दर्य का दूतीके [illegible] साथ [illegible] करते-करते वह स्वयं ही उसके [illegible] उपस्थित हुई ॥ ५० ॥

जम्मन्तरे वि चलणं जीएण खु मअण तुज्झ अच्चिस्सं ।
जइ तं पि तेण बाणेण विज्झसे जेण हं विद्धा ॥ ५१ ॥
[जन्मान्तरेऽपि चरणौ जीवेन खलु मदन तवार्चयिष्यामि ।
यदि तमपि तेन बाणेन विध्यसि येनाहं विद्धा ॥]

हे कामदेव जिस बाणद्वारा तुम मुझे बिंध कर रहे हो, उसीसे इस यदि उसे भी बिंध करो तो जन्मान्तरमें भी मैं तुम्हारे चरणोंकी पूजा करूँगी ॥

विमलकलाअरिविरिमरोहमारविरअं एवं सिहण्डेण ।
विमसाविकअं पिअइ माअरअसिम्म महुअरेण ॥ ५२ ॥
[विकसत्[illegible] रसं कमलेन
पिबति [illegible] मधुकरेण ॥]

अपने दोनों पङ्खोंसे [illegible] मिथुनभावके [illegible] पूर्वक [illegible] कर पान कर रहा है ॥ ५२ ॥

कुरवाहइ रिवस पहिम्मि दूमिअइ माअरस्स मिलिअस्स ।
पीमेव अदिदिम्मअ दूमिअव्वाअस्स छिन्नन्तो ॥ ५३ ॥

[कुरुनाथ इव पथिको दूयते माधवस्य मिलितेन ।
भीमेन यथेच्छया दक्षिणवातेन स्पृश्यमान ॥]

माधवसे मिलकर यदृच्छाक्रमसे भीमसेनने दक्षिण चरणद्वारा स्पर्शकर दुर्योधनको जिस प्रकार दुःखित किया था, माधव (वसन्त) से मिलकर भयानक दक्षिणवायु भी यदृच्छाक्रमसे स्पर्शकर पथिकको उसी प्रकार दुःखित कर रही है ॥ ४३ ॥

जाव ण कोसविकासं पावइ ईसीस मालईकलिआ ।
मअरन्दपाणलोहिल्ल भमर तावच्चिअ मलेसि ॥ ४४ ॥

[यावन्न कोपविकास प्राप्नोतीपन्मालतीकलिका ।
मकरन्दपानलोभयुक्त भ्रमर तावदेव मर्दयसि ॥]

जबतक मालतीकलिका कोप कुछ बढ़ नहीं जाता, तबतक हे रसपानलोलुप भौंरे, तुम मर्दनमात्रमे ही सतोष प्राप्तकर रहे हो ॥ ४४ ॥

अकअण्णुअ तुज्झ कए पाउसराईसु जं मए खुण्णं ।
उप्पेक्खामि अलज्जिर अज्ज वि तं गामचिक्खिल्लं ॥ ४५ ॥

[अकृतज्ञ तव कृते प्रावृड्रात्रिपु यो मया क्षुण्णः ।
उत्पश्याम्यलज्जाशील अद्यापि त ग्रामपङ्कम् ॥]

अरे अकृतज्ञ, बरसातकी रातमें भी तेरे लिए मैंने जिस ग्रामपङ्कको खर्व किया है, अरे निर्लज्ज, उसी पङ्कको मैं आज भी देख रही हूँ ॥ ४५ ॥

रेहइ गलन्तकेसक्खलन्तकुण्डलललन्तहारलआ ।
अद्धुप्पइआ विज्जाहरि व्व पुरुसाइरी बाला ॥ ४६ ॥

[राजते गलत्केशस्खलत्कुण्डलललद्धारलता ।
अर्धोत्पतिता विद्याधरीव पुरुषायिता बाला ॥]

अर्द्धपतिता विद्याधरीकी भाँति इस बालाके पुरुषोचित रमणमें निरत होनेसे खुलते हुए केश, गिरते हुए कुण्डल एव झूलते हुए हारलता शोभित हो रहे हैं ॥ ४६ ॥

जइ भमसि भमसु एमेअ कण्ह सोहग्गगव्विरो गोट्ठे ।
महिलाणं दोसगुणे विआरक्खमो अज्ज विण होसि ॥ ४७ ॥

[यदि भ्रमसि भ्रम एवमेव कृष्ण सौभाग्यगर्वितो गोष्ठे ।
महिलानां दोषगुणौ विचारक्षमोऽद्यापि न भवसि ॥]

हे कृष्ण सीभाग्यगर्वसे गर्वित होकर यदि थोड़में प्रसन्न करना हो तो प्रसन्न करो (किन्तु दुवारा करनेपर भी) तुम यदि महिलाओंके दोषगुण देखनेमें समर्थ हो सको अर्थात् नहीं हो सकोगे ॥ ४७ ॥

संझासमए जलपूरिअंजलिं विहडिएक्कवामअरं।
गोरीअ कोसपाणुज्जअं व पमहाहिवं णमह ॥ ४८ ॥

[सन्ध्यासमये जलपूरिताञ्जलिं विघटितैकवामकरम्।
गौर्याः कोशपानोद्यतमिव प्रमथाधिपं नमत ॥]

सन्ध्याके समय गौरीको प्रसादित करनेके लिए जलपूरित अञ्जलि बाँधकर गौरीके चरणोंमें अञ्जलि देनेके लिए कोशपानमें उद्यत प्रमथाधिपति (शिव) को नमस्कार करो ॥ ४८ ॥

गामणिणो सव्वासु वि पिआसु अणुमरणगहिअवेसासु।
मम्मच्छेएसु वि वल्लहाइ उवरी वलइ दिट्ठी ॥ ४९ ॥

[ग्रामण्याः सर्वास्वपि प्रियास्वनुमरणगृहीतवेषासु।
मर्मच्छेदेष्वपि वल्लभाया उपरि वलति दृष्टिः ॥]

मृत्यु के समय ग्रामस्वामीकी सारी स्त्रियाँ अनुमरणवेषधारी होकर भी, उस मर्मच्छेदविधायक दशामें भी उसकी दृष्टि वल्लभा पत्नीपर पड़ती है ॥ ४९ ॥

मज्झिमसरक्खराणं वि अत्थि विसेसो पअम्पिअव्वाणं।
णेहमइआणं अण्णो अण्णो उवरोहमइआणं ॥ ५० ॥

[मध्यमस्वराक्षराणामप्यस्ति विशेषः प्रजल्पितव्यानाम्।
स्नेहमयानामन्योऽन्य उपरोधमयानाम् ॥]

हे सखी मध्यमस्वरोंके समान अक्षरका प्रयोग होनेपर भी वैशिष्ट्य व्यक्त होता है, यथा स्नेहमय वचनका वैशिष्ट्य एक प्रकारका होता है और अनुरोधार्थ व्यवहृत वचनका वैशिष्ट्य दूसरे प्रकारका होता है ॥ ५० ॥

हिअअक्खलिआ पसरन्ति जाइं अण्णाइं ताइं वअणाइं।
ओसरसु किं इमेहिं बाहिरहरमेत्तभणिएहिं ॥ ५१ ॥

[हृदयस्खलितानि प्रसरन्ति यान्यन्यानि तानि वचनानि।
अपसर किमेभिर्बहिरधरमात्रभणितैः ॥]

हृदयसे जो वचन निकलते हैं, वे अन्य प्रकारके होते हैं। पाससे हट जाओ। इन सब कपट वचनोंसे क्या प्रयोजन ? ॥ ५१ ॥

कहँ सा सोहग्गगुणं मए समं वहइ णिग्घिण तुमम्मि।
जीअ हरिज्जइ गोत्तं हरिऊण अ दिज्जए मज्झ ॥ ५२ ॥
[कथं सा सौभाग्यगुणं मया समं वहति निर्घृण त्वयि।
यस्या ह्रियते नाम हृत्वा च दीयते मह्यम् ॥]

अरे निर्दय, मेरी तुलनामें वह रमणी तुम्हारे सम्बन्धमें अधिक सौभाग्य गुण कैसे वहन करती है ? कारण, उसका नाम (गोत्र) तुम्हारे द्वारा चुराया जाकर मेरे प्रति प्रयुक्त किया जा रहा है ॥ ५२ ॥

सहि साहसु सब्भावेण पुच्छिमो किं असेसमहिलाणं।
वड्ढन्ति करठिआ व्विअ वलआ दइए पउट्ठम्मि ॥ ५३ ॥
[सखि कथय सद्भावेन पृच्छाम किमशेषमहिलानाम्।
वर्धन्ते करस्थिता एव वलया दयिते प्रोषिते ॥]

सखी, बोलो तो—सद्भावना सहित पूछती हूँ—क्या प्रियके प्रवास जानेपर सभी महिलाओंके हाथके वलय बढ़ जाते हैं अर्थात् ढीले पड़ जाते हैं ॥ ५३ ॥

भमइ पलित्तइ जूरइ उक्खिविउं से करं पसारेइ।
करिणो पङ्कखुत्तस्स णेहणिअलाइआ करिणी ॥ ५४ ॥
[भ्रमति परितः खिद्यते उत्क्षेप्तुं तस्य करं प्रसारयति।
करिणः पङ्कनिमग्नस्य स्नेहनिगडिता करिणी ॥]

पङ्कमें गिरी हुई हाथीकी स्नेहश्रृङ्खलासे जकड़ी हुई, हथिनी, हाथीके चारों ओर घूम रही है, खेद अनुभव कर रही है एवं उसे उठानेकेलिए अपना सूँड़ फैला रही है ॥ ५४ ॥

रइकेलिहिअणिअंसणकरकिसलअरुद्धणअणजुअलस्स।
रुद्दस्स तइअणअणं पव्वइपरिउम्बिअं जअइ ॥ ५५ ॥
[रतिकेलिहृतनिवसनकरकिसलयरुद्धनयनयुगलस्य।
रुद्रस्य तृतीयनयनं पार्वतीपरिचुम्बितं जयति ॥]

जिस रुद्रने रतिकेलिके समय पार्वतीका वस्त्रापहरण कर लिया था एवं जिसके नयनयुगल करकिसलय द्वारा मूँद दिये गए थे उसी रुद्रका पार्वती चुम्बित तृतीयनेत्र विजयी हो ॥ ५५ ॥

वाअइ पुरओ पासेसु मम्मइ [illegible] संठाइ ।
वणसारकरस्स तुह हत्थिपाअ दे पहरसु वराई ॥ ५६ ॥
[[illegible] पुरतः पार्श्वयोः [illegible] ।
[illegible] हस्तिपुत्र हे प्रहरस्व वराकीम् ॥]

हे हस्तिपुत्र तुम्हारे हाथमें [illegible] के कारण वह तुम्हारे [illegible] रही है तुम्हारे [illegible] रही है एवं तुम्हारे [illegible] रही है । तुम [illegible] इसपर प्रहार करो ॥ ५६ ॥

वारिज्जमाणसुरअं ममिअव्वं [illegible] ।
पेच्छइ कुमारिआओ हासुम्मिस्सेहिँ अच्छीहिँ ॥ ५७ ॥
[[illegible] ।
[illegible] कुमारिकाः हासोन्मिश्राभ्यामक्षिभ्याम् ॥]

कुमारिका [illegible] इसे [illegible] हुए [illegible] ([illegible]) को [illegible] देख रही है ॥ ५७ ॥

सविअं सविअं [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] रअणी ॥ ५८ ॥
[[illegible] ।
[illegible] रजनी ॥]

[illegible] ([illegible]) [illegible] रजनी [illegible] रही है ॥ ५८ ॥

रइविरमलज्जिआओ अप्पत्तणिअंसणाओं सहस त्ति ।
ढक्कंति पिअअमालिंगणेण जहणं कुलवहूओ ॥ ५९ ॥
[रतिविरामलज्जिता अप्राप्तनिवसनाः सहसेति ।
छादयन्ति प्रियतमालिङ्गनेन जघनं कुलवध्वः ॥]

रतके विरामके समय लज्जित कुलवधुएँ [illegible] प्रियतम को आलिङ्गन [illegible] देती है ॥ ५९ ॥

पाअडिअं सोहग्गं तम्बाए उअह गोट्ठमज्झम्मि ।
दुट्ठवसहस्स सिंगे अच्छिउडं कण्डुअन्तीए ॥ ६० ॥
[प्रकटितं सौभाग्यं ताम्रया पश्यत गोष्ठमध्ये ।
दुष्टवृषभस्य शृङ्गे अक्षिपुटं कण्डूयमानया ॥]

देखो, गोष्ठमें दुष्ट वृषभके सींगमें अपने पलकको रगड़कर गाय सौभाग्य प्रकट कर रही है ॥ ६० ॥

उअ संभमविक्खित्तं रमिअव्वअलेहलाएँ असईए ।
णवरङ्गअं कुडङ्गे धअं व दिण्णं अविणअस्स ॥ ६१ ॥
[पश्य सम्भ्रमविक्षिप्तं रन्तव्यकलापटया असत्या ।
नवरङ्गकं कुञ्जे ध्वजमिव दत्तमविनयस्य ॥]

रमणलम्पटा असतीद्वारा कुञ्जमें, अविनयके ध्वजपट रूपमें प्रदत्त सम्भ्रम-विक्षिप्त कौसुमवस्त्रको देखो ॥ ६१ ॥

हत्थप्फंसेण जरग्गवी वि पण्हअइ दोहअगुणेण ।
अवलोअणपण्हुइरिं पुत्तअ पुण्णेहिँ पाविहिसि ॥ ६२ ॥
[हस्तस्पर्शेन जरद्गव्यपि प्रस्नौति दोहदगुणेन ।
अवलोकनप्रस्नवनशीलां पुत्रक पुण्यैः प्राप्स्यसि ॥]

अरे बेटे, दोहदके (दूध देनेवालेके) गुणवश हस्तस्पर्शमात्रसे अकर्मण्य वृद्धा भी दुग्धपात करती है, किन्तु देखने मात्रसे प्रस्रवणशीला (अनुरक्ता रमणी) को तुम अपने सुकृतोंके बलसे ही पा सकोगे ॥ ६२ ॥

मसिणं चङ्कम्मन्ती पए पए कुणइ कीस मुहभङ्गं ।
णूणं से मेहलिआ जहणगअं छिवइ णहवन्ति ॥ ६३ ॥
[मसृणं चङ्क्रम्यमाणा पदे पदे करोति किमिति मुखभङ्गम् ।
नूनं तस्या मेखलिका जघनगतां स्पृशति नखपङ्क्तिम् ॥]

समतल स्थानपर चलते चलते यह रमणी मुँह क्यों बना रही है ? निश्चय ही उसकी मेखला (करधनी) जघनगत नखक्षतपङ्क्तिको छू (रगड़) रही है (उसी की व्यथा से मुँह बना रही है) ॥ ६३ ॥

संवाहणसुहरसतोसिएण देन्तेण तुह करे लक्खं ।
चलणेण विक्कमाइच्चचरिअँ अणुसिक्खिअं तिस्सा ॥ ६४ ॥
[संवाहनसुखरसतोषितेन ददता तव करे लाक्षाम् ।
चरणेन विक्रमादित्यचरितमनुशिक्षितं तस्याः ॥]

उस युवतीके चरणको तुम्हारे संवाहनकार्यद्वारा सुखरस पानेसे तुष्ट होकर तुम्हारे हाथमें 'लाक्षा' चिह्न प्रदान करनेसे मालूम पड़ता है कि इसने विक्रमादित्यके चरितका अनुसरण करना सीखा है ॥ ६४ ॥

पामपडणायँ मुद्धे रहसवसामोडिपुसिअमयायं।
दंसणमेत्तपसण्णे चुक्कासि सुहाणँ बहुआणं ॥ ५५ ॥
[पादपतनानां मुग्धे रभसबलात्कारचुम्बितव्यानाम् ।
दर्शनमात्रप्रसन्ने च्युतासि सुखानां बहुकानाम् ॥]

हे मुग्धे, तुम प्रियके दर्शनमात्रसे प्रसन्न हो जाती हो। किन्तु, पादपतन एवं बलात्कारके साथ चुम्बनादि अधिक बहु प्रकारके सुखसे आप वा वञ्चित हो जाती हो ॥ ५५ ॥

ऐ सुअणु पसिअ एण्हि पुणो वि सुलहाइँ रूसिअव्वाइँ।
एसा मअच्छि मअलंछणुज्जला गलइ छणराई ॥ ५६ ॥
[हे सुतनु प्रसीदेदानीं पुनरपि सुलभानि रोषितव्यानि ।
एषा मृगाक्षि मृगलाञ्छनोज्ज्वला गलति क्षणरात्रिः ॥]

हे सुतनु, अब प्रसन्न होओ। फिर दूसरे समय रोष करना फिर सुलभ होगा। हे मृगलोचने चन्द्रोज्ज्वला उत्सव-रात्रि बीतती जा रही है ॥ ५६ ॥

आअम्बाइँ [illegible] दो च्चिअ आलम्बिअ [illegible]।
गोरीअ हिअअदइओ [illegible] [illegible] ॥ ५७ ॥
[आताम्राणि [illegible] द्वावेव [illegible] [illegible] ।
गौरीहृदयदयितोऽप्यसौ [illegible] ॥]

[illegible] ([illegible] अर्थात् [illegible]) [illegible] हो ही [illegible] सकते हैं गौरीके हृदयवल्लभ वा [illegible] [illegible] ॥ ५७ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] मा पावसि [illegible] ।
[illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ५८ ॥
[[illegible] [illegible] मा प्राप्नुहि [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥]

हे युवक, [illegible] [illegible] [illegible] तुम [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं दिया है ॥ ५८ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ५९ ॥

[ग्रामणिगृहे श्वश्रु एकैव पाटला इह ग्रामे ।
बहुपाटलं च शीर्षं देवरस्य न सुन्दरमेतत् ॥]

हे श्वश्रु, इस ग्राममें केवल ग्रामणीके यहाँ एक पाटलावृक्ष है। देवरका मस्तक तो अनेक पाटलोंद्वारा युक्त दिखायी देता है, यह तो अच्छा काम नहीं है ॥ ६९ ॥

अण्णाणँ वि होन्ति मुहे पम्हलधवलाइँ दीहकसणाइं ।
णअणाइँ सुन्दरीणं तह वि हु दट्ठुं ण जाणन्ति ॥ ७० ॥
[अन्यासामपि भवन्ति मुखे पक्ष्मलधवलानि दीर्घकृष्णानि ।
नयनानि सुन्दरीणां तथापि खलु द्रष्टुं न जानन्ति ॥]

अन्यान्य अनेक सुन्दरियोंके मुखमें पक्ष्मल (पद्म जैसे) धवल एवं दीर्घकृष्ण नयनयुगल वर्तमान रहते हैं, तथापि वे सब (भ्रूविलासादि के साथ) देखना नहीं जानते ॥ ७० ॥

हंसेहिँ व तुह रणजलअसमअभअचलिअविहलवक्खेहिं ।
परिसेसिअपोम्मासेहिँ माणसं गम्मइ रिऊहिं ॥ ७१ ॥
[हंसैरिव तव रणजलदसमयभयचलितविह्वलपक्षैः ।
परिशेषितपद्माशैर्मानसं गम्यते रिपुभिः ॥]

हे राजन्, हंसोंकी भाँति तुम्हारे शत्रु (सेवाद्वारा) तुम्हारे मनका अनुगमन अर्थात् छन्दानुवर्त्तन करते हैं। कारण, उनके स्वपक्षीयगण तुम्हारे रणरूप जलद-समयको उपस्थित देखकर विह्वलचित्तसे भाग रहे हैं एवं उनकी श्रीप्राप्ति की आशा शेष हो रही है, हंसगण भी जलद समय उपस्थित होनेपर विह्वल होकर भागना आरम्भ करते हैं एवं पद्मप्राप्तिकी आशा शेष है सोचकर मानसरोवरकी ओर दौड़ पड़ते हैं ॥ ७१ ॥

दुग्गअघरम्मि घरिणी रक्खन्ती आउलत्तणं पइणो ।
पुच्छिअदोहलसड्ढा पुणो वि उअअं विअ कहेइ ॥ ७२ ॥
[दुर्गतगृहे गृहिणी रक्षन्ती आकुलत्वं पत्युः ।
पृष्टदोहदश्रद्धा पुनरप्युदकमेव कथयति ॥]

किस दोहद (गर्भवतीकी नाना प्रकारकी साध) की तुम्हें इच्छा है, पतिसे ऐसा पूछी जानेपर भी दुर्गत घरकी पत्नी पतिकी व्याकुलता दूर करनेके लिए बारबार पानी ही माँग रही है ॥ ७२ ॥

आअम्बलोअणाणं ओल्लंसुअपाअडोरुजहणाणं।
अवरण्हमज्जिरीणं कए ण कामो वहइ चावं॥ ७१॥
[आताम्रलोचनानामार्द्रांशुकप्रकटोरुजघनानाम्।
अपराह्णमज्जनशीलानां कृते न कामो वहति चापम्॥]

[illegible] जलमें नहानेके कारण जिनके नेत्र [illegible] लाल हो गये हैं, जिनके [illegible] भीगे वस्त्रमें [illegible] हैं—अपराह्ण समय जलमें मज्जन (स्नान) करनेवाली उन उन रमणियोंके लिए कामदेव धनुष नहीं ढोते॥ ७२॥

के उव्वरिआ के इह ण खण्डिआ के ण लुत्तगुणविहवा।
णच्चन्ति वेसिविलओ णअणारेहा जह वहन्ति॥ ७३॥
[के उद्धृता के इह न खण्डिता के न लुप्तगुणविभवाः।
नयन्ति वेश्या नयनरेखा इव वहन्ति॥]

किसके पुरुष [illegible] नहीं हुए हैं, किसके पुरुष खण्डित (अपमानित) नहीं हुए हैं और किसके पुरुष विगुणविभव नहीं हो चुके हैं, वेश्याएँ इस विषय की [illegible] रेखाके समान [illegible] धारण करती हैं॥ ७३॥

विरहेण मन्दरेण व हिअअं दुद्धोअहिं व महिऊण।
उम्मूलिआइँ अव्वो अम्हं रअणाइँ व सुहाइं॥ ७४॥
[विरहेण मन्दरेणेव हृदयं दुग्धोदधिमिव मथित्वा।
उन्मूलितानि आश्चर्यमस्माकं रत्नानीव सुखानि॥]

मन्दर पर्वत जिस प्रकार क्षीरसागरको मथकर रत्नोंको निकालता है, अहो, तुम्हारा विरह भी इसी प्रकार हृदयको मथकर हमारे सारे सुखोंको उखाड़ कर ले गया है॥ ७५॥

उप्पहजाआए व सुहा [illegible] वि आसम्मे विअम्भेइ।
पत्ते महुमासे मम पिअ पिअ कहँ णु आअम्बं॥ ७६॥
[[illegible] न शुभा [illegible] विजृम्भते।
प्राप्ते मधुमासे मम प्रिये प्रिय कथं नु [illegible]॥]

यदि [illegible] रसिके तुम नहीं होता, मधुरसिके भी (कहीं [illegible]) [illegible] करता है। मैं तुम [illegible] हूँ [illegible] पति बिना आचरण किस प्रकार करूँगी?॥ ७६॥

बहुविहविलाससरसिए सुरए महिलाणँ को उवज्झाओ।
सिक्खइ असिक्खिआइँ वि सव्वो णेहाणुबन्धेण॥ ७७॥

[बहुविधविलासरसिके सुरते महिलाना क उपाध्यायः ।
शिक्षयते अशिक्षितान्यपि सर्वं स्नेहानुबन्धेन ॥]

बहुविध विलासरसयुक्त सुरतके सम्बन्धमें महिलाओंका (अन्य) शिक्षक कौन है ? स्नेहानुबन्धन ही सबको अशिक्षित वस्तुकी शिक्षा दे देता है ॥७७॥

वण्णवसिए विअत्थसि सच्चं विअ सो तुए ण संभविओ ।
ण हु होन्ति तम्मि दिट्ठे सुत्थावत्थाइँ अङ्गाइं ॥ ७८ ॥
[वर्णवशिते विकत्थसे सत्यमेव स त्वया न सम्भावित ।
न खलु भवन्ति तस्मिन्दृष्टे स्वस्थावस्थान्यङ्गानि ॥]

अरी नायक गुण वर्णनद्वारा वशीकृत हृदये, तुम व्यर्थ की आत्मश्लाघा प्रकट करती हो । किन्तु वस्तुत तुमने उसे दृष्टिद्वारा सम्भावित या अनुगृहीत नहीं किया है । कारण, उसके एक बार दिखायी पड़ आने पर अङ्ग स्वस्थ नहीं रह सकते ॥ ७८ ॥

आसण्णविआहदिणे अहिणवबहुसङ्गमम्मुअमणस्स ।
पढमघरिणीअ सुरअं वरस्स हिअए ण संठाइ ॥ ७९ ॥
[आसन्नविवाहदिने अभिनववधूसङ्गमोत्सुकमनस ।
प्रथमगृहिण्याः सुरत वरस्य हृदये न सतिष्ठते ॥]

आसन्न विवाहके दिन नववधूके सङ्गम प्राप्तिकेलिए उत्सुकचित्त वरके हृदयमें प्रथम गृहिणीकी सुरतकथा स्थान प्राप्त नहीं करती ॥ ७९ ॥

जइ लोकणिन्दिअं जइ अमङ्गलं जइ विमुक्कमज्जाअं ।
पुप्फवइदंसणं तह वि देइ हिअअस्स णिव्वाणं ॥ ८० ॥
[यदि लोकनिन्दित यदमङ्गल यदि विमुक्तमर्यादम् ।
पुष्पवतीदर्शन तथापि ददाति हृदयस्य निर्वाणम् ॥]

पुष्पवती रमणीका दर्शन यदि लोकनिन्दित भी हो, यदि अमङ्गलजनक भी हो एव यदि मर्यादोल्लङ्घनदोषसे दूषित भी हो, तब भी यह हृदयमें सुख उत्पन्न करता है ॥ ८० ॥

जइ ण छिवसि पुप्फवइं पुरओ ता कीस वारिओ ठासि ।
छित्तोसि चुलचुलन्तेहिँ धाविऊण अॅम्ह हत्थेहिं ॥ ८१ ॥
[यदि न स्पृशसि पुष्पवतीं पुरतस्तत्किमिति वारितस्तिष्ठसि ।
स्पृष्टोऽसि चुलचुलायमानैर्धावित्वास्माकं हस्तैः ॥]

यदि तुम्हारीको छूनेमें नहीं हो दर्शन होनेपर भी उसके नहीं बने हो ? मैं कुसुमकुसुमान (चतुर) उसको जानकर तुम्हें छू लिया ॥ १ ॥

उज्झाअणअणम्पाउणिउअम्मदी माहप्पगव्वविलसन्ता ।
णअर तम्मन्तुर्त्ती मा सुहअ मईमि‍ ति करई ॥ ८२ ॥

[[illegible] ।
[illegible] ॥]

हे सुभग, मेरी इस [illegible] एवं [illegible] [illegible] कारण [illegible] हुआ है । [illegible] पर [illegible] होकर [illegible] भी [illegible] हो रही है ॥ १ ॥

ण वि तह अइ गरुअम्मि वि तम्मइ हिअअं मएण गम्मन्तं ।
जह विवरीअणिउणं पिअम्मि सुअणा भणन्ती ॥ ८३ ॥

[नापि तथातिगुरुकेऽपि ताम्यति हृदयं मदेन [illegible] ।
यथा विपरीतनिपुणं प्रिये सुतनु भणन्ती ॥]

[illegible] सुतनु प्रियतमके साथ विपरीत [illegible] नहीं कर सकेगी । [illegible] हो [illegible] दुखी हो रही है, उतनी दुखी तो [illegible] जाने भी नहीं हो रही है ॥ १ ॥

अपरिसमत्तपसाहणं अवहरिअमगुरुअं वहन्तीए ।
गुरु मणिमअमिम्मअ हीर वणिरअ जिरं वयणं ॥ ८४ ॥

[अपरिसमाप्त[illegible]गुरुकं [illegible]
[illegible] चिरं [illegible] ॥]

तुम्हें देख न सकनेके कारण यह बेचारी [illegible] किया एवं गुरुजनोंके [illegible] कर हुई [illegible] रही है ॥ ८४ ॥

हिअअं हिअए णिहिअं चित्तालिहिअ व्व तुह मुहे दिट्ठी ।
आलिङ्गणरहिआइँ णवरं खिज्जन्ति अङ्गाइं ॥ ८५ ॥

[हृदयं हृदये निहितं चित्रालिखितेव त्वन्मुखे दृष्टिः ।
आलिङ्गनरहितानि केवलं क्षीयन्तेऽङ्गानि ॥]

उसने तुममें हृदयको [illegible] हृदय [illegible] रखती है । तुम्हारे मुखपर उसकी दृष्टि चित्रलिखितकी भाँति [illegible] है—केवल आलिङ्गनरहित होनेके कारण उसके अङ्ग क्षीण होते जा रहे हैं ॥ ८५ ॥

अहमं विओअतणुई दुसहो विरहाणलो चलं जीअ ।
अप्पाहिज्जउ किं सहि जाणसि तं चेव जं जुत्तं ॥ ८६ ॥
[अहं वियोगतन्वी दुःसहो विरहानलश्चल जीवम् ।
अभिधीयतां किं सखि जानासि त्वमेव यद्युक्तम् ॥]

मैं प्रियके विरहमें कृश हुई हूँ, विरहाग्नि दुःसह प्रतीत हो रही है, जीवन भी चञ्चल अर्थात् गमनोन्मुख हो गया है। अरी सखी, इस समय जो उपयुक्त हो, उसीका उपदेश दे ॥ ८६ ॥

तुह विरहुज्जागरओ सिविणे वि ण देइ दंसणसुहाइं ।
वाहेण जहालोअणविणोअणं से हअं तं पि ॥ ८७ ॥
[तव विरहोजागरक स्वप्नेऽपि न ददाति दर्शनसुखानि ।
बाष्पेण यदालोकनविनोदन तस्या हत तदपि ॥]

तुम्हारा विरहजनित जागरण स्वप्नमें भी तुम्हारे दर्शनसे उत्पन्न सुख नहीं दे रहा है। जो देखनेमें थोड़ा-बहुत अच्छा भी लगता है वह भी तुम्हारे आँसुओंसे आच्छन्न होनेके कारण नष्ट प्रतीत होता है ॥ ८७ ॥

अण्णावराहकुविओ जहतह कालेण गम्मइ पसाअं ।
वेसत्तणावराहे कुविअं कहँ तं पसाइस्सं ॥ ८८ ॥
[अन्यापराधकुपितो यथातथा कालेन गच्छति प्रसादम् ।
द्वेष्यत्वापराधे कुपित कथ त प्रसादयिष्यामि ॥]

मेरा यदि अन्य किसी प्रकारके अपराधसे वह कुपित होते तो भिन्न किसी प्रकार समय पाकर उसे प्रसन्न कर लिया जाता। किन्तु मेरे प्रति द्वेष्य भावरूप अपराध होनेके कारण, उसे किस प्रकार प्रसन्न करूँगी ॥ ८८ ॥

दीससि पिआणि जम्पसि सब्भावो सुहअ एत्तिअ च्चेअ ।
फालेइऊण हिअअं साहउ को दावए कस्स ॥ ८९ ॥
[दृश्यसे प्रियाणि जल्पसि सद्भावः सुभग एतावानेव ।
पाटयित्वा हृदय कथय को दर्शयति कस्य ॥]

हे सुभग, तुम्हारा इतना सद्भाव है कि तुम मुझे दर्शन देते हो एव मुझसे प्रिय बातें करते हो, किन्तु बताओ तो, कौन किसे हृदय चीरकर दिखावे ?

उअअ लहिउण उत्ताणिआणणा होन्ति के वि सविसेसं ।
रित्ता णमन्ति सुइरं रहट्टघडिअ व्व कापुरिसा ॥ ९० ॥

[[illegible] ।
[illegible] पुर्नि [illegible] ([illegible]) [illegible] ॥]

कोई-कोई [illegible] ([illegible]) [illegible] है एवं [illegible]
[illegible] रहते हैं ॥ ९ ॥

मग्गसिरसमुहम्मि [illegible] ।
[illegible] पम्हुट्ठ ॥ ९१ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] और [illegible] है ।
[illegible] ([illegible]) के [illegible]
नहीं हो रहा है ॥ ९१ ॥

[illegible] वि [illegible] ।
[illegible] समुग्गिम्मा ॥ ९ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible]
हो [illegible] है ॥

[illegible] वि [illegible] ।
[illegible] वि [illegible] ॥ ९३ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible]
[illegible] है । ऐसा [illegible]
[illegible] है ९३ ॥

[illegible]
[illegible] ॥ ९४ ॥
[[illegible]
[illegible]]

ग्रीष्मकी दुपहरीमें जङ्गलमें झिल्लीकीट समूह अत्यन्त तीव्र स्वरमें शोर कर रहे हैं। दु सह सूर्यकिरणोंके स्पर्शसे सन्तप्त हो वृक्षसमूह रोरहे हैं ॥ ९४ ॥

पढमणिलीणमहुरमहुलोहल्लालिउलवद्धझंकारं।
अहिमअरकिरणणिउरम्बचुम्बिअं दलइ कमलवणं ॥ ९५ ॥
[प्रथमनिलीनमधुरमधुलुब्धालिकुलबद्धझंकारम्।
अहिमकरकिरणनिकुरम्बचुम्बितं दलति कमलवनम् ॥]

पहले आये हुए मधुरमधुलोलुप मधुकरकुलके गुञ्जनसे मुखरित कमलवन उष्णकिरणसूर्यकी रश्मियोंद्वारा चुम्बित वा स्पृष्ट होकर प्रस्फुटित हो रहा है ॥ ९५ ॥

गोत्तक्खलणं सोऊण पिअअमे अज्ज तीअ खणदिअहे।
वज्झमहिसस्स माल व्व मण्डणं उअह पडिहाइ ॥ ९६ ॥
[गोत्रस्खलनं श्रुत्वा प्रियतमे अद्य तस्या क्षणदिवसे।
वध्यमहिषस्य मालेव मण्डनं पश्यत प्रतिभाति ॥]

देखो, आज इस उत्सवके दिन प्रियतमके मुँहसे गोत्रस्खलन सुननेके कारण, इस महिलाकी शोभा मानो वध्यमहिषके गलेमें डाली हुई मालाकी भाँति प्रतिभात हो रही है ॥ ९६ ॥

महमहइ मलअवाओ अत्ता वारेइ मं घराणेन्तीं।
अङ्कोल्लपरिमलेण वि जो म्मु मओ सो मओ व्वेअ ॥ ९७ ॥
[महमहायते मलयवात श्वश्रूर्वारयति मां गृहान्निर्यान्तीम्।
अङ्कोटपरिमलेनापि य खलु मृत स मृत एव ॥]

मलयपवन उत्कट सौरभ वहन कर रहा है, इसी कारण सास मुझे घरसे निकलनेको मना कर रही है। किन्तु गृहवाटिकास्थित अङ्कोटवृक्षके परिमलसे जिसे मारा जाना है, वह मारी जायेगी ॥ ९७ ॥

मुहपेच्छओ पई से सा वि हु सविसेसदंसणुम्मइआ।
दोवि कअत्था पुहइं अमहिलपुरिसं व मण्णन्ति ॥ ९८ ॥
[मुखप्रेक्षक पतिस्तस्या सापि खलु सविशेषदर्शनोन्मत्ता।
द्वावपि कृतार्थौ पृथिवीममहिलापुरुषामिव मन्येते ॥]

उसका पति सदैव ही उसके मुखदेखनेका दर्शनाकांक्षी है। वह भी पतिका मुख देखनेकेलिए विशेषतः उन्मत्त रहती है। इस प्रकार दोनों ही परस्पर

[illegible] होनेके कारण सोचते हैं कि [illegible] कोई दूसरा पुरुष या कोई दूसरी भी नहीं है ॥ ९८ ॥

[illegible] ॥ ९९ ॥

[[illegible] ।

[illegible] ॥]

[illegible] ॥ ९९ ॥

आउच्छणविच्छाअं जाआए मुहं णिअच्छमाणेण ।
पहिएण सोअणिअलाविएण गन्तुं चिअ ण इट्ठं ॥ १०० ॥
[आप्रच्छनविच्छायं जायाया मुखं निरीक्षमाणेन ।
पथिकेन शोकनिगडितेन गन्तुमेव नेष्टम् ॥]

बिदाईके समय जायाका कुम्हला मुख देखकर शोकसे निगडित होकर पथिककी जानेकी इच्छा ही नहीं थी ॥ १०० ॥

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मविए ।
सत्तसअम्मि समत्तं पढमं गाहासअं एअं ॥ १०१ ॥
[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।
सप्तशतके समाप्तं प्रथमं गाथाशतकमेतत् ॥]

रसिकोंके हृदयको प्रिय, कविवत्सल प्रमुख सुकवियोंसे निर्मित सप्तशतीमें यह प्रथम गाथाशतक समाप्त हुआ ॥ १०१ ॥

षष्ठशतक

सूईवेहे मुसलं विच्छुहमाणेण दड्ढलोएण ।
एक्कग्गामे वि पिओ समअं अच्छीहि वि ण दिट्ठो ॥ १ ॥

[सूचीवेधे मुसलं निक्षिपता दग्धलोकेन ।
एकग्रामेऽपि प्रियः समाभ्यामक्षिभ्यामपि न दृष्टः ॥]

मुग्ध व्यक्ति सूचीवेधके सूक्ष्मस्थानपर मूसलनिक्षेप करते हैं । इस कारण, एक ही गाँवमें वर्तमान प्रियको मैं समान भावसे आँखभर देख भी नहीं पाती ॥ १ ॥

अज्जं पि ताव एक्कं मा मं वारेहि पिअसहि रुअन्ति ।
कल्लिं उण तम्मि गए जइ ण मुआ ता ण रोदिस्सं ॥ २ ॥

[अद्यापि तावदेक मा मां वारय प्रियसखि रुदतीम् ।
कल्ये पुनस्तस्मिन्गते यदि न मृता तदा न रोदिष्यामि ॥]

हे प्रिय सखि, केवल आज एक दिनकेलिए तुम हमें रोनेसे मना मत करना । किन्तु, कल प्रियतमके चले जाने पर यदि प्राणान्त न हो जाय तो फिर नहीं रोऊँगी ॥ २ ॥

एहि त्ति वाहरन्तम्मि पिअअमे उअह ओणअमुहीए ।
विउणावेढिअजहणत्थलाइ लज्जोणअं हसिअं ॥ ३ ॥

[एहीति व्याहरति प्रियतमे पश्यतावनतमुख्या ।
द्विगुणावेष्टितजघनस्थलया लज्जावनत हसितम् ॥]

तुमलोग देखो, 'आओ' कहकर प्रियतम द्वारा बुला लीजानेपर अवनतमुखी महिला होकर जघोंका दोहरे वस्त्राञ्चल द्वारा ढँककर लज्जावनत हँसी ॥ ३ ॥

मारेसि कं ण मुद्धे इमेण पेरन्तरत्तविसमेण ।
भुलआचावविणिग्गअतिक्खअरद्धच्छिभल्लेण ॥ ४ ॥

[मारयसि कं न मुग्धे अनेन पर्यन्तरक्तविषमेण ।
भ्रूलताचापविनिर्गततीक्ष्णतरार्धाक्षिभल्लेन ॥]

हे मुग्धे, अपने रक्तिम, तीक्ष्ण एवं विषम भ्रूलताचापसे विनिर्गत तथा

दीपस्तार सर्वांशिकीभित हुए नक्षत्रके समीपता तुम लिये] यहाँ आ जाती ॥ ४ ॥

तुह दंसणे सअण्हा सद्दं सोऊण णिग्गआ जाइं।
ताइं पअाइँ बोलीणिआ आव ॥ ५ ॥
[तव दर्शने सतृष्णा शब्दं श्रुत्वा निर्गता यानि ।
तानि पदानि निर्गमितानि बोलव्या याता ॥]

तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषिणी होकर वह आवाज सुनकर जितने पग निकली थी तुम्हारे चले जानेपर उतनेही पग उदास होकर वे लौट गयी थी ॥ ५ ॥

ईसामच्छररहिएहिँ णिव्विआरेहिँ मामि अच्छीहिँ।
एह्णिं जणो जणम्मि व णिरिच्छए कहँ ण झिज्जामो ॥ ६ ॥
[ईर्ष्यामत्सररहिताभ्यां निर्विकाराभ्यां मातुलान्यक्षिभ्याम् ।
इदानीं जनो जनमिव निरीक्षते कथं न क्षीयामहे ॥]

मामी अब उसकी ईर्ष्याकी और मत्सरसे रहित जो मेरे प्रति ईर्ष्या एवं मत्सर भावसे शून्य तथा निर्विकार नयनोंसे देख रहा है। मैं क्षीण क्यों नहीं होऊँगी ? ॥ ६ ॥

वाउव्वेल्लिअसिचअविहाविओरुत्थदन्तमग्गेण।
बहुमाआ तोसिज्जइ णिहाणकलसस्स व मुहेण ॥ ७ ॥
[वातोद्वेल्लितसिचयविभावितोरुदन्तमार्गेण ।
वधूमाता तोष्यते निधानकलशस्येव मुखेन ॥]

भूमि खोदते समय खजाना प्राप्त हुए दिखायी पड़नेपर जैसी प्रसन्नता होती है वैसी ही प्रसन्नता बहूकी जाँघोंके दन्तक्षतको हवासे वस्त्र उड़ जानेपर उसकी माता देखकर हुई ॥ ७ ॥

हिअअम्मि वससि ण करेसि मण्णुअं तह वि णेहभरिएहिं।
सङ्किज्जसि जुअइसहावकाअरत्तणत्तरेहिं अम्हेहिं ॥ ८ ॥
[हृदये वससि न करोषि मन्युं तथापि स्नेहभृताभिः ।
शङ्क्यसे युवतिस्वभावकातरत्वप्राप्ताभिरस्माभिः ॥]

तुम मेरे हृदय में वास कर रहे हो एवं मैं प्रति क्रोध नहीं प्रकट करते प्रत्युत मैं तुम पर नहीं कहते। फिर भी स्नेहपूर्ण एवं युवतीस्वभावसे कातर होनेके कारण मुझे आशङ्का हो रही है ॥ ८ ॥

अण्णं पि किं पि पाविहिसि मूढ मा तम्म दुक्खमेत्तेण।
हिअअ पराहीणजणं मग्गॅन्त तुह केत्तिअं एअं॥ ९॥

[अन्यदपि किमपि प्राप्स्यसि मूढ मा ताम्य दुःखमात्रेण।
हृदय पराधीनजन मृगयमाण तव कियन्मात्रमिदम्॥]

अरे मूढ हृदय, केवल विरहदुःखके कारण कष्टका अनुभव मत करना, अन्य कुछ भी अर्थात् मृत्यु भी पाओगे। पराधीन व्यक्तिकी प्रार्थनाके समान तुम्हारा यह विरहदुःख कितना है अर्थात् अत्यल्प है॥ ९॥

वेसोसि जीअ पंसुल अहिअअरं सा हु वल्लभा तुज्झ।
इअ जाणिऊण वि मए ण ईसिअं दड्ढपेम्मस्स॥ १०॥

[द्वेष्योऽसि यस्याः पांसुल अधिकतर सा खलु वल्लभा तव।
इति ज्ञात्वापि मया न ईर्ष्यित दग्धप्रेम्ण॥]

अरे पापिष्ठ, तुम जिस कामिनी द्वारा उपेक्षित या विरागभाजन हो, उसी को अधिक प्रेम करते हो, यह जानकर भी मैं दग्धप्रेमके प्रति या दग्धप्रेमके वश ईर्ष्यालु नहीं हुई॥ १०॥

सा आम सुहअ गुणरूअसोहिरी आम णिग्गुणा अ अहं।
भण तीअ जो ण सरिसो किं सो सव्वो जणो मरउ॥ ११॥

[सा सत्य सुभग गुणरूपशोभनशीला सत्य निर्गुणा चाहम्।
भण तस्या यो न सदृश किं स सर्वो जनो म्रियताम्॥]

हे सुभग, वास्तवमें तुम्हारी वह प्रेयसी रूपगुणशालिनी है, एवं मैं गुण-विहीना हूँ। बताना तो, जितने व्यक्ति उसके सदृश नहीं हैं, वे क्या मर जायँ॥ ११॥

सन्तमसन्तं दुक्खं सुहं च जाओ घरस्स जाणन्ति।
ता पुत्तअ महिलाओ सेसाओ जरा मनुस्साणं॥ १२॥

[सदसद्दुःख सुख च या गृहस्य जानन्ति।
ताः पुत्रक महिला शेषा जरा मनुष्याणाम्॥]

हे पुत्रक, जो वधुएँ घरके सभीके सदसत् सुख दुःख सभीको विचारकर चलना जानती हैं, केवल वे ही महिला पद-वाच्य हैं, अन्यान्य रमणियाँ केवल मानवीय जराके समान हैं अर्थात् कुल-कलङ्किनी हैं॥ १२॥

हसिएहिँ उवालम्भा अच्चुवचारेहिँ रूसिअव्वाइं।
अंसूहिँ भण्डणाइं एसो मग्गो सुमहिलाणं॥ १३॥

[हसितैर्हासकृतैः मधुकरो कैरविण्यामपि ।
मधुमिव कमला इव एवं सुमतिकमलम् ॥]

हास्य द्वारा निरस्तम् जलाधार द्वारा कैरव मधुकर एवं मधुकरका कमलका पा दूर करता अपनी मल्लिकाओंकी कली आप मकर सर्वोकी होती है ॥ ६६ ॥

पअवो मा दिअउ ओप्फिअस्स त्ति जाम चारुत्त ।
संमुहासमीहिए को हम वसे ँ वि दिट्ठिं प पावइ ॥ ६७ ॥
[मध्याह्नो मा दीयतां कोपकलितस्य इति नाम कृता ।
संमुखागतैरपि च दुर्गतोऽपि दृष्टिं न प्राप्नोति ॥]

कोपकलित मार्ग समागत कोपसमाव (कोपभक्ति) नहीं किया गया है। किन्तु किसी व्यक्ति के सम्मुख अथवा कोपित होनेपर भी क्या सकल सामने आनेपर उसपर दृष्टि न डाली जाय ? ६७ ॥

साहीणपिअअमो दुग्गओ वि मण्णइ कअत्थमप्पाणं ।
पिअरहिओ उण पुहविं वि पाविऊण दुग्गओ च्चेअ ॥ ६८ ॥
[स्वाधीनप्रियतमो दुर्गतोऽपि मन्यते कृतार्थमात्मानम् ।
प्रियरहितः पुनः पृथिवीमपि प्राप्य दुर्गत एव ॥]

स्वयं दुर्गत होनेपर भी जिनकी प्रियतमा स्वाधीना हैं वे अपनेको कृतार्थ समझते हैं। किन्तु जो व्यक्ति प्रियारहित हैं वे पृथिवी प्राप्त होनेपर भी दुर्गत ही रह जाते हैं ॥ ६८ ॥

किं रुअसि किं अ सोअसि किं कुप्पसि सुअणु एक्कमेक्कस्स ।
पेम्मं विसं व विसमं साहसु को रुन्धिउं तरइ ॥ ६९ ॥
[किं रोदिषि किं च शोचसि किं कुप्यसि सुतनु एकैकस्मै ।
प्रेम विषमिव विषमं कथय को रोद्धुं शक्नोति ॥]

अरी सुतनु, रोती क्यों हो शोक किस लिये करती हो प्रत्येक व्यक्ति पर क्रोध क्यों प्रकट करती हो ? बताओ तो विषके समान विषम प्रेमको कौन बरजन कर सकता है ? ६९ ॥

ते अ जुआणा ता गामसंपआ तं अ अम्ह तारुण्णं ।
अक्खाणअं व लोओ कहेइ अम्हे वि तं सुणिमो ॥ ७० ॥
[ते च युवानस्ता ग्रामसंपदस्तच्चास्माकं तारुण्यम् ।
आख्यानकमिव लोकः कथयति वयमपि तच्छृणुमः ॥]

वे ही, ये युवक तब थे, वह ही, वह तब ग्राम-सम्पत्ति थी और तब हम लोगोंका वही वह यौवन भी था। लोग आख्यानकी भाँति उन सबका वर्णन करेंगे और हम सब सुनेंगे ॥ १७ ॥

बाहोहभरिअगण्डाहराएँ भणिअं विलक्खहसिरीए।
अज वि किं रुसिज्जइ सवहावत्थं गअं पेम्मं ॥ १८ ॥
[बाष्पौघभृतगण्डाधरया भणितं विलक्षहसनशीलया।
अद्यापि किं रुष्यते शपथावस्थां गतं प्रेम ॥]

बाष्पप्रवाहमे गण्डस्थल एवं अधरको भरकर लज्जाभीतासे हँसकर वह नायिका बोली, अब और रोष क्यों प्रकट कर रही हो? प्रेम शपथकी अवस्था पा चुका है अर्थात् शपथ द्वारा प्रेमकी प्रतीति घटती है ॥ १८ ॥

वण्णअघअलित्तमुहिं जो मं अइआअरेण चुम्बन्तो।
एह्णिं सो भूसणभूसिअं पि अलसाअइ छिवन्तो ॥ १९ ॥
[वर्णं घृतलिप्तमुखीं यो मामत्यादरेण चुम्बन्।
इदानीं स भूषणभूषितामप्यलसायते स्पृशन् ॥]

पुष्पावतीकी दशामें वर्णघृतद्वारालिप्तमुखी जिसने मुझे अत्यन्त आदरके साथ चूमा था, वही अब मेरे भूषणद्वारा अलङ्कृत होनेपर भी मुझे छूनेमें सकोच का बोध कर रही है ॥ १९ ॥

णीलपडपाउअङ्गी त्ति मा हु णं परिहरिज्जासु।
पट्टंसुअं पि णइं रअम्मि अवणिज्जइ च्चेअ ॥ २० ॥
[नीलपटप्रावृताङ्गीति मा खल्वेनां परिहर।
पट्टांशुकमपि नद्ध रतेऽपनीयत एव ॥]

नीले वस्त्रद्वारा आवृत्त अङ्गवाली समझकर उसे कभी त्याग न देना। पहने हुए पट्टवस्त्र भी रमणके समय छीन लिये जाते हैं ॥ २० ॥

सच्चं कलहे कलहे सुरआरम्भा पुणो णवा होन्ति।
माणो उण माणंसिणि गरुओ पेम्मं विणासेइ ॥ २१ ॥
[सत्यं कलहे-कलहे सुरतारम्भा पुनर्नवा भवन्ति।
मानः पुनर्मनस्विनि गुरुकः प्रेम विनाशयति ॥]

प्रत्येक कलहके उपरान्त प्रारम्भ किया हुआ रमण पुन नवीन होता है, यह सच है। किन्तु हे मनस्विनि, भारी होनेपर मान प्रेमका विनाश कर देता है ॥ २१ ॥

माउम्मि ठाए मए [illegible] कारेण कुसल्लीए।
[illegible] पेम्मं [illegible] पोअ[illegible] ॥ २२ ॥
[[illegible] कार्यं कुर्वन्ता।
[illegible] प्रेम [illegible] [illegible] ॥]

[illegible] हो, [illegible] नहीं है [illegible] [illegible] [illegible] किये बिना [illegible] [illegible] द्वारा [illegible] [illegible] [illegible] है ॥ २२ ॥

अणुऊलं विअ वोत्तुं [illegible] पि [illegible] पि।
कुविअं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ २३ ॥
[अनुकूलमेव वक्तुं [illegible] [illegible]।
कुपितं च [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

हे [illegible] प्रिय [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] [illegible] प्रकार अनुकूल [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कुपित [illegible] [illegible] प्रकार [illegible] [illegible] चाहिए ॥ २३ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ २४ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] (क्षोभयतु) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

हे प्रिय सखि, [illegible] [illegible] मैंने [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] कर दिया है [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] है [illegible] (प्रिय) [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] है ॥ २४ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ २५ ॥
[[illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥]

[illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चाहिए, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चाहिए [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चाहिए ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वि ।
[illegible] वि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ २६ ॥

[धूलिमलिनोऽपि पङ्काङ्कितोऽपि तृणरचितदेहमरणोऽपि ।
तथापि गजेन्द्रो गुरुकत्वेन वप्रं समुद्वहति ॥]

धूलिमलिन होनेपर भी, पङ्काङ्कित होनेपर भी, तृण द्वारा देहपोषणकारी होनेपर भी गजेन्द्र अपने गुरुत्ववश (भारीपनके कारण) ढोल वहन करता है ॥

करमरि कीस ण गम्मइ को गव्वो जेण मसिणगमणासि ।
अद्दिट्ठदन्तहसिरीअ जम्पिअं चोर जाणिहिसि ॥ २७ ॥
[बन्दि किमिति न गम्यते को गर्वो येन मसृणगमनासि ।
अदृष्टदन्तहसनशीलया जल्पितं चोर ज्ञास्यसि ॥]

हे बन्दी, मेरे साथ चलती क्यों नहीं ? तुम्हें क्या यह गर्व है कि इतनी मन्दगमना हो गयी हूँ ? दाँत बिना दिखाये हँसकर रमणी बोल उठी, "हे चोर, (क्यों ऐसा करती हूँ) जान जाओगे" ॥ २७ ॥

थोरंसुएहिँ रुण्णं सवत्तिवग्गेण पुप्फवइआए ।
भुअसिहरं पइणो पेच्छिऊण सिरलग्गतुप्पलिअं ॥ २८ ॥
[स्थूलाश्रुभी रुदितं सपत्नीवर्गेण पुष्पवत्या ।
भुजशिखरं पत्युः प्रेक्ष्य शिरोलग्नवर्णघृतलिप्तम् ॥]

पुष्पवतीके शिरोलग्नविलेपन घृतद्वारा पतिके भुजशिखरको लिप्त देखकर सपत्नियाँ अविरल अश्रुधार बहाकर रोने लगीं ॥ २८ ॥

लोओ जूरइ जूरउ वअणिज्जं होइ होउ तं णाम ।
एहि णिमज्जसु पासे पुप्फवइ ण एइ मे णिद्दा ॥ २९ ॥
[लोकः खिद्यते खिद्यतु वचनीयं भवति भवतु तन्नाम ।
एहि निमज्ज पार्श्वे पुष्पवति नैति मे निद्रा ॥]
लोग दुखी होते हैं तो हों, निन्दा होती है तो यह भी हो । हे पुष्पवती, आओ, मेरे पास आजाओ, मुझे निद्रा नहीं आ रही है ॥ २९ ॥

जं जं पुलएमि दिसं पुरओ लिहिअ व्व दीससे तत्तो ।
तुह पडिमापडिवाडिं वहइ व्व सअल दिसाअक्कं ॥ ३० ॥
[यां यां प्रलोकयामि दिशं पुरतो लिखित एव दृश्यसे तत्र ।
तव प्रतिमापरिपाटीं वहतीव सकलं दिशाचक्रम्]

मैं जिधर जिधर देखती हूँ, मानो उधर ही उधर तुम्हें चित्रित देखती हूँ । सारे दिक्‌चक्र ही जैसे तुम्हारी प्रतिमाको परस्पर वहन कर रहे हैं ॥ ३० ॥

मोत्तूण पुणरु साई कोल्लसुहका पुणो समुल्लिहइ ।
जम्बूफलं ण गेह्णइ भमरो त्ति करो पहिअउत्तो ॥ ५१ ॥

[मुञ्चति पुनरपि स्पर्शं कोल्लसुखतया पुनः समुल्लिखति ।
जम्बूफलं न गृह्णाति भ्रमर इति करोति पथिकपुत्रः ॥]

भौंरे इस पके जामुनके फलको बार-बार [illegible] छू-छोड़ (जम्बूफलके) रस रहा है [illegible] दिखा रहा है एवं पुनः [illegible] स्पर्श सुख रहा है। किन्तु इसमें भौंरा है यह समझकर [illegible] उसको नहीं ले रहा है ॥ ५१ ॥

ण छिवइ हत्थेण करे [illegible] पत्तलपिरम्मे ।
[illegible] ॥ ५२ ॥

[न स्पृशति हस्तेन करि [illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] किंतु [illegible] करिकलभ [illegible] की ओर दिखाती रहता है। इस कारण [illegible] होनेपर भी [illegible] हाथको करके उसको छूता नहीं ॥ ५२ ॥

[illegible] वि [illegible] सुहाइँ सुअहिअम्म वि ।
[illegible] वि पण्डुर चिअ [illegible] तुह वि विमाए ॥ ५३ ॥

[[illegible] ।
[illegible] तव वियोगे ॥]

तुम्हारे वियोगमें वह [illegible] होकर भी सूखती जा रही है [illegible] होकर भी [illegible] जा रही, एवं [illegible] (अनुराग) होकर भी पाण्डुवर्ण होती जा रही है ॥ ५३ ॥

[illegible] गुञ्जाइं चि अ [illegible] ।
[illegible] सो होसा ॥ ५४ ॥

[[illegible] ।
[illegible] न दोषः ॥]

[illegible] ॥ ५४ ॥

उप्पहपहाविहजणो पविजिम्भिअकलअलो पहअतूरो ।
अव्वो सो च्चेअ छणो तेण विणा गामडाहो व्व ॥ ३५ ॥
[उत्पथप्रधावितजन प्रविजृम्भितकलकल प्रहततूर्य ।
दु:ख स एव क्षणस्तेन विना ग्रामदाह इव ॥]

हाय, जिस उत्सवमें लोग ऊपरकी ओर भागते हैं, गीतादिद्वारा कलकल रव उठता है एवं तूर्यनिदान - उठाया जाता है—वही मधूत्सव उस प्रियतमके विरहमें ग्रामदाहकी भाँति प्रतीत हो रहा है ॥ ३५ ॥

उल्लावन्तेण ण होइ कस्स पासट्ठिएण ठड्ढेण ।
सङ्का मसाणपाअवलम्बिअचोरेण व खलेण ॥ ३६ ॥
[उल्लापयमानेन न भवति कस्य पार्श्वस्थितेन स्तब्धेन ।
शङ्का- श्मशानपादपलम्बितचोरेणेव खलेन ॥]

—श्मशानवृक्ष पर गलेमें फाँसी डालकर लटकती हुई, लम्बमान, स्तब्ध एव पराभवकारी चोरकी भाँति (प्रवञ्चतार्थ) बोलते हुए पार्श्वस्थित तथा गर्वसे स्तब्ध खल व्यक्ति किसमें शङ्का नहीं उत्पन्न करते ॥ ३६ ॥

असमत्तगुरुअकज्जे पहिं पहिए घरं णिअत्तन्ते ।
णवपाउसो पिउच्छा हसइ व कुडअट्टहासेहिं ॥ ३७ ॥
[असमाप्तगुरुककार्ये इदानीं पथिके गृह प्रतिनिवर्तमाने ।
नवप्रावृट् पितृष्वस हसतीव कुटजाट्टहासै ॥]

अरी बुआ, सम्प्रति अत्यावश्यक कार्यको असमाप्त रहने दे । पथिकके घर लौट आने पर, नयी वर्षासे गिरिमल्लिकाके खिलनेके समान अट्टहास-सी हँसी हँस रही है ॥ ३७ ॥

दट्ठूण उण्णमन्ते मेहे आमुक्कजीविआसाए ।
पहिअघरिणीअ डिम्भो ओरुण्णमुहीअ सच्चविओ ॥ ३८ ॥
[दृष्ट्वा उन्नमतो मेघानामुक्तजीविताशया ।
पथिकगृहिण्या डिम्भोऽवरुदितमुखया दृष्ट ॥]

आकाशमें बादलोंको उठते हुए देखकर, जीवनकी आशाका सम्यक् त्यागकर, पथिकपत्नी ने रुआँसे मुँहसे अपने शिशुकी गतिको स्वाभाविक रीतिसे स्थिर किया ॥ ३८ ॥

अविहत्तक्खणचलसं ठाणं णेन्तो पुणो पुणो गलिअं ।
सहिसत्थो व्विअ माणंसिणीअ वलआरओ जाओ ॥ ३९ ॥

[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] ([illegible])
[illegible] ॥ ४९ ॥

[illegible] ।
[illegible] उत्पेर ॥ ५० ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] ॥ ५० ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ५१ ॥
[[illegible] ([illegible]) [illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] ॥ ५१ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ५२ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] ॥ ५२ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ५३ ॥

[आम्रवने भ्रमरकुल न विना कार्येणोत्सुकं भ्रमति ।
कुतो ज्वलनेन विना धूमस्य शिखा दृश्यन्ते ॥]

अमराईमें अनायास ही उत्सुक हो भौंरे घूम नहीं रहे हैं अर्थात् मधुपान के लोभमें घूम रहे हैं। अग्निके अतिरिक्त धूएँकी शिखा कहाँ दिखायी पड़ती है ? ॥ ४३ ॥

दइअकरग्गहलुलिओ धम्मिल्लो सीहुगन्धिअं वअणं।
मअणम्मि एत्तिअं चिअ पसाहणं हरइ तरुणीणं ॥ ४४ ॥
[दयितकरग्रहलुलितो धम्मिल्लः सीधुगन्धितं वदनम् ।
मदने एतावदेव प्रसाधनं हरति तरुणीनाम् ॥]

प्रियतमके करग्रहणके कारण शिथिलप्राय केशबन्ध (जूड़ा) एवं मदिराके गंधसे आमोदित वदन—इतना श्रृंगार ही तरुणियोंके मदनोत्सवमें चित्तहारी होता है ॥ ४४ ॥

गामतरुणीओ हिअअं हरन्ति छेआणँ थणहरिल्लीओ ।
मअणे कुसुम्भरअिअकञ्चुआहरणमेत्ताओ ॥ ४५ ॥
[ग्रामतरुण्यो हृदयं हरन्ति विदग्धानां स्तनभारवत्यः ।
मदने कुसुम्भरागयुक्तकञ्चुकाभरणमात्राः ॥]

मदनोत्सवमें कुसुम्भरञ्जित कञ्चुकि मात्र आभरणरूपमें पहनकर, स्तन-भारवती ग्रामतरुणियाँ विदग्ध जनोंके हृदयको हर रही हैं ॥ ४५ ॥

आलोअन्त दिसाओ ससन्त जम्भन्त गन्त रोअन्त ।
मुच्छन्त पडन्त खलन्त पहिअ किं ते पउत्थेण ॥ ४६ ॥
[आलोकयन्दिशः श्वसञ्जृम्भमाणो गायन्रुदन् ।
मूर्च्छन्पतन्स्खलन्पथिक किं ते प्रवसितेन ॥]

अरे पथिक, दिशाओंकी ओर देखकर ही तुम्हारे श्वास, जँभाई, गान या गमन, रोदन, मूर्च्छा, पतन एवं स्खलन हो रहे हैं—तुम्हारे प्रवासगमन से क्या प्रयोजन ? ॥ ४६ ॥

दट्ठूण तरुणसुरअं विविहविलासेहिँ करणसोहिल्लं ।
दीओ वि तग्गअमणो गअं पि तेल्लं ण लक्खेइ ॥ ४७ ॥
[दृष्ट्वा तरुणसुरतं विविधविलासैः करणशोभितम् ।
दीपोऽपि तद्गतमना गतमपि तैलं न लक्षयति ॥]

[illegible] एवं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] देखकर उसमें ऐसा लिखने भी नहीं देखा कि [illegible] गया है ॥ ४७ ॥

पुप्फ[illegible] [illegible]।
[illegible] माए पुत्ता वि जइ [illegible] सहइ ॥ ४८ ॥
[पु[illegible] ।
[illegible] माता पुत्रापि यदि मर्यादा सहते ॥]

हे माता [illegible] मर्यादा ([illegible]) [illegible] ([illegible]) के [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]), [illegible] ([illegible]) [illegible] एवं [illegible] सहन कर सकेगी या नहीं ॥ ४८ ॥

[illegible] पिअपणा [illegible] [illegible] पई वि [illegible] ।
[illegible] व [illegible] महिसएण [illegible] णग्गस [illegible] ॥ ४९ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] हुआ कर गया है [illegible] हैं यदि [illegible] गया हुआ है—[illegible] को [illegible] कर दिया है कोई नहीं है जो [illegible] ॥ ४९ ॥

[illegible] पिमइ [illegible] ।
[illegible] सो [illegible] माणिणी मरइ ॥ ५० ॥
[[illegible] पिबति [illegible] ।
[illegible] मानिनी [illegible] ॥]

[illegible] [illegible] [illegible] मानिनी [illegible] हुई [illegible] धीरे-धीरे पी रही है ॥ ५० ॥

गिरिसोत्तो त्ति भुअंगं महिसो जीहाइ लिहइ संतत्तो ।
महिसस्स [illegible] त्ति सप्पो पिअइ [illegible] ॥ ५१ ॥
[गिरिस्रोत इति भुजगं महिषो जिह्वया लेढि संतप्तः ।
महिषस्य [illegible] इति सर्पः पिबति [illegible] ॥]

ग्रीष्म सन्तापसे सन्तप्त बैल गिरिका स्रोत समझकर सर्पको जिह्वासे चाट रहा है, एवं सर्प भी काले पत्थरका झरना समझकर उसका लार पी रहा है ॥

पञ्जरसारिं अत्ता ण णेसि किं एत्थ रइहराहिन्तो ।
वीसम्भजम्पिआइं एसा लोआणँ पअडेइ ॥ ५२ ॥

[पञ्जरशारीं मातुलानि न नयसि किमत्र रतिगृहात् ।
विस्रम्भजल्पितान्येषा लोकानां प्रकटयति ॥]

अरी सास, इस पञ्जरबद्ध सारिकाको रतिगृहसे अन्यत्र हटा क्यों नहीं देती ? यह औरों के सम्मुख गोपनीय वचनोंको प्रकट कर देती है ॥ ५२ ॥

एद्दहमेत्ते गामे ण पडइ भिक्ख त्ति कीस मं भणसि ।
धम्मिअ करञ्जभञ्जअ जं जीअसि तं पि दे बहुअं ॥ ५३ ॥

[एतावन्मात्रे ग्रामे न पतति भिक्षेति न किमिति मां भणसि ।
धार्मिक करञ्जभञ्जक यज्जीवसि तदपि ते बहुकम् ॥]

हे करञ्ज शाखाभङ्गकारी धर्मात्मा, इतने बड़े ग्राममें मुझसे ही क्यों कह रहे हो कि 'भिक्षा नहीं मिलती' ? करञ्जशाखा-भङ्ग होनेके बाद जो जीवित हैं—यही तुम्हारे लिए बहुत है ॥ ५३ ॥

जन्तिअ गुलं विमग्गसि ण अ मे इच्छाइ वाहसे जन्तं ।
अणरसिअ किं ण आणसि ण रसेण विणा गुलो होइ ॥ ५४ ॥

[यान्त्रिक गुडं विमार्गयसे न च ममेच्छया वाहयसि यन्त्रम् ।
अरसिक किं न जानासि न रसेन विना गुडो भवति ॥]

अरे यन्त्रचालक, (वेतनके बदले) गुड़ चाहते हो ? ऊपरसे हमारे इच्छा-नुसार यन्त्र नहीं चला सकते । अरे अरसिक, क्यों, नहीं जानते कि रसके बिना गुड़ पैदा नहीं होता ॥ ५४ ॥

पत्तणिअम्बप्फंसा ण्हाणुत्तिण्णाएँ सामलङ्गीए ।
जलबिन्दुएहिँ चिहुरा रुअन्ति बन्धस्स व भएण ॥ ५५ ॥

[प्राप्तनितम्बस्पर्शा स्नानोत्तीर्णाया श्यामलाङ्ग्या ।
जलबिन्दुकैश्चिकुरा रुदन्ति बन्धस्येव भयेन ॥]

स्नानोत्तीर्णा श्यामलाङ्गीके कुन्तल कलापसमूह नितम्बके स्पर्शसुखको पाकर जैसे बन्धनके भयसे स्नान जलबिन्दुओंके बहाने रो रहे हैं ॥ ५५ ॥

गामरुहणणिअडिअकच्छवच्छ वड तुज्झ दूरमणुलग्गो ।
तिच्छिल्लपडिच्छअफमोहओ वि गामो ण उव्विग्गो ॥ ५६ ॥

[प्रामाणिकविशिख[illegible] कर [illegible] ।
यैः कनिष्ठ[illegible] माघे गोहितः ॥]

हे बरगद तुमने गाँवके आँगनमें [illegible] रहा है। तुमसे दूर रहकर [illegible] नहीं होता [illegible] कामिनियोंकी [illegible] कर रहे हैं ॥ ५६ ॥

सुण्णं वहइं [illegible] ण भज्जिमा सा कुसुम आरअन्ता ।
अत्ता वि घरे कुविआ भूआणँ व वाइओ वसो ॥ ५७ ॥

[शून्यं [illegible] न [illegible] न कुसुमान्याचिन्वन्ती ।
श्वश्रूरपि गृहे कुपिता भूतानामिव वादितो वंशः ॥]

कुञ्ज भी [illegible] नहीं, वह कुसुम भी [illegible], सास भी घरमें कुपित हो गई। किन्तु [illegible] जैसे बाँसुरी बजाई गई अर्थात् [illegible] हुई ॥ ५७ ॥

पिसुणन्ति कामिणीणं जलणुक्कपिआवऊहणसुहेल्लिं ।
कण्डइअकवोलुप्फुल्लणिच्चलच्छीइँ वअणाइं ॥ ५८ ॥

[पिशुनयन्ति कामिनीनां जलनिलीनप्रियावगूहनसुखकेलिम् ।
कण्टकितकपोलोत्फुल्लनिश्चलाक्षीणि वदनानि ॥]

कामिनियोंका [illegible] एवं [illegible] [illegible] विशेष [illegible] कर रहे हैं ॥ ५८ ॥

अहिणवपाउसरसिएसु सोहइ सामाइएसु दिअहेसु ।
रहसपसारिअगीवाणँ णच्चिअं मोरवुन्दाणं ॥ ५९ ॥

[अभिनवप्रावृड्रसितेषु शोभते श्यामायितेषु दिवसेषु ।
रभसप्रसारितग्रीवाणां नृत्यं मयूरवृन्दानाम् ॥]

[illegible] नये बादलोंके गर्जनसे [illegible] दिनोंमें [illegible] मयूरोंका नृत्य शोभा पा रहा है। (दिनमें ही [illegible] अन्धकारयुक्त हो गया है।) ॥ ५९ ॥

[illegible] सिसिरसिमन्त ।
माअन्दी[illegible] महमहुन्दं ॥ ६० ॥

[महिषस्कंधविलग्न घूर्णते शृङ्गाहत सिमसिमायमानम् ।
आहतवीणाझंकारशब्दमुखर मशकवृन्दम् ॥]

भैंसोंके कन्धेपर लगे मशकवृन्द सींगों द्वारा आहत होनेपर सिम्-सिम् शब्द करते-करते आहत वीणाके झङ्कारकी ध्वनिकी भाँति मुखर हो घूम रहे हैं॥

रेहन्ति कुमुअदलणिच्चलट्ठिआ मत्तमहुअरणिहाआ ।
ससिअरणीसेसपणासिअस्स गण्ठि व्व तिमिरस्स ॥ ६१ ॥

[राजन्ते कुमुददलनिश्चलस्थिता मत्तमधुकरनिकाया ।
शशिकरनि शेषप्रणाशितस्य ग्रन्थय इव तिमिरस्य ॥]

उदयके अनन्तर चन्द्रकिरणों द्वारा अशेष भावसे नाशित अन्धकारकी ग्रथिसमूहकी भाँति प्रतीयमान मत्तमधुकरनिकर कुमुद दलके ऊपर निश्चल भावसे बैठकर शोभा पा रहा है ॥ ६१ ॥

उअह तरुकोडराओ णिक्कन्तं पुंसुआणँ रिञ्छोलिं ।
सरिए जरिओ व्व दुमो पित्तं व्व सलोहिअं वमइ ॥ ६२ ॥

[पश्यत तरुकोटरान्निष्क्रान्तां पुंशुकानां पङ्क्तिम् ।
शरदि ज्वरित इव द्रुमः पित्तमिव सलोहित वमति ॥]

देखो, वृक्षकोटरसे पुशुकोंकी पंक्ति निकल रही है। जान पड़ता है कि शरतमें ज्वराक्रान्त वृक्ष रक्तमिश्रित पित्तकी उलटी कर रहा है ॥ ६२ ॥

धाराधुव्वन्तमुहा लम्बिअवक्खा णिउञ्चिअग्गीवा ।
वइवेढनेसु काआ सुलाहिण्णा व्व दीसन्ति ॥ ६३ ॥

[धाराधाव्यमानमुखा लम्बितपक्षा निकुञ्चितग्रीवा ।
वृतिवेष्टनेषु काका शूलाभिन्ना इव दृश्यन्ते ॥]

खेतकी वृतिवेष्टन (मेड़) के ऊपर बैठकर वृष्टि धारा द्वारा धोया हुआ मुख, लम्बे पङ्ख एव फैले हुए ग्रीववाले कौए शूल द्वारा सम्यक् विद्ध जैसे प्रतीत होते हैं ॥ ६३ ॥

ण वि तह अणालवन्ती हिअअं दूमेइ माणिणी अहिअं ।
जह दूरविअम्भिअगरुअरोसमज्झत्थभणिएहिं ॥ ६४ ॥

[नापि तथा नालपन्ती हृदयं दुनोति मानिन्यधिकम् ।
यथा दूरविजृम्भितगुरुकरोपमध्यस्थभणितैं ॥]

मानिनीने बात न कर मुझे जितना कष्ट नहीं दिया है उससे कहीं अधिक

कर दिया है—बहुत [illegible] गुरुजनों [illegible] वचन द्वारा ॥ ६४ ॥

पाअं [illegible] [illegible] वाहमरि[illegible] ।
आसण्णु परि[illegible] परिपि[illegible] मा ण पेच्छिहिसि ॥६५॥
[[illegible] [illegible] ।
[illegible] परि[illegible] मा न [illegible] ॥]

हे [illegible], [illegible] दूर [illegible] [illegible] [illegible] तुम्हारे [illegible] [illegible] हो गए हैं । तुम [illegible] होओ, [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] नहीं है ॥ ६५ ॥

गअ मई [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] मा ए [illegible] [illegible] ॥ ६६ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] मा रे [illegible] [illegible] ॥]

हे [illegible] [illegible] [illegible] यदि [illegible] तुम भी कोई [illegible] [illegible] [illegible] कर सकते । किन्तु [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मन [illegible] ॥ ६६ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] व [illegible] ॥ ६७ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥]

[illegible] [illegible] [illegible] एवं [illegible] द्वारा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] एवं [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] कर रहा है ॥ ६७ ॥

कहँ मे [illegible] [illegible] होहिइ त्ति [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] व [illegible] [illegible] ॥ ६८ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]]

मेरे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] एवं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होगा—यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible] [illegible] एवं [illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रो रहा है ॥ ६८ ॥

संझाराओत्थइओ दीसइ गअणम्मि पडिवआचन्दो ।
रत्तदुऊलन्तरिओ थणणहलेहो व्व णववहुए ॥ ६९ ॥
[सन्ध्यारागावस्थगितो दृश्यते गगने प्रतिपच्चन्द्रः ।
रक्तदुकूलान्तरितः स्तननखलेख इव नववध्वाः ॥]

रक्तवर्ण वस्त्रद्वारा आवृत नववधूके स्तनके ऊपरके नखचिह्नकी नाईं प्रतिपदाका चन्द्र आकाशमें सन्ध्यारागमें अस्तहित दिखायी पड़ रहा है ॥ ६९ ॥

अइ दिअर किं ण पेच्छसि आआसं किं मुहा पलोएसि ।
जाआइ बाहुमूलम्मि अद्धअन्दाणँ परिवाडिं ॥ ७० ॥
[अयि देवर किं न प्रेक्षसे आकाशं किं मुधा प्रलोकयसि ।
जायाया बाहुमूलेऽर्धचन्द्राणां परिपाटीम् ॥]

हे देवर, आकाशकी ओर व्यर्थ ही दृष्टिपात क्यों कर रहे हो ? जायाके बाहुमूल प्रदेशमें (नखक्षतोत्पादित) अर्द्धचन्द्रोंको क्यों नहीं देखते ? ७० ॥

वाआइ किं भणिज्जउ केत्तिअमेत्तं व लिक्खए लेहे ।
तुह विरहे जं दुक्खं तस्स तुमं चेअ गहिअत्थो ॥ ७१ ॥
[वाचया किं भण्यतां कियन्मात्रं वा लिख्यते लेखे ।
तव विरहे यद्दुःखं तस्य त्वमेव गृहीतार्थः ॥]

वाक्य द्वारा और क्या कहा जाय ? पत्रमें भी कितना लिखा जाय ? तुम्हारे विरहमें कितना दुःख है, यह तुम भली प्रकार समझ पा रहे हो ॥ ७१ ॥

मअणग्गिणो व्व धूमं मोहणपिच्छिं व लोअदिट्ठीए ।
जोव्वणधअं व मुद्धा वहइ सुअन्धं चिउरभारं ॥ ७२ ॥
[मदनाग्नेरिव धूमं मोहनपिच्छिकामिव लोकदृष्टेः ।
यौवनध्वजमिव मुग्धा वहति सुगन्धं चिकुरभारम् ॥]

मुग्धा रमणी मदनाग्निके धूएँ की भाँति, लोगोंके नयनोंको मुग्ध करनेकी ऐन्द्रजालिक पिच्छिकाकी भाँति यौवनकी ध्वजाकी भाँति, सुगन्धित केशोंका भार वहन कर रही है ॥ ७२ ॥

रुअं सिट्ठं चिअ से असेसपुरिसे णिअत्तिअच्छेण ।
बाहोल्लेण इमीए अजम्पमाणेण वि मुहेण ॥ ७३ ॥
[रूपं शिष्टमेव तस्याशेषपुरुषे निवर्तिताक्षेण ।
बाष्पार्द्रेणास्या अजल्पतापि मुखेन ॥]

[illegible] ([illegible]) के समान [illegible] ॥ ७४ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ७४ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] ([illegible]) की भाँति [illegible] रहे हैं ॥ ७५ ॥

कस्स करो बहुपुण्णफलेक्कतरुणो तुहं विसम्मिहइ ।
थणपरिणाहे मम्महणिहाणकलसे व्व पारोहो ॥ ७५ ॥
[कस्य करो बहुपुण्यफलैकतरोस्तव विश्रमिष्यति ।
स्तनपरिणाहे मन्मथनिधानकलश इव प्ररोहः ॥]

[illegible] भाँति [illegible] भाँति [illegible] होगा ? ॥ ७५ ॥

चोरा सभअसतण्हं पुणो पुणो पेसअन्ति दिट्ठीओ ।
अहिरक्खिअणिहिकलसे व्व पोढवइआथणुच्छङ्गे ॥ ७६ ॥
[चौराः सभयसतृष्णं पुनः पुनः प्रेषयन्ति दृष्टीः ।
अधिरक्षितनिधिकलश इव प्रौढपतिकास्तनोत्सङ्गे ॥]

[illegible] की भाँति, [illegible] ([illegible] की भाँति) चोरगण डर-डरकर [illegible] बार-बार दृष्टिपात कर रहे हैं ॥ ७६ ॥

[illegible] ।
पाउस[illegible] पओहरेहिँ परिपेल्लिओ विञ्झो ॥ ७७ ॥
[वहति [illegible] ।
[illegible] विन्ध्यः ॥]

[illegible] विन्ध्याचलके [illegible] रोमाञ्चद्वारा [illegible] धारण कर रहा है ॥ ७७ ॥

आम बहला वणाली मुहला जलरङ्कुणो जलं सिसिरं।
अण्णणईणँ वि रेवाइ तह वि अण्णे गुणा के वि॥ ७८॥
[सत्य बहला वनाळी मुखरा जलरङ्कवो जलं शिशिरम्।
अन्यनदीनामपि रेवायास्तथाप्यन्ये गुणा केऽपि॥]

यह सच है कि और नदियोंके पास भी तटविस्तृत वनोंकी पङ्क्ति है, शब्द-मुखर जलरङ्कु पक्षीगण एवं सुशीतल जल विद्यमान है, तथापि रेवा (नर्मदा) नदीका और भी कोई-कोई सा अतिरिक्त गुण भी है॥ ७८॥

एइ इमीअ णिअच्छइ परिणअमालूरसच्छहे थणए।
तुट्टे सप्पुरिसमणोरहे व्व हिअए अमामन्ते॥ ७९॥
[आगच्छतास्या निरीक्षस्व परिणतमालूरसदृशौ स्तनौ।
त्रुट्टौ सत्पुरुषमनोरथाविव हृदये अमान्तौ॥]

आओ एवं सत्पुरुषोंके मनोरथकी भाँति इस रमणीके हृदयदेश (वक्षस्थल) में अमान्त (विपुल अथवा मानके अनुपयोगी) तुङ्ग एवं पके हुए बिल्वफल जैसे स्तनद्वयको निरखो॥ ७९॥

हत्थाहत्थिं अहमहमिआइ वासागमम्मि मेहेहिं।
अव्वो किं पि रहस्सं छण्णं पि णहङ्गणं गलइ॥ ८०॥
[हस्ताहस्ति अहमहमिकया वर्षागमे मेघैः।
आश्चर्यं किमपि रहस्यं छन्नमपि नभोङ्गणं गलति॥]

अहो आश्चर्यका विषय यही है कि वर्षागममें अहङ्कारवश हाथोहाथ मिले हुए मेघ घटाद्वारा आच्छन्न होनेपर भी आकाशरूपी आँगन गिरा पड़ रहा है॥

केत्तिअमेत्तं होहिइ सोहग्गं पिअअमस्स भमिरस्स।
महिलामअणच्छुहाउलकडक्खविक्खेवघेप्पन्तं॥ ८१॥
[कियन्मात्रं भविष्यति सौभाग्यं प्रियतमस्य भ्रमणशीलस्य।
महिलामदनक्षुधाकुलकटाक्षविक्षेपगृह्यमाणम्॥]

अन्यान्य नारीके लिए भ्रमणशील प्रियतमका सुभगत्व कितनी देर टिकेगी? कारण, महिलाएँ केवल मदनक्षुधासे आकुल कटाक्षपातद्वारा ही इसे वशमें लाना चाहती हैं॥ ८१॥

णिअधणिअ उवऊहसु कुक्कुडसद्देन झत्ति पडिबुद्ध।
परवसइवाससङ्किर णिअए वि घरम्मि, मा भासु॥ ८२॥

[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] ([illegible]) से [illegible] । [illegible] न करना ॥ ८१ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ८२ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] ([illegible]) के [illegible] रही है ॥ ८२ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ८४ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

प्रतीत होता है कि [illegible] हो रही है ॥ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ८५ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] करता है ॥ ८५ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ८६ ॥
[[illegible] ।
हे [illegible] ॥]

पुरुष जो प्रवासके सम्बन्धमें इतने गर्वका अनुभव करते हैं—यह महिलाओंका ही दोष है। जब तक महिलाओंमेंसे दो-तीन मर नहीं जायँगी तब तक विरहकी समाप्ति नहीं होगी ॥ ८६ ॥

वालअ दे वच्च लहु मरइ वराई अलं विलम्बेण ।
सा तुज्झ दंसणेण वि जीवेज्जइ णत्थि संदेहो ॥ ८७ ॥
[बालक हे व्रज लघु म्रियते वराकी अलं विलम्बेन ।
सा तव दर्शनेनापि जीविष्यति नास्ति सदेह ॥]

हे प्रमाणभिज्ञ बालक, शीघ्र चलो, वराकी (दयनीया) रमणी मारी जा रही है, विलम्ब करने का प्रयोजन नहीं है। तुम्हारे दर्शन पाकर वह बच जायगी, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८७ ॥

तम्बिरपसरिअहुअवहजालालिपलीविए वणाहोए ।
किंसुअवणन्ति कलिऊण मुद्धहरिणो ण णिक्कमइ ॥ ८८ ॥
[ताम्रवर्णप्रसृतहुतवहज्वालावलिप्रदीपिते वनाभोगे ।
किंशुकवनमिति कलयित्वा मुग्धहरिणो न निष्क्रामति ॥]

ताम्रवर्ण होकर विस्तृत अग्निशिखासमूह द्वारा प्रज्वलित वनप्रान्तरको भ्रमवश किंशुककानन समझकर मुग्ध हरिण निकल नहीं रहा है। विनाशके कारणको ही सुखका हेतु समझकर मुग्धजन प्रेयसीको छोड़ नहीं सकते ॥ ८८ ॥

णिहुअणसिप्पं तह सारिआइ उल्लाविअ म्ह गुरुपुरओ ।
जह त वेलं माए ण आणिमो कत्थ वच्चामो ॥ ८९ ॥
[निधुवनशिल्प तथा शारिकयोल्लपितमस्माक गुरुपुरतः ।
यथा तां वेलां मातर्न जानीम कुत्र व्रजाम ॥]

हे माता, शारिकाने गुरुजनोंके सम्मुख हम लोगोंके सुरतशिल्पकी कहानी इस प्रकार कह दी थी कि उस समय मैं लज्जासे कहाँ छिप जाऊँ यह समझमें नहीं आया ॥ ८९ ॥

पच्चग्गफुल्लदलुल्लसन्तमअरन्दपाणलेहलओ ।
तं णत्थि कुन्दकलिआइ ज ण भमरो महइ काउं ॥ ९० ॥
[प्रत्यग्रोत्फुल्लदलोल्लसन्मकरन्दपानलुब्ध ।
तन्नास्ति कुन्दकलिकाया यन्न भ्रमरो वाञ्छति कर्तुम् ॥]

नवप्रस्फुटितदलविशिष्ट कुन्दकुसुम उल्लसित मधुपानमें लोलुप हो भौंरा कुन्दकलिकासे सम्बन्ध नहीं जोड़ सकता ऐसा काम नहीं है ॥ ९० ॥

सा वो वि गुणारसाणा ण आणिमा मामि कुलहरणाए ।
अप्पणीहिँ पिअ पाई मइलिस्सइ जेण मसणिहँ ॥ ९१ ॥

[न वेद्मि गुणानिश्चयो न जानीमो मातुलानि कुलवधिकायाः ।
अक्षिमलीन सनुमलिनत्वे येन जगते ॥]

हे मामी, मैं नहीं जानती कि कुलवधिकाका यह गुणोत्कर्ष किसमें है। कारण, कौनसे गुण द्वारा नहीं केवल अपनेसे ही इसे लोकोंमें मलिन करती है ॥ ९१ ॥

पत्र विअ कज्जुर्य पामणिपूणम समुप्पहइ ।
अविभिसतमणी सामग्गी जीअ हैविखन्न पामी ॥ ९२ ॥

[त्वैव कस्तुर्य प्रामणीपुत्रिका प्रहुद्रति ।
अभिमिलनयना सकलो यथा देवीकृती ग्रामा ॥]

ग्रामणपुत्री तुम्हीं अपने ही इतना कम पर्व पुण कारण कर रही है कि सारे ग्रामवासी असमय मनमें मिलित हो देखने लगा सदैव हो गए हैं ॥ ९१ ॥

मण्णे आसायी पिअ ण पाणिमा पिअअम्माहररसस्स ।
णिअसेरिँ जेण रअणामअहिँ ममअ समुद्धरिमं ॥ ९३ ॥

[मन्ये आस्वाद एव न प्राप्त प्रियतमाधररसस्य ।
त्रिदशैरेव रत्नाकराणां समुद्रस्य ॥]

मुझे प्रतीत होता है कि देवताओंने प्रियतमाके अधररसका स्वाद नहीं पाया है इसीसे उन्होंने समुद्रसे अमृत निकाला है ॥ ९२ ॥

णाअअम्भाणमहिउर्वणिसिअसमुमम्माइम्भार हरिणीए ।
गईसणा पिआ होहिइ त्ति वलिअं चिर दिट्ठी ॥ ९४ ॥

[आकर्णोद्धृतनिशितशरसमुद्गमना हरिण्या ।
दर्शनं प्रियो भविष्यतीति वलिता चिरं दृष्टा ॥]

व्याधके कान तक आकृष्ट तीक्ष्ण बाणों द्वारा आहत होकर भी हरिणी (मैंगनेवा) 'मेरा प्रिय दर्शनके मनोहर होगा' ऐसा सोचकर उन्हींको देखकर बहुत देरतक फिरनेमें लगी ॥ ९ ॥

विसमहिउआपिअलोअअन्तरसिचे तुज्झ सहुवारिणीए ।
को को ण पत्थिओ पहिआअ हिम्म कअन्तम्मि ॥ ९५ ॥

[विषमस्थितपक्वैकाम्रदर्शने रुदत्‌ शत्रुगृहिण्या ।
क को न प्रार्थित पथिकानां डिम्भे रुदति ॥]

विषम शाखाग्र पर स्थित केवल एक आम्रफलको देखकर शिशु पुत्रके रोने लगने पर, तुम्हारी शत्रु-गृहिणीने आम गिरानेके लिए किस किस पथिककी विनती नहीं की ॥ ९५ ॥

मालारी ललिउल्लुलिअबाहुमूलेहिँ तरुणहिअआइं ।
उल्लूरइ सज्जुल्लूरिआइँ कुसुमाइँ दावेन्ती ॥ ९६ ॥
[मालाकारी ललितोल्ललितबाहुमूलाभ्यां तरुणहृदयानि ।
उल्लुनाति सद्योऽवलूनानि कुसुमानि दर्शयन्ती ॥]

मालिनी तुरत तोड़े गए कुसुमको दिखाने आकर अपने सुन्दर एव विशाल स्तनद्वारा युवकोंके हृदयको व्याकुल कर रही है ॥ ९६ ॥

मज्झो, पिओ, कुडुम्बो, पल्लिजुआणा, सवत्तीओ ।
जह जह वड्ढन्ति थणा तह तह छिज्जन्ति पञ्च वाहीए ॥ ९७ ॥
[मध्य प्रिय कुटुम्ब पल्लीयुवान सपत्न्य ।
यथा यथा वर्धेते स्तनौ तथा तथा क्षीयन्ते पञ्च व्याध्या ॥]

व्याधपत्नीके दोनों स्तन जैसे-जैसे बढ़ रहे हैं, वैसे-वैसे पाँच वस्तुएँ क्षीण होती जा रही हैं—उसकी कटि, उसका प्रियतम, उसका कुटुम्ब, गाँवके युवक एव उसकी सपत्नियाँ ॥ ९७ ॥

मालारीए वेल्लहलबाहुमूलावलोअणसअह्णो ।
अलिअं पि भमइ कुसुमग्घपुच्छिरो पंसुलजुआणो ॥ ९८ ॥
[मालाकार्या सुन्दरबाहुमूलावलोकनसतृष्णः ।
अलीकमपि भ्रमति कुसुमार्घप्रश्नशीलः पांसुलयुवा ॥]

मालिनके सुन्दर स्तनयुगल देखनेकी लालसामें परस्त्रीलम्पट युवक झूटमूठ फूलोंका मूल्य पूछता हुआ घूम रहा है ॥ ९८ ॥

अकअण्णुअ घणवण्णं घणपण्णन्तरिअतरणिअरणिअरं ।
जइ रे रे वाणीरं रेवाणीरं पि णो भरसि ॥ ९९ ॥
[अकृतज्ञ घनवर्णं घनपर्णान्तरिततरणिकरनिकरम् ।
यदि रे रे वानीर रेवानीरमपि न स्मरसि ॥]

रे रे अकृतज्ञ, जो बेंतकुञ्ज मेघ जैसे साँवले, रङ्ग एव जहाँ सूर्यकिरण

गये गृहपतिपुत्रीसे प्रणयहीन हैं उस वैद्यकहीन गाँवमें यदि ऐसा न होता तो क्या तुम रोग (कर्लता) वश उसका स्मरण नहीं कर सकते ? ९९ ॥

मण्ण पि ण याणइ हलिअणन्दणो इह हि डड्ढगामम्मि ।
गहवइसुआ विवज्जइ अवेज्जए कस्स साहामो ॥ १०० ॥
[अन्यदपि न जानाति हलिकनन्दन इह हि दग्धग्रामे ।
गृहपतिसुता विपद्यतेऽवैद्यके कस्य कथयामः ॥]

इस वैद्य शून्य जले गाँवमें गृहपतिकी पुत्री विषम रोगसे मरणासन्न विपद्-युक्त हो जायेगी—हलिकनन्दन (जामाता) यह अधिक कुछ नहीं जानता है—किससे यह बात कहूँ ॥ १०० ॥

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए ।
सत्तसअम्मि समत्तं सअं गाहासअं एअं ॥ १ ॥
[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।
सप्तशतके समाप्तं शतं गाथाशतमेतत् ॥]

रसिकजनोंके हृदयको अतिप्रिय एवं कविवत्सल प्रमुख सुकवियों द्वारा रचित सप्तशतीमें यह गाथाशतक समाप्त हुआ ॥ १ ॥



सप्तम शतक

पक्कमपरिरक्खणपहारसँमुहे कुरङ्गमिहुणम्मि ।
वाहेण मण्णुविअलन्तवाहधोअं अणुं मुक्कं ॥ १ ॥
[अन्योन्यपरिरक्षणप्रहारसमुखे कुरङ्गमिथुने ।
व्याधेन मन्युविगलद्बाष्पधौत धनुर्मुक्तम् ॥]

मृग मृगीको परस्पर रक्षाके निमित्त प्रहारके सम्मुख होते देखकर व्याधने करुणावश विगलित बाष्पद्वारा धौत (सिक्त) धनुषको छोड़ दिया ॥ १ ॥

ता सुहअ विलम्ब खणं भणामि कीअ वि कएण अलमह वा ।
अविआरिअकज्जारम्भआरिणी मरउ ण भणिस्सं ॥ २ ॥
[तत्सुभग विलम्बस्व क्षण भणामि कस्या अपि कृतेनालमथ वा ।
अविचारितकार्यारम्भकारिणी म्रियतां न भणिष्यामि ॥]

हे सुभग, थोड़ी देर रुको, एक स्त्रीके सम्बन्धमें तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ, वा कहनेका क्या काम ? बिना विचारे कार्यको प्रारंभ करनेवाली वह मारी जाय तो मारी जाय, उसके लिए तुम्हें मैं कुछ नहीं कहूँगी ॥ २ ॥

भोइणिदिण्णपहेणअचक्खिअदुस्सिक्खिओ हलिअउत्तो ।
एत्ताहे अण्णपहेणआणँ छीओल्लअं देइ ॥ ३ ॥
[भोगिनी दत्तप्रहेणका स्वादनदुःशिक्षितो हलिक पुत्र ।
इदानीमन्य प्रहेणकानां छी इति वचन ददाति ॥]

ग्रामीण व्यापारीकी पत्नीद्वारा प्रेषित मोदकादि रूप बायनको खानेमें लालची हलिकपुत्र अन्य लोगोंके भोग्यवस्तुओंकी 'छी छी' कर निन्दा कर रहा है ॥ ३ ॥

पच्चूसमऊहावलिपरिमलणसमूससन्तवत्ताणं ।
कमलाणं रअणिविरमे जिअलोअसिरी महम्महइ ॥ ४ ॥
[प्रत्यूषमयूखावलिपरिमलनसमुच्छ्वासपत्राणाम् ।
कमलानां रजनिविरामे जितलोकश्रीर्महमहायते ॥]

रजनीके अवसानपर प्रातः किरणावलिका संस्पर्श पाकर प्रस्फुटित दलोंवाले कमल समूहोंकी लोकविजयिनी शोभा सौरभयुक्त होकर सर्वत्र व्याप्त हो रही है ॥

णाउम्मोत्तिमसत्तासि पवसु कुडङ्गमज्झलं जव्वं।
चलुमारम पई मा हु पुत्ति अणहासिम कुमसु ॥ ५ ॥
[बालोऽहेिमपर्णे स्नपय नूपुरस्थमुखमध्यं चरणम् ।
चतुष्पदं पतिं मा खलु पुत्रि कर्तव्यं कुरु ॥]

नयी बहुके द्वारा पतुकिन बजौनामी नूपुर बाजते अधिक उठिक एवं पिरहुत बंधीशी हैक लो। हे पुत्रि पतुरूप पतिको ओरोंके हलाना लिए मत बनाओ ॥ ५ ॥

वीसत्थहसिअपरिसक्किआणं पढमं जलञ्जली दिण्णो।
पच्छा बहुअ गहिओ कुडुम्बभारो णिअअमस्स ॥ ६ ॥
[विस्रब्धहसितपरिष्वक्कानां प्रथमं जलाञ्जलिर्दत्तः ।
पश्चाद्वध्वा गृहीतः कुटुम्बभारो निजकस्य ॥]

बहूने पहले तो मुक्त हासको और फिर बालकालस्वभाव जलाञ्जलि दी है पश्चात् कुटुम्बका भार ग्रहण किया है ॥ ६ ॥

पम्मिहिसि तस्स पासं सुन्दरि मा तुरम वड्ढउ मिअङ्को।
दुद्धे दुद्धं मिअ चन्दिआइ को पेच्छइ मुहं दे ॥ ७ ॥
[गमिष्यसि तस्य पार्श्वं सुन्दरि मा त्वरस्व वर्धतां मृगाङ्कः ।
दुग्धे दुग्धमिव चन्द्रिकायां को प्रेक्षते मुखं ते ॥]

हे सुन्दरि उसके पास चली जायेगी, इतनी शीघ्रताका प्रयोजन नहीं है चन्द्रमाको और अधिक बढ़ने दो। दूधमें दूधकी तरह चन्द्रिकामें तुम्हारा मुखडा देखनेमें क्या समर्थ होगा ? ॥ ७ ॥

जइ जूरइ जूरउ णाम मामि परलोअवसणिओ लोओ।
तह वि बला गामणिणन्दणस्स वअणे वलइ दिट्ठी ॥ ८ ॥
[यदि खिद्यते खिद्यतां नाम मातुलानि परलोकव्यसनिको लोकः ।
तथापि बलाद्ग्रामणीनन्दनस्य वदने वलति दृष्टिः ॥]

हे मामी परलोकमें आसक्तिवाले व्यक्ति खिन्न होते हों तो हों, तथापि ग्राम-नायकके पुत्रके मुखकी ओर मेरी दृष्टि बलपूर्वक चली जाती है ॥ ८ ॥

पेर्इं च मिसदिम पिअअरकुहरे च सलिलसुण्णविअ।
गोहप्फरदिम पोम्मं च तीअ वअणं तुह विओए ॥ ९ ॥

[गृहमिव वित्तरहितं निर्झरकुहरमिव सलिलशून्यम् ।
गोधनरहितं गोष्ठमिव तस्या वदनं तव वियोगे ॥]

तुम्हारे विरहमें उसका मुख वित्तरहित (निर्धन) गृहकी भाँति सलिल-शून्य निर्झरगह्वरकी भाँति अथवा गोधनरहित गोष्ठ की भाँति प्रतीत हो रहा है ॥ ९ ॥

तुह दंसणेण जणिओ इमीअ लज्जाउलाइ अणुराओ ।
दुग्गअमणोरहो विअ हिअअ च्चिअ जाइ परिणामं ॥ १० ॥
[तव दर्शनेन जनितोऽस्या लज्जालुकाया अनुराग ।
दुर्गतमनोरथ इव हृदय एव याति परिणामम् ॥]

तुम्हारे दर्शनमें उत्पन्न अनुराग, दरिद्रके मनोरथकी भाँति उस लज्जाशीलके हृदयमें ही समाप्त हो जाता है ॥ १० ॥

जं तणुआअइ सा तुह कएण किं जेण पुच्छसि हसन्तो ।
अह गिम्हे मह पअई एव्व भणिऊण ओरुण्णा ॥ ११ ॥
[या तनूयते सा तव कृतेन किं येन पृच्छसि हसन् ।
असौ ग्रीष्मे मम प्रकृतिरिति भणित्वावरुदिता ॥]

जो रमणी ही कृश हो जाती है, वह क्या तुम्हारे लिए वैसी होती है ? उसी कारण क्या तुम मेरी कृशता के बारे में हँसकर पूछ रहे हो ? 'ग्रीष्मकाल में कृश होना मेरी प्रकृति है' कहकर वह रोने लगी ॥ ११ ॥

वण्णक्कमरहिअस्स वि एस गुणो णवरि चित्तकम्मस्स ।
णिमिसं पि जं ण मुञ्चइ पिओ जणो गाढमुवऊढो ॥ १२ ॥
[वर्णक्रमरहितस्याप्येष गुण केवल चित्रकर्मण ।
निमिषमपि यन्न मुञ्चति प्रियो जनो गाढमुपगूढ ॥]

वर्ण (रङ्ग) विन्यासरहित केवल आलेख्य कर्मका यह गुण दिखायी पड़ता है कि गाढ़भावसे आलिङ्गित प्रियजन प्रियाको क्षणभरके लिए भी छोड़ते नहीं ॥ १२ ॥

अविहत्तसंधिबन्धं पढमरसुब्भेअपाणलोहिल्लो ।
उव्वेल्लिउं ण आणइ खण्डइ कलिआमुहं भमरो ॥ १३ ॥
[अविभक्तसंधिबन्ध प्रथमरसोद्भेदपानलुब्धः ।
उद्वेल्लितु न जानाति खण्डयति कलिकामुख भ्रमर ॥]

पुष्पके मकरन्दसे (कमल अथवा) रस पीकर भौंरा हो अमर कलिका-का सुख कभी ऐसा पाता नहीं जाता अपितु पुष्प कलिकाओंको विकसित किये बिना ही कलित कर देता है ॥ १३ ॥

दरपडिअकुसुमासु मऊहिमच्छीसु पुलिमणिमुग्गासु ।
पुलिणासरीसु भमरा णिआसु गमआइहि पसाइ ॥ १४ ॥
[ईषत्पतितकुसुमासु मधुमक्षिकासु पुलिनविनिमग्नासु ।
पुलिनासरीसु भ्रमरा निजासु गमयन्ति प्रसादम् ॥]

शिशिर ऋतुमें जिन लताओंके कुसुम ईषत् झड़कर भेड़ चुनकर मुकुलित एवं वैरागी हुये रहते हैं पुलिनोंमें डूबी हुई वनलताओंके लिए भ्रमर भी अधिक होकर काम करते हैं ॥ १४ ॥

जं जं से ण सुहाअइ तं तं ण करेमि जं ममाअत्तं ।
अहअं चिअ जं ण सुहाअमि सुहअ तं किं ममाअत्तं ॥ १५ ॥
[यद्यत्ते न सुखायते तत्तन्न करोमि यन्ममायत्तम् ।
अहमेव यन्न सुखाये सुभग तत्किं ममायत्तम् ॥]

जिस जिससे तुम्हारा सुख प्राप्त नहीं होता, वह-वह मैं नहीं करती, क्योंकि वह मेरे वशमें है । हे सुभग, मैं जो तुम्हें अनुकूल नहीं लगती वह भी क्या मेरे वशमें है ॥ १५ ॥

पाआरविसंवाअं सअलआपरमाणं कुणइ दुब्भआ ।
सअलाणं उआ गुरुसंगिद्दे किं ण विरज्जइ णिरोअ ॥ १६ ॥
[प्राकारनिर्भारं सकलापवाणं करोति दुर्भगा ।
सकलेऽपि गुरुसंनिधानेऽपि न विरमति निरोधम् ॥]

निरोध (रोक) कथा सभी अबलाओंके व्यवहारमें बाधा पहुँचाती है । किन्तु यह कथा गुरुजनोंके समीप भी ऐसी बातोंके व्यवहारमें विरोध नहीं कर सकी ॥ १६ ॥

किं भणह मं सहीओ मा मर दीसिहइ सो खिअन्तीए ।
कज्जालाओ एसो सिणेहमग्गो उण ण होइ ॥ १७ ॥
[किं भणथ मां सख्यो मा म्रियस्व द्रक्ष्यते स जीवन्त्या ।
कार्यालाप एष स्नेहमार्गः पुनर्न भवति ॥]

अरी सखियो तुम मुझसे क्या कह रही हो ? 'मरो मत जीवित रहोगी

उसे देख पाओगी'—कार्यपर्यालोचनामें तो यह करने योग्य है, किन्तु यह प्रेम पथ नहीं है ॥ १७ ॥

एक्कहमओ दिट्ठीअ मइअ तह पुलइओ सअह्णाए ।
पिअजाअस्स जह धणुं पडिअं वाहस्स हत्थाओ ॥ १८ ॥
[एकाकी मृगो दृष्टया मृग्या तथा प्रलोकित सतृष्णया ।
प्रियजायस्य यथा धनु पतित व्याधस्य हस्तात् ॥]

व्याधका बाण अपने प्रति उद्यत देखकर मृगीने इस प्रकार सतृष्णा नेत्रसे एकाकी मृगकी ओर देखा कि अपनी पत्नीमें अनुरक्त चित्तवाले व्याधके हाथसे धनुष टूट पड़ा ॥ १८ ॥

णलिणीसु भमसि परिमलसि सत्तलं मालइं पि णो मुअसि ।
तरलत्तणं तुह अहो महुअर जइ पाडला हरइ ॥ १९ ॥
[नलिनीषु भ्रमसि परिमृद्नासि सप्तलां मालतीमपि नो मुञ्चसि ।
तरलत्व तवाहो मधुकर यदि पाटला हरति ॥]

हे भ्रमर, तुम नलिनियोंके निकट उड़ते फिरते हो। नवमालिकाका मर्दन भी करते हो और मालतीको भी छोड़ते नहीं, अब पाटल पुष्प यदि तुम्हारी यह चित्तचञ्चलता हरणकर सकती ॥ १९ ॥

दो अङ्गुलअकवालअपिणद्धसविसेसणीलकञ्चुइआ ।
दावेइ थणत्थलवण्णिअं व तरुणी जुअजणाणं ॥ २० ॥
[द्व्यङ्गुलककपाटविनद्धसविशेषनीलकञ्चुकिका ।
दर्शयति स्तनस्थलवर्णिकामिव तरुणी युवजनेभ्य]

दो अँगुली परिमित अवकाशयुक्त, विशेषत नीले रंगकी कञ्चुकिका पहनकर तरुणी मानो युवकोंको स्तनस्थलसचयमें आदर्श प्रदर्शित कर रही है ॥

रक्खेइ पुत्तअं मत्थएण ओच्छोअअं पडिच्छन्ती ।
अंसुहिँ पहिअघरिणी ओल्लिज्जन्तं ण लक्खेइ ॥ २१ ॥
[रक्षति पुत्रक मस्तकेन पटलप्रान्तोदक प्रतीच्छन्ती ।
अश्रुभि पथिकगृहिणी आर्द्रीभवन्त न लक्षयति ॥]

अपने छतसे गिरनेवाले जलको अपने मस्तकपर सहनकर पथिककी गृहिणी पुत्रकी रक्षा कर रही है, किन्तु वह जो अपने अश्रुधारसे उसे सींचे देरही है इस ओर उसने लक्ष्य नहीं किया ॥ २१ ॥

सरए सरम्मि पहिआ जलाइँ कन्दोट्टसुरहिगन्धाइँ।
धवलच्छाइँ सअण्हा पिअन्ति दइआण व मुहाइँ॥ २२॥
[शरदि सरसि पथिका जलानि नीलोत्पलसुरभिगन्धीनि।
धवलाच्छानि सतृष्णाः पिबन्ति दयितानामिव मुखानि॥]

शरद्में पथिक सरोवरमें नीलकमलके सुरभिगन्धयुक्त धवल एवं स्वच्छ जलको प्रियतमाओंके (अधरोंके) मुखके जैसा सतृष्ण होकर पान कर रहा है। ... नहीं दिखती॥ २२॥

मज्झण्णसरसासम्मि उवरिं पम्मामवग्गपगुरामा।
चडुम्मन्तम्मि अवे समुस्ससन्ति व्व रच्छाआ॥ २३॥
[अन्यान्यरतला उपरि ... ।
... अपि समुच्छ्वसन्तीव रथ्याः॥]

लोग आते-जाते रहते हैं। इस कारण अन्यान्यमें रस (जल) पुञ्ज एवं बाहर वायुके ... पर ... जैसे ... के रहे हैं (...) पर होनेपर की ... अनुरागिणी है)॥ २३॥

कुमुअपुण्डरीअवाअअ संठिआ वहइ रत्तइसे व्व।
छप्पअजुअलुप्पलकणिमपूरिअपद्दले पचे वहइ॥ २४॥
[कुमुदपुण्डरीकव्याजाभ्यां संस्थिता वहति रात्र्यवसितेव।
षट्पदयुगलोत्पलकर्णिकापूरितपक्षा रात्री वहति॥]
देखो रात्री अपने कुमुदवाली छायामें संस्थित रात्र्यवसितकी भाँति ... दूसरी ओरसे बनाते हुए पूर्णिमा ... लावण्य वहन कर रही है॥ २४॥

तह तेच्चिअ सा दिट्ठा तीअ वि तह तस्स पेसिआ दिट्ठी।
जह दोण्ह वि समअं चिअ णिव्वुत्तरआइँ जाआइँ॥ २५॥
[तथा तेनापि सा दृष्टा तयापि तथा तस्मै प्रेषिता दृष्टिः।
यथा द्वयोरपि सममेव निर्वृत्तरतौ जातौ॥]
वह रमणी उसके द्वारा उसी प्रकार देखी गई, एवं उस युवकके प्रति उस रमणीने भी उसी प्रकार दृष्टिपात किया जिससे एक ही साथ दोनोंका रतिसुख मिला॥ २५॥

णासग्गिअपरिसोसण कुवहलपत्तलमलुहारसंकेअ।
धोरण्णकलमकसमइ सिगइ मा वइ वि किलिकिलिसि॥ २६॥

[स्थूलवातिकापरितोषण निकुञ्जपत्रकरण सुलभसङ्केत ।
सौभाग्यकनककषपट्ट ग्रीष्म मा कथमपि क्षीणो भविष्यसि ॥]

हे ग्रीष्म, तुम छोटी वापिकाको सुखानेवाले हो, निकुञ्जवनके पत्तोंके उत्पादक हो, तुम्हारी उपस्थितिमें सङ्केतस्थान सुलभ होता है एवं तुम सौभाग्यसुवर्णकी कसौटी सदृश हो, तुम कभी क्षीण मत होना ॥ २६ ॥

दुस्सिक्खिअरअणपरिक्खएहिँ घिट्ठोसि पत्थरे ताव ।
जा तिलमेत्तं वट्टसि मरगअ का तुज्झ मुल्लकहा ॥ २७ ॥
[दुःशिक्षितरत्नपरीक्षकैर्घृष्टोऽसि प्रस्तरे तावत् ।
यावत्तिलमात्रं वर्तसे मरकत का तव मूल्यकथा ॥]

हे मरकत, अतत्त्वज्ञ रत्नपरीक्षक तुमको तबतक पत्थरपर घिसेंगे, जबतक तुम तिलभरमें पर्यवसित होओगे। अपने मूल्य निर्धारणकी बात तो दूर ही रही ॥ २७ ॥

जह चिन्तेइ परिअणो आसङ्कइ जह अ तस्स पडिवक्खो ।
बालेण वि गामणिणन्दणेण तह रक्खिआ पल्ली ॥ २८ ॥
[यथा चिन्तयति परिजन आशङ्कते यथा च तस्य प्रतिपक्षः ।
बालेनापि ग्रामणीनन्दनेन तथा रक्षिता पल्ली ॥]

उसके परिजन जिसप्रकार चिन्तातुर हुए थे एवं उसके शत्रुओंने जिस प्रकारकी आशङ्का प्रकट की थी—ग्रामनायकका पुत्र बालक होनेपर भी गाँवकी उसीप्रकार रक्षाकरनेमें समर्थ हुआ था ॥ २८ ॥

अण्णेसु पहिअ ! पुच्छसु वाहअपुत्तेसु पुसिअचम्माइं ।
अम्हं वाहजुआणो हरिणेसु धणुं ण णामेइ ॥ २९ ॥
[अन्येषु पथिक पृच्छ व्याधकपुत्रेषु पृषतचर्माणि ।
अस्माकं व्याधयुवा हरिणेषु धनुर्न नामयति ॥]

हे पथिक, तुम अन्यान्य व्याधवधुओंके यहाँ पृषत नामक चित्रमृगविशेषके चर्मके सम्बन्धमें पूछो। हमारे व्याधयुवा हरिणोंके ऊपर धनुष नहीं छोड़ते ॥

गअवहुवेहव्वअरो पुत्तो मे एक्ककण्डविणिवाई ।
तह सोण्हाइ पुलइओ जह कण्डकरण्डअं वहइ ॥ ३० ॥
[गजवधूवैधव्यकर पुत्रो मे एककाण्डविनिपाती ।
तथा स्नुषया प्रलोकितो यथा काण्डसमूहं वहति ॥]

मेरा दुख पहले केवल एक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था, किन्तु [illegible] ([illegible]) द्वारा [illegible] देखा जाता है कि अब [illegible] [illegible] केवल [illegible] है ॥ १० ॥

बिम्बाधरदष्टाकार्य पत्ती मा कुप्यस्व मामयी सखाय ।
पच्चक्खिविस्थे कर कह वि [illegible] ता [illegible] [illegible] ॥ ११ ॥
[बिम्बाधरोष्ठ[illegible] पत्नी मा कुप्य [illegible] [illegible] ।
मत्कुणीविशो यदि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

[illegible] यहीं [illegible] बिम्बाधर[illegible] [illegible] फिर [illegible] राग न [illegible] [illegible] [illegible] भी जीवित है, यदि [illegible] और [illegible] वह किसी प्रकार [illegible] दे तो [illegible] होगा ॥ ११ ॥

अप्पाहेइ मरन्ती पुत्तं पञ्जोवरि पमत्तेव ।
जह [illegible] जह तुम न [illegible] तह करेज्जासु ॥ १२ ॥
[[illegible] [illegible] पुत्रं [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

मरती [illegible] [illegible] सुमित्रा [illegible] पुत्रको [illegible] [illegible] दे रहा है—इस प्रकार [illegible] [illegible] कि मेरा [illegible] [illegible] कोई [illegible] [illegible] न करे ॥

[illegible] पिअअसस्मि ।
वेरम्मममप्पइनं [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १३ ॥
[[illegible] [illegible] प्रियतमे ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

प्रियतमके [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो गया ॥ १३ ॥

महुमच्छिआअ [illegible] [illegible] मुहं पिअस्स सूणाइं ।
ईसालुई पुलिन्दी [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १४ ॥
[मधुमक्षिका [illegible] [illegible] मुखं [illegible] ।
ईर्ष्यालु पुलिन्दी [illegible] [illegible]]

मधुमक्षिका द्वारा [illegible] प्रियतमके [illegible] हुए [illegible] [illegible] [illegible] देखकर ईर्ष्या[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुलिन्द[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १४ ॥

धण्णा वसन्ति णीसङ्कमोहणे वहलपत्तलवइम्मि ।
वाअन्दोलणओणविअवेणुगहणे गिरिग्गामे ॥ ३५ ॥
[धन्या वसन्ति निःशङ्कमोहने बहलपत्रलवृतौ ।
वातान्दोलनावनामितवेणुगहने गिरिग्रामे ॥]

जिस ग्राममें वृक्षकी बहलपत्रराजिद्वारा आवेष्टित स्थान है, जो वायुके झोंकेमें अवनमित वेणुवन द्वारा गहन है एवं जहाँ निःशङ्करूपसे सुरतसुख अनुभूत हो सकता है—ऐसे गिरिग्राममें धन्यपुरुष ही निवास करते हैं ॥३५॥

पप्फुल्लघणकलम्बा णिद्धोअसिलाअला मुइअमोरा ।
पसरन्तोज्झरमुहला ओसाहन्ते गिरिग्गामा ॥ ३६ ॥
[प्रोत्फुल्लघनकदम्बा निर्धौत शिलातला मुदितमयूरा ।
प्रसरन्निर्झरमुखरा उत्साहयन्ति गिरिग्रामा ॥]

जहाँपर घनसन्निविष्ट कदम्बवृक्ष पुष्पविकाससे उत्फुल्ल, शिलातलसमूह-जलद्वारा धौत, मयूरकुलआनन्दित एवं जो झरते हुए निर्झरसमूहसे मुखरित है—वे गिरिग्राम ही मनुष्यको प्रोत्साहित करते हैं ॥ ३६ ॥

तह परिमलिआ गोवेण तेण हत्थं पि जाण ओल्लेइ ।
स च्चिअ घेणू एर्ह्णि पेच्छसु कुडदोहिणी जाआ ॥ ३७ ॥
[तथा परिमलिता गोपेन तेन हस्तमपि या नार्द्रयति ।
सैव धेनुरिदानीं प्रेक्षस्व कुटदोहिणी जाता ॥]

देखो, जो धेनु पहले उस गोपद्वारा उस प्रकार दुहे जाकर भी उसके हाथको भी गीला नहीं कर पाती थी, वही घड़ा भरकर दूध दे रही है ॥ ३७ ॥

धवलो जिअइ तुह कए धवलस्स कए जिअन्ति गिट्ठीओ ।
जिअ तम्बे अम्ह वि जीविएण गोट्ठं तुमायत्त ॥ ३८ ॥
[धवलो जीवति तव कृते धवलस्य कृते जीवन्ति गृष्टय ।
जीव हे गौ अस्माकमपि जीवितेन गोष्ठ त्वदायत्तम् ॥]

हे धेनु, तुम्हारे ही सुखके लिए गोरा बैल प्राणधारण करता है एवं एकबार प्रसूता धेनुएँ भी उनके सुखके लिए जीवित हैं। तुम चची रहो, अपने जीवनद्वारा तुमने हमलोगोंके गोष्ठको अपने आधीन कर रखा है ॥ ३८ ॥

अग्घाइ छिवइ चुम्बइ ठेवइ हिअअम्मि जणिअरोमञ्चो ।
जाआकवोलसरिसं पेच्छइ पहिओ महुअपुप्फं ॥ ३९ ॥

[आश्लिष्यति स्पृशति चुम्बति स्थापयति हृदये कम्पितरोमाञ्चः ।
जायाकपोलसदृशं पश्यत पथिको मधूकपुष्पम् ॥]

देखो पथिक जायाके कपोलतुल्य मधूकपुष्पको चाहकर कभी छूते सूँघ रहा है सूँघता है कभी इसे चूम रहा है एवं कभी रोमाञ्चित शरीरसे इसे अपने हृदयस्थलपर धारण कर रहा है ॥ ४९ ॥

एअ मोडिअअर माई मुअंगपरिसीम [illegible] ।
ओग्गरपाणपसवामुप्पम सीसं वअमपम ॥ ५० ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

देखो [illegible] हाथी [illegible] बाला [illegible] इससे [illegible] पैदा कर रहा है ॥ ५० ॥

[illegible] मुअन्त मडुमर [illegible] पम्मलोडेण ।
[illegible] पामरो व्व [illegible] आसिविसि ॥ ५१ ॥
[[illegible] ।
[illegible] पामर इव [illegible] ॥]

हे मधुकर, [illegible] होकर [illegible] (कैथ) की [illegible] हुये तुम [illegible] पामर [illegible] पाओगे ॥

पिअन्ते मइलणपरम्मुहि [illegible] ।
सोर्ड व [illegible] ॥ ५२ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

देखो, [illegible] पानी [illegible] भी वैसे [illegible] निर्मल होरहा है ॥

मज्झे [illegible] ।
तेहि [illegible] एसम [illegible] ॥ ५३ ॥
[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] है कि [illegible] ॥ ५३ ॥

उअगअचउत्थिमङ्गलहोन्तविओअसविसेसलग्गेहिं ।
तीअ वरस्स अ सेअंसुपहिँ रुण्णं व हत्थेहिं ॥ ४४ ॥
[उपगतचतुर्थीमङ्गलभविष्यद्वियोगसविशेषलग्नाभ्याम् ।
तस्या वरस्य च स्वेदाश्रुभी रुदितमिव हस्ताभ्याम् ॥]

उपस्थित चतुर्थी मङ्गलके दिन भावीवियोगके भयसे विशेषरूपसे सश्लिष्ट वरवधूके दोनों हाथ जैसे पसीनेरूपी आँसू बहाकर रोरहे हैं ॥ ४४ ॥

ण अ दिट्ठिं णेइ मुहं ण अ छिविअं देइ णालवइ किं पि ।
तह वि हु किं पि रहस्सं णववहुसङ्गो पिओ होइ ॥ ४५ ॥
[न च दृष्टिं नयति मुखं न च स्प्रष्टुं ददाति नालपति किमपि ।
तथापि खलु किमपि रहस्यं नववधूसङ्गः प्रियो भवति ॥]

नवोढा स्वामीके मुखकी ओर दृष्टि नहीं डालती । अपनेको छूने भी नहीं देती और कुछ बोलती भी नहीं तब भी नवोढा जो लोगोंको प्यारी लगती है, इसका अपूर्व रहस्य है ॥ ४५ ॥

अलिअपसुत्तवलन्तम्मि णववरे णववहूअ वेवन्तो ।
संवेल्लिओरुसंजमिअवत्थगण्ठि गओ हत्थो ॥ ४६ ॥
[अलीकप्रसुप्तवलमाने नववरे नववध्वा वेपमानः ।
संवेल्लितोरुसंयमितवस्त्रग्रन्थिं गतो हस्तः ॥]

नये वरके झूठमूठ सोकर करवट बदलने पर नवोढाका हाथ काँपते-काँपते अन्योऽन्य संश्लेषित ऊरुयुगलद्वारा नियमित वस्त्रग्रन्थिकी ओर बढ़ जाता है ॥

पुच्छिज्जन्ती ण भणइ गहिआ पप्फुरइ चुम्बिआ रुअइ ।
तुण्हिक्का णववहुआ कआवराहेण उवऊढा ॥ ४७ ॥
[पृच्छ्यमाना न भणति गृहीता प्रस्फुरति चुम्बिता रोदिति ।
तूष्णीका नववधूः कृतापराधेनोपगूढा ॥]

कृतापराध नये वरद्वारा आलिङ्गित हो कर निर्वाक् नवोढा पूछी जानेपर जवाब नहीं देती, हाथद्वारा पकड़ी जानेपर रोती वा ऊपर-नीचे करती रहती है एव चूमी जानेपर रोती है ॥ ४७ ॥

तच्चो च्चिअ होन्ति कहा विअसन्ति तहिं तहिं समप्पन्ति ।
किं मण्णे माउच्छा एक्कजुआणो इमो गामो ॥ ४८ ॥

[तत्र एव जानासि यथा तिष्ठसि तत्र तत्र सत्त्वमस्ते ।
किं वर्णये मनुष्यत्व एव सुरलोके मम ॥]

हे सखी! जब प्रियतमके साथ ही बात आरम्भ होती है, बातें रहती हैं एवं उन्हींमें बात समाप्त हो जाती है, मुझे लगता है जैसे कि इन बातोंमें ही सुख वर्तमान है॥४८॥

जाणि वअणाणि अम्हे वि जम्पिमो ताइँ जम्पइ जणो वि ।
ताइँ चिअ तेण पजम्पिआइँ हिअअं सुहावेन्ति ॥ ४९ ॥
[यानि वचनान्यस्माभिरपि जल्प्यन्ते तानि जल्पति जनोऽपि ।
तान्येव तेन प्रजल्पितानि हृदयं सुखयन्ति ॥]

जो बातें हम लोग बोलते हैं, अन्य लोग भी उसे ही बोलते हैं, किन्तु वे ही बातें प्रियतम द्वारा बोली जानेपर मेरे हृदयमें सुख उत्पन्न करती हैं॥४९॥

सव्वंगीणं मम्मह पिअं अवं जइ सुहेण वा कज्जं ।
जं जस्स हिअअइट्ठं तं च सुहं जं तहिँ णत्थि ॥ ५० ॥
[सर्वांगीणं मन्मथ प्रियं वर्जं यदि सुखेन वा कार्यम् ।
यद्यस्य हृदयदयितं तत्र सुखं यन्न नास्ति ॥]

तुम लोगोंको यदि सुखसे प्रयोजन हो तो प्रियतमको छोड़ दो। कारण ऐसा हो नहीं सकता कि कोई ऐसा सुख हो जो व्यक्ति प्रिय व्यक्तिमें न हो॥५०॥

दीहण्णा तिहिसुमो विअसिअअण्णा मणहरउदो अत्ता ।
अहालम्बा सुरसुहो पिआ जणा पिअअमपिआ ॥ ५१ ॥
[दर्शनमये दीर्घप्रतिबिम्बमये मनोहरका खलु ।
दर्पणमया कुमुदमिव बाले प्रियतमका ॥]

वही बाला, देखनेमें दीर्घनयन विकसित होनेपर मनोहर एवं दर्पणमें प्रतिबिम्बित होनेपर कुमुद—इस प्रकार प्रियतम होनेवाली रमणीय रहते हैं॥५१॥

मज्झण्णम्मि परिगलिअमपीअम उण्हाहि परिवसा ।
अम्हे तव तरलमोहर व्व उअरे पिअम पिअलव्व ॥ ५२ ॥
[मध्याह्ने परिगलितपीतम उष्णा परितप्ता ।
वयं तव तरलमोहरा इव प्रिय पिबन्ति ॥]—

हमलोग तो, लेकिन, स्थानच्युत, पीनत्वविहीन एव उन्नतिमे वञ्चित वृद्धाके स्तनकी भाँति केवल उदरपोषण के लिए यत्नशील हैं ॥ ५२ ॥

पच्चूसागअ रञ्जिअदेह पिआलोअ लोअणाणन्द ।
अण्णत्त खविअसव्वरि णहभूसण दिणवइ णमो दे ॥ ५३ ॥

[प्रत्यूषागत रक्तदेह प्रियालोक लोचनानन्द ।
अन्यत्र क्षपितशर्वरीक नभोभूषण दिनपते नमस्ते ॥]

हे सूर्य, तुम्हें नमस्कार करती हूँ—तुम प्रात काल आते हो, तुम्हारा शरीर रक्तिम है, तुम्हारा प्रकाश प्रिय लगता है, तुम आनन्दविधायक हो, तुमने दूसरे देशमें रात बिताया है एव तुम आकाश मण्डलके भूषण हो ॥ ५३ ॥

विवरीअसुरअलेहल पुच्छसि मह कीस गब्भसंभूइं ।
ओअत्ते कुम्भमुहे जललवकणिआ वि किं ठाइ ॥ ५४ ॥

[विपरीतसुरतलम्पट पृच्छसि मम किमिति गर्भसमूतिम् ।
अपवृत्ते कुम्भमुखे जललवकणिकापि किं तिष्ठति ॥]

हे विपरीत-सुरत-लुब्ध, मेरे गर्भके विषयमें क्यों पूछते हो ? नीचे की ओर मुख अवनत होने पर भी क्या कुम्भमें जलबिन्दु-कण भी टिक सकता है ? ॥ ५४ ॥

अच्चासण्णविवाहे समं जसोआइ तरुणगोवीहिं ।
वड्ढन्ते महुमहणे संबन्धा णिण्हुविज्जन्ति ॥ ५५ ॥

[अत्यासन्नविवाहे सम यशोदया तरुणगोपीभि ।
वर्धमाने मधुमथने सबन्धा निह्नूयन्ते ॥]

मधुसूदनकी वय वृद्धि पर, जब उनका विवाह समय एकदम निकट आ गया, तब तरुण गोपियोंने यशोदासे अपना उनका सम्बन्ध छिपा लिया ॥५५॥

जं जं आलिहइ मणो आसावट्टीहिँ हिअअफलअम्मि ।
त तं बालो व्व विही णिहुअं हसिऊण पम्हुसइ ॥ ५६ ॥

[यद्यदालिखति मन आशावर्तिकाभिर्हृदयफलके
तत्तद्बाल इव विधिर्निभृत हसित्वा प्रोञ्छति ॥]

मन आशारूप तूलिकासे हृदयरूप फलकपर जो जो चित्र अङ्कित कर रहा है, बच्चों की भाँति विधि सङ्गोपनसे वे सारे चित्र पोंछते जा रहे हैं ॥ ५६ ॥

मउदुत्तो करफंसो सामसअआपुण्ण पुण्णिमदम्मि।
पीअसहरिसअम पढि तुह चन्दिमा बहले ॥ ५७ ॥
[मधुरक करस्पर्शः सामस्त्यकलापूर्णः पूर्णिमायाम्।
द्वितीयाचन्द्रमस्य रागमी तव चन्द्रिका भवती ॥]

हे चन्द्रकलापूर्णे, पूर्णिमाके दिन तुम्हारे कामल संस्पर्श अनुरक्त हुआ है। यही चन्द्र द्वितीया (तिथि एवं रमणी) के संयोगसे तुम बलवान हुए हो पर हो—तुम्हारे चर ने की कल्पना कर रही हूँ ॥ ५७ ॥

दूरन्तरिए वि पिए कह वि पिअसहीएँ मअण पअणाएँ।
हिअअं उअ तेण सरं मरउ वि अणिवारिअं भमइ ॥ ५८ ॥
[दूरान्तरितेऽपि प्रिये कथमपि प्रियसख्या मम मदने।
हृदयं दुःखेन समस्तमप्यनिवारितं भ्रमति ॥]

प्रियतमके दूरस्थ रहने पर भी मैंने किसी प्रकार सखियोंको तो धैर्य दिया, किन्तु मेरा हृदय कभी भी उसके साथ-साथ अबाध रूपमें घूम रहा है ॥ ५८ ॥

तस्स वअणाम्बरए सद्दामन्तणपमासरिअच्छीए।
मउहत्तोमणअम्मिरि पअकम कि पअसिहिसि ॥ ५९ ॥
[तस्य वचनाम्बरितो शब्दामन्त्रणप्रसारिताक्ष्याः।
मंजुलकोमलमनसा कि करणीया कि करिष्यसे ॥]

तुम उसकी बात करते ही तिरछीन हो जाती हो, उसके कानोंमें मुझसे ही कोप क्रोध ऐसी हो एवं उसे सामने देखकर काँप जाती हो—नायिका होकेर तुम क्या करोगी ! ॥ ५९ ॥

भरवासिपवीढआवणालिअमअणअणविदुमअनरथहरा।
तवसिहरेसु विरंमा गइ कह पि लहन्ति संठाणं ॥ ६० ॥
[भरवमितपीठाभवणालितरणमनिविद्रुमवस्त्रहरा।
तपशिखरेषु विरंमा गर्व कथमपि लभन्ते संस्थानम् ॥]

भरसे कांपते हुवे हुए पीठासनमालाके भवनादि स्थापित हो जाएंगा बालुकसे कल्पित कर तपशिखरोंपर यही विश्रामस्थान स्थान प्राप्त कर रहे हैं ॥ ६० ॥

महारमहुप्पणअपरिहिम्मार जं च पंसमा ढि सविसेसं।
मसह महामिदि बहुसिसिव्वरि सि मत आह मणुसिहि ॥ ६१ ॥

[अधरमधुपानलालसया यच्च रमितोऽसि सविशेषम् ।
असती अलज्जाशीला बहुशिक्षितेति मा नाथ मंस्थाः ॥]

हे नाथ, अपने अधरमधुपानकी लालसासे तुम जो विशिष्टभावसे रमित हुए हो—इस कारण मुझे असती, लज्जाविहीना एवं बहुविधशिक्षिता मत समझना ॥ ६१ ॥

खाणेण अ पाणेण अ तह गहिओ मण्डलो अडअणाए ।
जह जार अहिणन्दइ भुक्कइ घरसामिए एन्ते ॥ ६२ ॥
[खादनेन च पानेन च तथा गृहीतो मण्डलोऽसत्या ।
यथा जारमभिनन्दति भुक्कति गृहस्वामिन्येति ॥]

स्वेच्छाचारिणीने आहार एवं पानद्वारा कुत्तेको इस प्रकार वशीभूत कर लिया है कि वह जारको आते देख अभिनन्दन करता है और गृहस्वामीको आते देख भूँक उठता है ॥ ६२ ॥

कण्डन्तेण अकण्ड पल्लीमज्झम्मि विअडकोअण्डं ।
पइमरणाहिँ वि अहिअं वाहेण रुआविआ अत्ता ॥ ६३ ॥
[कण्डूयता अकाण्डे पल्लीमध्ये विकटकोदण्डम् ।
पतिमरणादप्यधिक व्याधेन रोदिता श्वश्रूः ॥]

गाँवके बीचोबीच व्याध अनायास ही अपने भारसे युक्त धनुषको तनुकरने-की चेष्टाकर सासको पतिके मरनेकी अपेक्षा अधिक रुलाया है ॥ ६३ ॥

अम्हे उज्जुअसीला पिओ वि पिअसहि विआरपरिओसो ।
ण हु अण्णा का वि गई वाहोहा कहँ पुसिज्जन्तु ॥ ६४ ॥
[वय ऋजुकशीला प्रियोऽपि प्रियसखि विकारपरितोष ।
न खल्वन्या कापि गतिर्बाष्पौघाः कथ प्रोञ्छ्यन्ताम् ॥]

अरी प्यारी सखी हम मरणशील हैं, फिर भी प्रियतमके हावभावादि विकारोंसे सन्तुष्ट रहते हैं। कोई दूसरा उपाय नहीं है, किस प्रकार बाष्प-प्रवाहको पोंछ डालूँ ॥ ६४ ॥

धवलो सि जइ वि सुन्दर तह वि तुए मज्झ रञ्जिअं हिअअं ।
राअभरिए वि हिअए सुहअ णिहित्तो ण रत्तो सि ॥ ६५ ॥
[धवलोऽसि यद्यपि सुन्दर तथापि त्वया मम रञ्जित हृदयम् ।
रागभृतेऽपि हृदये सुभग निहितो न रक्तोऽसि ॥]

हे सुन्दर तुम चोर हो फिर भी तुमने मेरे हृदयको रागान्वित कर दिया है और हे सुभग मेरे रागपूर्ण हृदयमें रहकर भी तुम रञ्जित नहीं हो रहे हो ॥ ५५ ॥

वज्जपुडणदमविमाणिअमइरारसेण सित्तदेहस्स ।
भीरस्स मग्गलग्गं पच्छण्णं भमइ भमरउलं ॥ ५६ ॥
[वज्रपुटपतनविमानितमदिरारसेन सिक्तदेहस्य ।
भीरस्य मार्गलग्नं प्रच्छन्नं भ्रमति भ्रमरकुलम् ॥]

भ्रमरोंके आघातसे गिरे हुए आमके रससे भीगे हुए डरपोक चोरके मार्गमें लगकर प्रच्छन्न भ्रमरकुल घूम रहा है ॥ ५६ ॥

जत्थ विमस्सइ मत्ता जत्थ मई जत्थ परिअणो सामण्णो ।
पत्थिअ रत्तीअ पअ मा मई समग्गे विमज्जिहिसि ॥ ५७ ॥
[यत्र विश्राम्यति मधूकवृक्षस्य परिजनः सकलः ।
पथिक रात्र्यन्धक मा मम ग्रामे निमङ्क्ष्यसि ॥]

जहाँपर सास विलम्बवाली खाटोंमें सब रहती हैं जहाँपर मैं और जहाँपर सारे परिजन सोते हैं। अरे रतौंधी रोगके मारे हुए राहगीर, तुम कहीं मेरी खाटमें गिर न हो जाना ॥ ५७ ॥

परिमोअसुत्तपाई सुरएसु करन्ति जाई सोक्खाई ।
ताई चिअ कण विरहे खाअमिअव्वाइँ कीरन्ति ॥ ५८ ॥
[परितोषसूत्रपातानि सुरतेषु कुर्वन्ति यानि सौख्यानि ।
तान्येव दुर्दिने कपितोद्भिन्नानि क्रियन्ते ॥]

रतिकालमें सुरतव्यापारमें जिनको परितोषसूत्रपात अनुभव करती है, विरहकालमें वही दुःखरूपमें परिणत होनेके कारण उसकी प्रतीति होती है ॥ ५८ ॥

मल्लं चिअम ण्हाअन्तो हत्थे पीलुव्वाअवं पअसाणं ।
डमिअत्थो भमइ वरे अमुव्वअपरिपेच्छुओ व्व ॥ ५९ ॥
[मार्जितवाताक्रान्तो हस्ते पीलितकपोले चामरे ।
वसितो भ्रमति मधुमासपरिपेच्छुक इव ॥]

जीभ सूर्ये वस्त्र रस्सीसे जीभ मार्ग न पानेके कारण ही हार जैसे मधुमा नहींके पेड़की भाँति इधर-उधर डोल रहा है ॥ ५९ ॥

पक्केण वि वडवीअङ्कुरेण सअलवणराइमज्झम्मि ।
तह तेण कओ अप्पा जह सेसदुमा तले तस्स ॥ ७० ॥

[एकेनापिवटवीजाङ्कुरेण सकलवनराजिमध्ये ।
तथा तेन कृत आत्मा यथा शेषद्रुमास्तले तस्य ॥]

सारे वनों में वटवृक्षके उस एक बीजाङ्कुरने अपनेको ऐसा कर डाला है कि अवशिष्ट द्रुम उसके नीचे पड़े हुए हैं ॥ ७० ॥

जे जे गुणिणो जे जे अ चाइणो जे विडड्ढविण्णाणा ।
दारिद्द रे विअक्खण ताणँ तुमं साणुराओ सि ॥ ७१ ॥

[ये ये गुणिनो ये ये च यत्यागिनो ये विदग्धविज्ञाना ।
दारिद्य रे विचक्षण तेषां त्व सानुरागमसि ॥]

जो जो गुणी हैं, जो-जो दाता हैं एव जो जो विज्ञानमें निपुण हैं, अरे विचक्षणदारिद्य, तुम उनके प्रति अनुरक्त हो जाते हो ? ॥ ७१ ॥

जइ कोत्तिओ सि सुन्दर सअलतिहीचंददंसणसुहाणं ।
ता मसिणं मोइज्जन्तकञ्चुअं पेक्खसु मुहं से ॥ ७२ ॥

[यदि कौतुकिकोऽसि सुन्दर सकलतिथिचन्द्रदर्शनसुखानाम् ।
सन्मसृण मोच्यमानकञ्चुक प्रेक्षस्व मुख तस्या ॥]

हे सुन्दर, यदि सारी तिथियोंके चन्द्रको देख आनन्दसम्बन्धी कुतूहल दूर करना चाहते हो तो धीरे-धीरे कञ्चुक खोलनेके समय परिहरयमान उस नायिकाके मुखदेको देखो ॥ ७२ ॥

समविसमणिव्विसेसा समन्तओ मन्दमन्दसंआरा ।
अइरा होहिन्ति पहा मणोरहाणं पि दुलङ्घा ॥ ७३ ॥

[समविषमनिर्विशेषा समन्ततो मन्द मन्दसञ्चारा ।
अचिराद्भविष्यन्ति पन्थानो मनोरथानामपि दुर्लङ्घ्या ॥]

थोड़े ही दिनोंमें सर्वत्र मार्गोंकी यह अवस्था होगी कि समविषमस्थलोंका पता नहीं चलेगा, एव वहाँ पर आना-जाना भी धीरे धीरे होगा, यहाँतक कि वह सब मनोरथके चलनेके योग्य भी नहीं रह जायगा ॥ ७३ ॥

अइदीहराइँ चहुप सीसे दीसन्ति वंसवत्ताइं ।
भणिए भणामि अत्ता तुम्हाणँ वि पण्डुरा पुट्ठी ॥ ७४ ॥

[[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

अरी [illegible] [illegible] है, [illegible] कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दिख रहे हैं वो मैं [illegible] कि [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] दिख रही है ॥ [illegible] ॥

[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] पुत्तअ [illegible] [illegible] ॥ ७५ ॥
[[illegible] [illegible] ।
[illegible] पुत्रक [illegible] [illegible] ॥]

हे पुत्रक, [illegible] हो [illegible] और दूसरे ही [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं ॥ ७५ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तुज्झ [illegible] ।
तुज्झं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ७६ ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
तुभ्यं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही [illegible] है, [illegible] प्रकार यह [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] हुए [illegible] तुम्हारे [illegible] [illegible] ही [illegible] रही है ॥ [illegible] ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ [illegible] ॥
[[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] कि [illegible] ॥]

अरी [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं होती ! [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] ? ॥ [illegible] ॥

[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ७८ ॥

[[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥]

अरी मुग्धे, प्रवालाङ्कुर वर्णकी भाँति रक्तिम, अपने हाथसे जो धातुराग घुलगया है, यह विश्वास न कर तुम पुन दोनों हाथोंको क्यों धो रही हो ? ॥ ७८ ॥

उअ सिन्धवपव्वअसच्छहाइँ धुअतूलपुञ्जसरिसाइं ।
सोहन्ति सुअणु मुक्कोअआइं सरए सिअब्भाइं ॥ ७९ ॥

[पश्य सैन्धवपर्वतसदृशाणि धुततूलपुञ्जसदृशानि ।
शोभन्ते सुतनु मुक्तोदकानि शरदि सिताभ्राणि ॥]

हे सुतनु, देखो, शरदमें सैन्धवपर्वतकी भाँति प्रतीयमान एवं कम्पित तूलपुञ्जकी आकृतिविशेषसे मुक्तजल श्वेत मेघ शोभित हो रहे हैं ॥ ७९ ॥

आउच्छन्ति सिरेहिँ विवलिएहिँ उअ खअडिएहिँ णिज्जन्ता ।
णिप्पच्छिमचलिअपलोइएहिँ महिसा कुडङ्गाइं ॥ ८० ॥

[आपृच्छन्ति शिरोभिर्विवलितैः पश्य खड्गिकैर्नीयमाना ।
निःपश्चिमवलितप्रलोकितैर्महिषाः कुञ्जान् ॥]

खड्गधारी शौनिकों (मांसविक्रेताओं अथवा कसाइयों) द्वारा ले जाते हुए बैल विह्वलमस्तक हो नयनोंसे अन्तिम बार मुड़कर देखते हुए कुञ्जोंसे विदाई ले रहे हैं (अब कुञ्ज निरापद हो गए हैं ।) ॥ ८० ॥

पुसउ मुहं ता पुत्ति अ वाहोअरणं विसेसरमणिज्जं ।
मा एअं चिअ मुहमण्डण त्ति सो काहिइ पुणो वि ॥ ८१ ॥

[प्रोञ्छस्व मुखं तत्पुत्ति च (पुत्रिके) वाष्पोत्करण विशेषरमणीयम् ।
मा इदमेव मुखमण्डनमिति करिष्यसि पुनरपि ॥]

अरी बेटी, आँसू बहानेवाले विशेष रमणीय अपने मुखड़ेको पोंछ डालो । देखो, वह फिर कहीं यह न समझ ले कि यह मुखका श्रृङ्गार है ॥ ८१ ॥

मज्झे पअणुअपङ्कं अवहोवासेसु साणचिक्खिल्लं ।
गामस्स सीससीमन्तअं व रच्छामुहं जाअं ॥ ८२ ॥

[मध्ये प्रतनुक पङ्कमुभयो पार्श्वयोः श्यानकर्दमम् ।
ग्रामस्य शीर्षसीमन्तमिव रथ्यामुख जातम् ॥]

गाँवका रास्ता, बीचमें स्वल्पपङ्क एवं दोनों ओर शुष्कपङ्क धारणकर इसके शीर्षगत सीमन्त जैसा प्रतीत हो रहा है ॥ ८२ ॥

[illegible] विडपेर [illegible]।
[illegible] ॥ ८३ ॥

[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] ([illegible]) [illegible]
[illegible] ॥ १ ॥

[illegible] ।
[illegible] समुस्सवार ॥ ८४ ॥

[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] है। [illegible]
[illegible] है ॥ १ ॥

आअर्स तेण तुमं पत्तो [illegible] ।
[illegible] ॥ ८५ ॥

[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible] ([illegible]) [illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ ८५ ॥

मा [illegible] वीसम्मं इमाएँ [illegible] ।
[illegible] ॥ ८६ ॥

[[illegible] ।
[illegible] ॥]

[illegible]
[illegible] ॥ १ ॥

[illegible] ।
[illegible] परिसमम्मं [illegible] मे [illegible] ॥ ८७ ॥

[अन्यग्रामप्रस्थिता कर्षयन्ती मण्डलानां पङ्क्तिम् ।
अखण्डितसौभाग्या वर्षशत जीवतु मे शुनी ॥]

कुत्तोंके दलको आकृष्टकर दूसरे गाँव में आ बसनेवाली मेरी कुतिया अखण्डसौभाग्यवती हो, सौ वर्ष तक जीवित रहे ॥ ८७ ॥

सच्चं साहसु देअर तह तह चडुआरएण सुणएण ।
णिव्वत्तिअकज्जपरम्मुहत्तणं सिक्खिअं कत्तो ॥ ८८ ॥

[सत्य कथय देवर तथा तथा चाटुकारकेण शुनकेन ।
निर्वर्तितकार्यपराङ्मुखत्व शिक्षित कस्मात् ॥]

हे देवर, सच बताओ तो—सभी प्रकार चापलूसीकर कुत्ता जो काम समाप्त होने पर पराङ्मुख हो जाता है, यह उसने किससे सीखा है अर्थात् तुम्हीं से सीखा है ॥ ८८ ॥

णिप्पण्णसस्सरिद्धी सच्छन्दं गाइ पामरो सरए ।
दलिअणवसालितण्डुलधवलमिअङ्कासु राईसु ॥ ८९ ॥

[निष्पन्नसस्यऋद्धि स्वच्छन्द गायति पामर शरदि ।
दलितनवशालितण्डुलधवलमृगाङ्कासु रात्रिषु ॥]

शरत्कालमें दलित नये शालिधान्यके तन्दुलके समान धवलचन्द्र शोभित विभावरीमें, पामर हालिक प्रचुर शस्यसम्पद पाकर आनन्दमें गा रहा है ॥८९॥

अलिहिज्जइ पङ्कअले हलालिचलणेण कलमगोवीए ।
केआरसोअरुम्भणतंसट्ठिअ कोमलो चलणो ॥ ९० ॥

[आलिख्यते पङ्कतले हलालिचलनेन कलमगोप्याः ।
केदारस्रोतोवरोधतिर्यक् स्थितः कोमलश्चरण ॥]

(पूर्वापर) केदारस्रोतके अवरोधवश तिरछे खड़ी कलम गोपीके कोमल चरणचिह्न इस वर्ष हलरेखाके खींचे जाते समय कीचड़में खींच डाले जा रहे हैं ॥ ९० ॥

दिअहे दिअहे सूसइ सङ्केअअभङ्गवड्ढिआसङ्का ।
आवण्डुणअमुही कलमेण समं कलमगोवी ॥ ९१ ॥

[दिवसे दिवसे शुष्यति सङ्केतकभङ्गवर्धिताशङ्का ।
आपाण्डुरावनतमुखी कलमेन सम कलमगोपी ॥]

(कमल पीनवाली) बहुतमनकी आकृति बढ़ानेवाला कमलोंकी कमलके साथ-साथ सम्पूर्ण एवं कमलकुमुदी हो दिनों-दिन सूखती जा रही है ॥ ११ ॥

मअरद्धिमएण हत्थपासेण बंधुर पारद्धरीओ ।
मोत्तम्मे ओसमपगमहसिम मअदाणसित्ती मुत्ता ॥ १२ ॥

[मकरध्वजेन सत्र करेण बद्धा मकरदानिसाय ।
मोच्यन्ते मोक्षपयोदरपद्मिनी मुक्ता ॥]

मकरपरिसर्पोंसे (मोक्ष रखनेवालियोंसे) देवता बढ़ीय सभी निर्मल विलास ओसरसिम मोक्ष करनेसे समय हो जलाशय देखने लग रहे हैं ॥ १२ ॥

बहुल हरिणीहिं पीसे कअचूरण हत्थिणो ।
मसरीधरसमम्मं तुसारवअडे सिवाअरेवे ॥ १३ ॥

[बहुधा हरिणदीर्घ मसारीसितिमिवे हस्तिम ।
मसारीसदृशमार्ग तुषारवर्षे शिवरेखे ॥]

तुषारपात विस्ते वेतमें बहनोंसे हरिणवर्ण एवं दीर्घ तालवनोंके देख मारक्षक विलास देखुक नहीं होते । १३ ॥

कहेंचिओ व्व निअए कण्णं कण्णं कमो व्व पीओ व्व ।
वासअणमम्मि सम्भा परजुगलजुवेण पडिपत्व ॥ १४ ॥

[कथंचित् इव पीतो कर्णं कर्णं कृत इव पीत इव
वर्षाकाले मार्गं युगलनिवृत्तेन प्रतिपन्न ॥]

वर्षाकालमें मार्गी युवयुवती एक दूसरेका वदित आगे उसके जीवित पर बचता आगे कुचले-कुचले आ जाता मानो पर्यन्त तक चल रहा है ॥ १४ ॥

धण्णा वहिरा अन्धा ते विअ जीअन्ति माणुसे लोए ।
ण सुणन्ति पिसुणवअणं खलाणँ रिद्धिं ण पेच्छन्ति ॥ १५ ॥

[धन्या बधिरा अन्धास्त एव जीवन्ति मानुषे लोके ।
न शृण्वन्ति पिशुनवचनं खलानामृद्धिं न प्रेक्षन्ते ॥]

जो बहरे हैं एवं जो अन्धे हैं वे ही धन्य हैं जीवित हैं, कारण, वे ही [illegible] दुष्टोंकी भी सुनते नहीं एवं उनकी समृद्धि भी नहीं देखते ॥ १५ ॥

एण्हि वारेइ जणो तइआ मूहल्लओ कहिं व्व गओ।
जाहे विसं व्व जाअं सव्वङ्गपहोलिरं पेम्म ॥ ९६ ॥

[इदानीं वारयति जनस्तदा मूकः कुत्रापि वा गतः ।
यदा विषमिव जातं सर्वाङ्गघूर्णितं प्रेम ॥]

जब प्रेम विषकी भाँति सभी अङ्गोंमें व्याप्त हो गया था, तब सभी मूक हो गए थे—अब सभी मना कर रहे हैं ॥ ९६ ॥

कहँ तंपि तुइ ण णाअं जह सा आसन्दिआणँ बहुआणं।
काऊण उच्चयचिअं तुह दंसणलेहला पडिआ ॥ ९७ ॥

[कथं तदपि त्वया न ज्ञातं यथा सा आसन्दिकानां बहूनाम् ।
कृत्वा उच्चावचिकां तव दर्शनलाम्पटा पतिता ॥]

तुम क्या यह भी नहीं जानते कि तुम्हारे दर्शनलालसासे अभिभूत हो वह (नायिका) अनेक आसन्दिका (बेंतके आसन या छोटी खाट) द्वारा बनायी हुई ऊँची सिढ़ी से गिर पड़ी है ॥ ९७ ॥

चोराणँ कामुआणँ अ पामरपहिआणँ कुक्कुडो वअइ।
रे रमह वहह वाहयह एत्थ तणुआअए रअणी ॥ ९८ ॥

[चौरान्कामुकांश्च पामरपथिकांश्च कुक्कुटो वदति ।
रे रमत वहत वाहयत अत्र तन्वी भवति रजनी ॥]

'अब रात थोड़ी ही बची है' यह सूचितकर मुर्गा चोरों, कामुकों एवं पथिकों से क्रमानुसार 'लेते रहो' 'रमणमें मस्त होओ' एवं (गाड़ी) 'चलाते रहो' कह दे रहा है ॥ ९८ ॥

अण्णोण्णकडक्खन्तरपेसिअमेलीणदिट्ठिपसराण।
दो च्चिअ मण्णे कअभण्डणाइँ समअं पहसिआइं ॥ ९९ ॥

[अन्योन्यकटाक्षान्तरप्रेषितमिलितदृष्टिप्रसरौ ।
द्वावपि मन्ये कृतकलहौ समकं प्रहसितौ ॥]

एक दूसरेके प्रति एक दूसरेके कटाक्षसे प्रेरित दृष्टियोंके मिल जानेसे ऐसा प्रतीत होता है कि कलह करनेवाले दोनों एक साथ ही हँस पड़े थे ॥९९॥

संझागहिअजलञ्जलिपडिमासङ्कन्तगोरिमुहकमलं।
अलिअं चिअ फुरिओट्ठ विअलिअमन्त हरं णमह ॥ १०० ॥

[संध्यागृहीतजलाञ्जलिप्रतिमासंक्रान्तगौरीमुखकमलम् ।
अलीकमेव स्फुरितोष्ठं विगलितमन्त्रं हरं नमत ॥]

संध्याकालीन जलाञ्जलिमें प्रतिबिम्बित गौरीका मुखकमल देखकर, मन्त्रोच्चारणरहित होनेपर भी मिथ्यारूपसे ओठोंको फड़कानेवाले (हिलानेवाले) हरको नमस्कार करें ॥ १ ॥

इय सिरि हालविरइए पाउअकव्वम्मि सत्तसए ।
सत्तमसअं समत्तं गाहाणं सहावरमणिज्जं ॥ १ १ ॥

[इति श्रीहालविरचिते प्राकृतकाव्ये सप्तशते ।
सप्तमशतं समाप्तं गाथानां स्वभावरमणीयम् ॥]

इसी प्रकार श्रीहाल (नरपाल) विरचित सतसई नामक प्राकृत-स्वभावरमणीय सप्तमशतक समाप्त हुआ ॥ १ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

परिशिष्ट (क)

गाथानुक्रमणिकादि

गाथा	सन्दर्भ	पाठ
अइ उज्जुए	सर्वांग सुगन्धित	७।७७
अइ कोवणा	दुष्ट मास	५।९३
अइ दिअर	अर्द्धचन्द्र	६।७०
अइ दीहराइँ	व्यभिचारिणी	७।७८
अउलीणो दोमुहओ	दो मुँहे	३।५३
अकअण्णुअ घण	बेंतकुञ्ज	६।९९
अकअण्णुअ तुज्झ	अकृतघ्न	५।४५
अक्खडइ पिया	द्वेषाग्नि	१।४४
अगणिअजणाव	लोकापवाद	५।८४
अगणि अमेस	लोकमर्यादा	१।५७
अग्घाइ छिवइ	मधूकपुष्प	७।३०
अङ्गाण सणुआरम	शीलभङ्ग	८।४८
अग्गामण्णविवाहे	सरणगोपी	७।५५
अच्छउ ता जणवाओ	मन्द स्नेह	३।१
अच्छउ दाव	उत्सुकता	२।६८
अच्छीइँ ता थइस्सं	दो-ना	४।१४
अच्छेर व णिहि	विषला	२।२५
अच्छोडिअवत्थ	प्रस्थानशीला	२।६०
अज्जम णाहं	अम्ब	२।८४
अज्ज मए गमो वि	व्याध वधू	२।१०
अज्ज गओत्ति	रेखाङ्कन	३।८
अज्ज मए गन्तव्वं	अभिसार	३।४९
अज्ज मए तेण	प्रतिध्वनि	२।२०
अज्ज पि ताव	सशय	३।२
अज्जमोहण	हल्कि	४।६०
अज्ज म्हि हासिआ	मनोरमन	३।६४
अज्ज वि वालो	रहस्यमय	२।१२
अज्ज च्चेअ पउत्थो अज्ज	सूना	२।९०
अज्ज च्चेअ पउत्थो उज्जा	चौर रति	१।५८
अज्ज सहि केण	संवेदना	४।८१

गाथा	सन्दर्भ	पाठ
अज्जाइ णील	स्तन	४।९५
अज्जाएँ णवणह	नखक्षत	२।५०
अणउल विअ	अनुकूल वचन	६।२३
अणुणअपसाइ आए	अगण्य अपराध	३।७७
अणुदिअहवड्ढि	आदर	३।६६
अणुमरणपत्थिआए	सुहाग	७।३३
अणुवत्तण	कुलीनता	३।६१
अणुहुत्तो	कृशाङ्ग	७।२७
अण्णग्गामपउत्था	कुटिया	७।८७
अण्णण्ण कुसुम	रसलोभी	२।३९
अण्णमहिला	रूपगर्विता	२।४८
अण्ण पि किं पि	पराधीन	६।०
अण्णह ण तीरइ	उपचार	४।४१
अण्णाणं वि होन्ति	भ्रूविलास	५।७०
अण्णावराह	द्वेषभाव	५।८८
अण्णासआइँ	विरोधाभास	२।२३
अण्णेसु पहिअ	शिकारी	७।२०
अण्णो को वि	निरस सरस	५।३०
अण्णोण्णकडक्ख	कटाक्ष दृष्टि	७।१९
अत्ता सह	आशङ्का	१।८
अत्थक्करूसणं	स्नेह-पदवी	७।७५
अद्दसणेण पुत्तअ	स्नेहानुबन्ध	३।३६
अद्दसणेण पेम्म	दुराव	२।८१
अद्दसणेण महिला	प्रेमलीला	१।८२
अद्धच्छिपेच्छिअ	मुग्धा	३।२५
अतो हुत्त हसइ	विधुर	४।७३
अन्धअरबोरपत्त	ईर्ष्यापरायण	३।४०
अप्पाहुप्पन्तं	त्रिविक्रम	५।११
अप्पच्छन्दपहाविर	मृगतृष्णा	३।२
अप्पत्तपत्तअ	असन्तुलित	३।४१

—

परिशिष्ट (ख)

कवि एवं कवयित्री

गा	क्र.	पीतांबर	भुवनपाल
१	१	शालिवाहन	हाल
"	२	०	०
"	३	हाल कु	पोट्टिस
"	४	पोट्टिस, वोट्टिस कु	मातृराज
"	५	त्रिलोक, चुल्लोह कु	चलोदय
"	६	मकरन्द	मकरन्दसेन
"	७	प्रवरराज, अमरराज कु	०
"	८	कुमारिल	कुमारिल
"	०	०	नरिभूपाल
"	१०	अर्णव, गिरिराज कु	दुर्गस्वामिन्
"	११	०	दुर्गस्वामिन्
"	१२	दुर्गास्वामिन	०
"	१३	हाल कु ग	हाल
"	१४	मीनस्वामिन्, मु ग	०
"	१५	गजसिंह	रुद्रगुप्त
"	१६	शालिवाहन	श्री शातवाहन
"	१७	०	श्रीवर्मण
"	१८	०	श्रीवर्मण
"	१९	गज	गुण
"	२०	चन्द्रस्वामिन	सर्प
"	२१	कलिराज	कलिंग
"	२२	०	मधुराग
"	२३	मकरन्द	मेघांधकार
"	२४	ब्रह्मचारिन्	ब्रह्मचारिन्
"	२५	कालस्मार.	कालसार
१	२६	अर्धगव्य	वत्सराज
"	२७	कुमार	वत्सराज
"	२८	प्रगाम	कुणाल
"	२९	गुल्याल	०
"	३०	हरिजन	हरिराज
"	३१	अगराज	पावनिराज
"	३२	योगिप	भोज
"	३३	मनाग	मनगदेव
"	३४	अनग	रविराज
"	३५	शालिवाहन	हाल
"	३६	मलोक	माहिल
"	३७	अवटक	अम्बक
"	३८	०	चुल्लोदय
"	३९	पविराज	विन्ध्य
"	४०	०	मुग्ध
"	४१	नाथा	रोहा
"	४२	वल्लभ	वल्लभ
"	४३	अमृग	वीरसिंह
"	४४	रविराज	पक्षिराज
"	४५	प्रवरराज	प्रवरराज
"	४६	रूप	मेघट
"	४७	सिंह	साहल
"	४८	अनिरुद्ध	अनिरुद्ध
"	४९	सुरभवत्सल	सुरभवत्स
"	५०	रवगवर्म	गजवर्म
"	५१	हाल	हाल
"	५२	केशार	केरल
"	५३	मन्मथ	षण्मुख
"	५४	कर्ण	कर्णराज
"	५५	कुसुमायुध	कुसुमायुध

पा. श्लो. पीतांबर	मुद्रितपाठ
१ ५१ समाज	पुरुषित
५० समाप	(पशुपति)
५ आसम	मल्ल
५१ हुपमीप	हुमीप
१ हुपमीर	मिश्रपुरिल
११ हुपमीप	सीम
५१ प्रताप	मीरतीम
११ मानिल	पीमिल
४४ मयरडेन	सयरडेन
१ हुप्राय	समाजराज
११ गीर	हम्मीर
१० नीर	धीरेश्वर
५८ कामगिरार	मितराज
११ अनुराग	पुराण
५० अनुराग.	पर्तुरिम
७१	मुरलीप
१	मल्ल
५१ पतरप	पीतपरमर्दे
५० पीपिलप	पालिका
५१	मल्लीप
५१ चीपनिमप	चीपनिमप
५० गिरणमपिल	गिरणमपिल
५८ हुपगर	हुमपथ
५१ कालिज	कालिदास
६० मनरल	मधुरा
१ लालिम	मधुर
६१ लालिम	मलिन
६१ ललमील	हनुमाजीय
५१ १मान	मिलाप
५१ मानिपराज	मानिपराज
६१ समला	रमिनी
६० रेवा	रेवती
८ मामपुर.	मामपुरिमा
१ रोर	इरिन
६५ रेवा	
५१ मगीर	
६१ मेलम	मेलम

पा. श्लो. पीतांबर	मुद्रितपाठ
१ ११ रूप	मधुर
पाठिताथपुर	मधुर
११ मप्रताप	मालतीराम
११ गिरसालन	गिरमालत
पुरुषाराम.	
१ मकरन्द	मन्नाम
१५ मीमपिल.	दर्भी
१ मीमपिल.	मरकर्ण
४ १ माम	ग्राम
१ नाम	प्रामर्थ
१ माम	माधव
४ माम.	मौलिक
५ मानीप	दामोदर
१ दामोदर	
मानीप	मानीप
प्रभर	मधर
१ मानलिप	मालिनीप्रिय
१ मुगप	रसिक
११ मुनीप.	पाटलपत्र
११ गिरिपिमय	मानमप
११ हुर	मीर
१ हुर	हर्ष
१५ समप.	मनकमार
११ रानिल	मलिन
१ मानिमापन	मानीप
१ मानिमापन.	हनुमान
१ मानिमापन.	स्वधान
१ मानिमापन.	
११ देवराम	
५१ मनीपुर	मनीपुर
११ मनीराम.	मनुराम
५ राम.	राम
१५ राम	मनरडेम
५१ रजन	
१० मानिमापन	
१ मानिम.	मामपुरिया
१ मानिम	मालिनी

गा.	क्र.	पीतांबर	भुवनपाल
२	३०	शालिवाहन	मदभिमृक्ष
”	३१	सोमराज	चोगराज
”	३२	०	०
”	३३	मलयगति	९
”	३४	विक्रमराज	०
”	३५	कार्तिराज	कीर्तिरसिक
”	३६	कुन्पुत्र	कदुष्क
”	३७	शक्तिहस्त	माधव
”	३८	०	देवराज
”	३९	अनुराग	अनुराग
”	४०	०	हाल
”	४१	वेग्शक्ति	रवशक्ति
”	४२	०	बृधुधर्मन्
”	४३	०	०
”	४४	वर्म्यापिन	मालवाधिप
”	४५	वर्म्यापिन	मालवाधिप
”	४६	०	विजयशक्ति
”	४७	०	हाल
”	४८	०	विरुद्धाणद
”	४९	०	अवदक
”	५०	०	केशवराज
”	५१	वर्म्य	निष्कल्क
”	५२	०	मातरा
”	५३	०	मातुल
”	५४	०	जयच्छा
”	५५	०	[illegible]
”	५६	०	हाल
”	५७	०	प्रवरराज
”	५८	०	०
”	५९	०	हरिकेशव
”	६०	०	गुणाढ्य
”	६१	०	आत्रक
”	६२	०	रवधम
”	६३	०	[illegible]
”	६४	०	हाल
”	६५	०	[illegible]
”	६६	०	[illegible]
२	६७	०	आढ्यराज
”	६८	०	महिषासुर
”	६९	०	पुण्डरीक
”	७०	०	०
”	७१	०	नरवाहन
”	७२	०	सर्वस्वामिन
”	७३		१०
”	७४	०	१ ०
”	७५	०	व्याघ्रस्वामिन्
”	७६	०	आन्ध्रलक्ष्मी
”	७७	०	नागधर्म
”	७८	०	११
”	७९	०	हाल
”	८०	०	अविरत
”	८१	०	माधवशक्ति
”	८२	०	नागभट्ट
”	८३	०	अचल
”	८४	०	हाल
”	८५	०	साहस
”	८६	०	निर्वाप
”	८७	०	[illegible]
”	८८	०	०
”	८९	०	अनंगदेव
”	९०	०	धर्मिण
”	९१	०	हाल
”	९२	०	मदाहत
”	९३	०	[illegible]
”	९४	०	पालित
”	९५	०	गालित
”	९६	०	[illegible]
”	९७	०	माव
”	९८	०	[illegible]
”	९९	०	[illegible]
”	१००	०	[illegible]
३	१	०	[illegible]
”	२	०	[illegible]
”	३	०	[illegible]

पा.	श्लो. पौराणिक	मुख्यपात्र	पा.	श्लो. पौराणिक	मुख्यपात्र
१		रघुराज	१	४१	नल
"	५	राज		४२	वसन्त
	६			४३	हरि
		जनमालिन्		४४	राज
"	८	प्रसरेन		४५	विजेन्द्र
	९	मानुकवि		४६	
	१	मानसराम		४७	राजु
	११	अर्जुन		४८	सुग्रीव
	१२	जयकीर्ति		४९	गुरु
	१३	विविमत्र		५	रामन
	१			५१	राज
	१५	राज		५२	सिंह
"	१६	सर्वसेन		५३	
	१	गोविन्द		५४	गोविन्द
	१	नारायण		५५	मौलिवर्मालिन्
	१९	देवराज		५६	गोविन्द
	२	मौलिकेतिन्		५७	गोविन्द
	२	महामालिन्		५८	गोविन्द
	२२	जयनरद		५९	राम
	२३			६	धर्मराज
	२			६१	दुर्लिभ
	२	मधुराज		६२	गोविन्द
	२६	विमल		६३	जयानन्दमूर्ति
	२	राज		६४	दुर्ग
	१	जयानन्दमूर्ति		६५	राज
	२९	वहन		६६	रामन
	३	मरालनाथ		६	महाकवि
	३			६८	राज
	३१	चित्रराम		६९	शैवसेन
	३२	सर्वसेन		७०	राम
	३४	नारायण		१	मधेन्दुमार
	३५	राज		७२	
	३६	देवनाथ		७३	राज
	३	वसन्तसेन		७४	
	३			७५	रिक्त
	३	मधुराज		७६	रायराम
				७७	विजयदत्त

गा	क्र.	पीतांबर	भुवनपाल
३	७८	०	हाल
"	७९	०	जीवदेव
"	८०	०	विन्ध्यराज
"	८१	०	विग्रहराज
"	८२	०	०
"	८३	०	अलंकार
"	८४	०	०
"	८५	०	अभिनवगजेंद्र
"	८६	०	०
"	८७	०	रत्नाकर
"	८८	०	हरिमृग
"	८९	०	लक्ष्मण
"	९०	०	कृष्णचित्र
"	९१	०	कृष्णराज
"	९२	०	राज्यधर्मन
"	९३	०	पाहिल
"	९४	०	मधुसूदन
"	९५	०	ग्वल
"	९६	०	विपद
"	९७	०	समविषमाक
"	९८	०	सर्वस्वामिन्
"	९९	०	कीर्तिवर्मन
"	१००	०	आढक
४	१	०	शिखण्डिन्
"	२	०	कल्मचिन्ह
"	३	०	माधव
"	४	०	शशिप्रभा
"	५	०	ग्रामकुट्टिका
"	६	०	सुग्रीव
"	७	०	०
"	८	०	भूषण
"	९	०	०
"	१०	०	सुदर्शन
"	११	०	अनुराग
"	१२	०	हाल
"	१३	०	पण्डित
"	१४	०	नरसिंह
४	१५	०	नागहस्तिन
"	१६	०	त्रिलोचन
"	१७	०	यज्ञस्वामिन्
"	१८	०	श्रीमाधव
"	१९	०	अवन्तिवर्मण
"	२०	०	प्रवरराज
"	२१	०	०
"	२२	०	हस
"	२३	०	हस
"	२४	०	चुल्लोढक
"	२५	०	चुल्लोडक
"	२६	०	हाल
"	२७	०	महासेन
"	२८	०	धनजय
"	२९	०	कृष्णचरित्र
"	३०	०	प्रसन्न
"	३१	०	महाराज
"	३२	०	वजटदेव
"	३३	०	विरहानल
"	३४	०	आढक
"	३५	०	कैवर्त
"	३६	०	भूतदत्त
"	३७	०	महादेव
"	३८	०	विश्वसेन
"	३९	०	हाल
"	४०	०	प्रवरराज
"	४१	०	जीवदेव
"	४२	०	णणराज
"	४३	०	पाहिल
"	४४	०	चुल्लोटक
"	४५	०	कैलास
"	४६	०	मदर
"	४७	०	माणिक्यराज
"	४८	०	शेपर
"	४९	०	नागहस्तिन्
"	५०	०	०
"	५१	०	चद्रक
"	५२	०	कदलीगृह

पा.	क्र. पीठावर	मुळनावाने
४	५१	निवराज
	५२	मधुर
	५३	[illegible]
	५६	[illegible]
	५	
	५८	गुणाभिन्
	५९	[illegible]कुमार
	६	
	६१	[illegible]
	६२	[illegible]
	६३	[illegible]
	६	[illegible]
	६५	[illegible]
	६६	
	६	[illegible]
	६	
	६६	
	७०	[illegible]राज
	१	[illegible]
	७२	[illegible]
	७३	[illegible]
	७४	[illegible]
	७५	[illegible]
	७६	[illegible]
	७७	[illegible]
	७८	[illegible]
	७९	[illegible]
	[illegible]	[illegible]
	१ [illegible]	[illegible]
	८१ [illegible]	[illegible]
	१ [illegible]	[illegible]
	८४ [illegible]	[illegible]
	५ [illegible]	
	८६ [illegible]	[illegible]
	८७ [illegible]	
	[illegible]	
	८९ [illegible]	[illegible]

पा.	क्र. पीठावर	मुळनावाने
	१ [illegible]	[illegible]
	११	[illegible]
	१ [illegible]	
	१३ [illegible]	[illegible]
	१४ [illegible]	[illegible]
	१५ [illegible]	
	१६ [illegible]	[illegible]
	१ [illegible]	[illegible]
	१८	[illegible]
	१९ [illegible]	[illegible]
१	[illegible]	[illegible]
५	१ [illegible]	
	१ [illegible]	
	१	
	४ [illegible]	
	५ [illegible]	
	६	
	[illegible]	
	१ [illegible]	
	१	[illegible]
	११	
	१२ [illegible]	[illegible]
	१३ [illegible]	[illegible]
	१ [illegible]	[illegible]
	१५ [illegible]	[illegible]
	१६ [illegible]	[illegible]
	१ [illegible]	[illegible]
	१ [illegible]	
	१ [illegible]	[illegible]
	१ [illegible]	
	११ [illegible]	[illegible]
	१ [illegible]	[illegible]
	१३ [illegible]	[illegible]
	१४ [illegible]	[illegible]
	१५ [illegible]	[illegible]
	१६ [illegible]	
	१७ [illegible]	[illegible]

गा	क्र	पीतांबर	भुवनपाल
५	२८	पोटिस	विषग्रथि
	२९	मकरद	०
”	३०		रामदेव
”	३१	शालवाहन	०
”	३२	मान	पालित्तक
”	३३	पालित	कुमारदेव
”	३४	पालित	०
”	३५	०	०
”	३६	शालवाहन	०
”	३७	कहिल	०
”	३८	उल्लोल	०
”	३९	अट्टराज	हाल
”	४०	माधव	मार्गशक्ति
”	४१	सरभह	सरग्रहणी
”	४२	मुग्ध	कर्कंधमंन्
”	४३	गजेंद्र	उस
”	४४	गजेन्द्र	दौमीर
”	४५	जोल्लदेव	पेट्टा
”	४६	केशोराय	कल-कत
”	४७	शाल्वाहन	देव
”	४८	शाल्वाहन	०
”	४९	कुमारिल	विन्ध्यराज
”	५०	कुमारिल	विन्ध्यराज
”	५१	चारुदत्त	विष्णुना
”	५२	विष्णुराज	कुंदद त्त
”	५३	कज्जलराय	कर्णराज
”	५४	दुर्गराज	दुर्गराज
”	५५	शालवाहन	वसत
”	५६	वसन	वसत
”	५७	०	वासुदेव
”	५८	चुल्लोत	चुल्लोदक
”	५९	चुल्लोत,	धवल
”	६०	चुल्लोत	वल्लभ
”	६१	शाल्वाहन	रोहा
”	६२	रेखा	रोहा
”	६३	रेखा	समरराज
”	६४	पादवशवर्मिन्	हाल
५	६५	शालवाहन	हाल
”	६६	पोटिस	पोट्टिस
”	६७	पृथ्वीनाथ	पृच्छिन
”	६८	पृथ्वीनाथ	पृच्छिन
”	६९	०	मतुल
”	७०	चुल्लेत	चुल्लोदक
”	७१	चुल्लेत	हाल
”	७२	मुकुन्द	इन्द्र
”	७३	अनगक	अनङ्गदेव
”	७४	गुणाढ्य	गुणमुग्धा
”	७५	शालवाहन	आन्ध्रलक्ष्मी
”	७६	आन्ध्रलक्ष्मी	आन्ध्रलक्ष्मी
”	७७	कहिल	मोहाल
”	७८	वराह	वराह
”	७९	सेनेंद्र	कुमिभोगिन्
”	८०	निम्मह	निपह
”	८१	प्रवरसेन	परमेश्वर
”	८२	दुर्लभराज	दुर्लभराज
”	८३	निम्मह	०
”	८४	हरिराज	हरिराज
”	८५	विदग्ध	ध्रुवभट्ट
”	८६	अजय	सुद्रक
”	८७	महादेव	विखाचार्य
”	८८	वनराज	वनदेव
”	८९	राघव	राघव
”	९०	राघव	०
”	९१	दुरमान	दुरामथ
”	९२	विरहविलास	०
”	९३	विदग्ध	दुध
”	९४	दुर्लभराज	हाल
”	९५	परमेश्वर	०
”	९६	दुर्दरुद	दुर्गस्वामिन्
”	९७	माधव	विन्ध्यराज
”	९८	शाल्वाहन	रोहदेव
”	९९	०	०
”	१००	शाल्वाहन	मुद्रभट्ट
६	१	विक्रमभानु	विक्रान्तभानु

अ.	श्लो.	पाठांतर	मुख्यपाठ
१	२	[illegible]	[illegible]
	३	[illegible]	[illegible]
		[illegible]	[illegible]
	५	[illegible]	[illegible]
	६	[illegible]	[illegible]
		[illegible]	[illegible]
		[illegible]	
	९		
	१	[illegible]	[illegible]
	११	[illegible]	[illegible]
	११	[illegible]	[illegible]
	११	[illegible]	[illegible]
	१४	[illegible]	[illegible]
	१५	[illegible]	[illegible]
	१६	[illegible]	[illegible]
	१	[illegible]	[illegible]
	१		[illegible]
	१९		[illegible]
	९		[illegible]
	११		[illegible]
	३१		[illegible]
	५१		[illegible]
	३४		[illegible]
	३५		[illegible]
	३१		
	२		[illegible]
	२		
	११		
	९		[illegible]
	१		[illegible]
	११		[illegible]
	११		[illegible]
	१		
	५५		[illegible]
	३६		अर्जुन
	१		[illegible]
	१		[illegible]

अ.	श्लो.	पाठांतर	मुख्यपाठ
१	३९		[illegible]
	४		[illegible]
	४१		
	४२		[illegible]
	४३		[illegible]
	४४		
	४५		[illegible]
	४६		[illegible]
	४७		
	४८		
	४९		[illegible]
	५०		
	५१		
	५२		[illegible]
	५३		[illegible]
	५४		
	५५		[illegible]
	६४		[illegible]
	६५	[illegible]	[illegible]
	६६	[illegible]	[illegible]
	१	[illegible]	[illegible]
	६८	[illegible]	[illegible]
	६९	[illegible]	अर्जुन
	७०		अर्जुन
	७१	[illegible]	अर्जुन
	७२	[illegible]	[illegible]
	७३	[illegible]	[illegible]
	७४	[illegible]	[illegible]
	७५	[illegible]	[illegible]
	७६	[illegible]	[illegible]
	७७	[illegible]	[illegible]
	७८	[illegible]	[illegible]
	७९	[illegible]	[illegible]
		[illegible]	
	१	[illegible]	[illegible]
	१	[illegible]	[illegible]
	१	[illegible]	[illegible]

गा	क्र. पीतांबर	भुवनपाल	गा	क्र. पीतांबर	भुवनपाल
६	८४ शेज्जा	शोज्या	७	२१ शालवाहन	०
"	८५ ०	गेलेन्द्र	"	२२ शालवाहन	०
"	८६ शेखर	शतपट्ट	"	२३ पालित	०
"	८७ मुग्धहरिण	बप्प	"	२४ गोहा	०
"	८८ मार	मार	"	२५ माधव	मदन
"	८९ सार	शाकट	"	२६ विन्ध्य	०
"	९० सार	गुणानुराग	"	२७ ०	०
"	९१ कुमार	माधवक्षिय	"	२८ शालवाहन	०
"	९२ अनग	माहड	"	२९ शालवाहन	०
"	९३ अनग	देय	"	३० वोहा	०
"	९४ पोटिम	०	"	३१ ०	०
"	९५ भीमस्वामिन	०	"	३२ ०	०
"	९६ शालवाहन	०	"	३३ ०	०
"	९७ ०	०	"	३४ ०	०
"	९८ शालवाहन	०	"	३५ ०	०
"	९९ मकरन्दसेन	०	"	३६ ०	०
"	१०० ०	०	"	३७ ०	०
७	१ चुल्लोट	०	"	३८ ०	०
"	२ चुल्लोह	०	"	३९ ०	०
"	३ चुल्लाह	०	"	४० ०	०
"	४ दुर्लभराज	गोग्ज	"	४१ ०	०
"	५ शालवाहन	रेहा	"	४२ ०	०
"	६ शालवाहन	विन्ध्याधिप	"	४३ ०	०
"	७ महिषासुर	जीवदेव	"	४४ ०	०
"	८ पोटिम	अरदेव	"	४५ ०	०
"	९ पालित	अपराजित	"	४६ ०	०
"	१० चन्द्रोह	चुल्लोटक	"	४७ ०	श्री स्वामिन्
"	११ भीमस्वामिन्	गणपति	"	४८ ०	०
"	१२ भीमस्वामिन्	विंध	"	४९ ०	०
"	१३ मुग्धराज	रविराज	"	५० ०	०
"	१४ मेघचन्द्र	कोणदेव	"	५१ ०	०
"	१५ मेघचन्द्र	सुरभिपृष्ठ	"	५२ ०	०
"	१६ वाक्पतिराज	०	"	५३ शालवाहन	०
"	१७ वाक्पतिराज	कुञ्जरगी, कुरगा ?	"	५४ ०	०
"	१८ वाक्पतिराज	कुञ्जरगी, कुरगी ?	"	५५ ०	०
"	१९ शालवाहन	०	"	५६ ०	०
"	२० अनुराग	द्रोअगुल	"	५७ ०	०
			"	५८ ०	०

पृ. सं. पीठांक		शुद्धपाठ	पृ. सं. पीठांक		शुद्धपाठ
	५१			७२	
	१			८	
	११			१	
[illegible]	१२			८२	
[illegible]	११			८३	
[illegible]	१			८४	
	१५			८५	
	११			८६	
	१			८७	
[illegible]	१		[illegible]	८	
[illegible]	१९			२	
[illegible]	७०		२	९१	
[illegible]	१			९१	
[illegible]	२			९१	
[illegible]	७३			९	
[illegible]	७४			९५	
	७५			९६	
	७६			९७	
[illegible]	७७			९८	
	७८			९९	

परिशिष्ट (ग)

प्रमुख प्राकृत शब्द-सूची

संस्कृत साहित्य का इतिहास

(बृहत् संस्करण)

श्री वाचस्पति गैरोला

इस ग्रन्थ को लिखते समय यह ध्यान रखा गया है कि पाठक परम्परा और पूर्वाग्रह के मोह में न पड़कर प्रत्येक विषयगत तथ्य का समाधान स्वयं कर सकें। पाठक पर अपने विचार लादने की अपेक्षा उपयुक्त यह समझा गया है कि विभिन्न मान्यताओं की समीक्षा करके वह स्वयं ही निर्णय के सही बोध को ग्रहण कर सके। भारतीयता या विदेशीयता का पक्षपात त्याग कर किसी भी विद्वान् के स्वतन्त्र और नये विचारों को स्वीकार करने में संकोच नहीं किया गया है। पुस्तक की विषय-सामग्री और उसकी रूप-रेखा का क्रम भी ऐसे ढंग से लिया गया है जिससे संस्कृत वाङ्मय की आधारभूत जन्मभूमि का परिचय प्राप्त होने के साथ-साथ युग-सामयिक परिस्थितियों का भी अध्ययन हो सके। आर्यों के आदि देश एवं आर्य-भाषाओं के उद्भव से लेकर उन्नीसवीं सदी तक की शताब्दियों में संस्कृत-साहित्य की जिन विभिन्न विचार-धाराओं का विकास हुआ और भारत के प्राचीन राजवंशों के प्रश्रय से संस्कृत भाषा को जो गति मिली उसका भी प्रामाणिक विवेचन इस पुस्तक में देखने को मिलेगा।

मूल्य १०—

संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

संस्कृत-साहित्य के इतिहास का यह संक्षिप्त संस्करण इस उद्देश्य से लिखा गया है कि विभिन्न विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं के पाठ्यक्रम में निर्धारित इतिहासविषयक ज्ञान के अंतर्वर्ती विद्यार्थियों का इससे काम हो सके। पाठ्यक्रम की दृष्टि से संस्कृत-साहित्य के इतिहास पर राष्ट्रभाषा हिन्दी में जो अनेक ग्रन्थ पुस्तकें लिखी गई हैं वे या तो सर्वांगीण नहीं हैं अथवा उनमें कहीं के उपयोगी इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन की क्रमबद्ध समीक्षा का अभाव है।

यह इतिहास पाठ्यक्रम की दृष्टि से तो लिखा ही गया है, किन्तु संस्कृत के बृहद् वाङ्मय का आमूल ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करने का भी इसमें प्रयत्न किया गया है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि संस्कृत के छात्रों को वैज्ञानिक दृष्टि से संस्कृत-साहित्य के इतिहास का अध्ययन कराया जाय जिससे कि उनकी लेखनशक्ति का स्वतन्त्र रूप से विकास हो सके और प्रस्तुत विषय पर उनके अपने विचारों को नई दिशा में अग्रसर होने का अवकाश मिल सके। →